"एक पड़ोसीके यहां, उनकी लड़कीको बड़े ज़ोरका बुख़ार हो आया है—वे अभी मुझे बुलाने आये थे।"

"दवा देकर आते हो न?"

'हां, भैया! मेरे-जैसे डाक्टरोंको ग़रीबोंके सिवा और कौन पूछता है? लड़कीका बुख़ार बिगड़ गया है—रेमिटेंट फ़ीवरका लक्षण मालूम होता है। हां—हां—अमर, तुमने भी तो कल उस लड़कीको देखा था? वही लड़की है। चलो, अमर हम दोनों ही चलकर उसे देखें और दवाकी ठीक-ठीक व्यवस्था करें। अवस्था अच्छी नहीं है। वे किसी और डाक्टरको बुलायें, ऐसा उनका सामर्थ्य भी नहीं है।"

अमर बड़ी ख़ुशीसे जानेको राज़ी हो गया। अहा! कैसी सुन्दर लड़की है! उसे रह-रहकर यही याद आने लगा। औषधकी पेटी लिये दोनों घरसे बाहर हुए।

टूटे-फूटे मकानमें एक नीची चौकीके ऊपर मैली-सी कथरी-पर पड़ी हुई उस बालिकाका ज्वरसे तमतमाया हुआ चेहरा साफ़ दिखाई दे रहा था। उसके सिरहाने मलिन मुंह बनाये बैठी हुई उसकी माता उसका सिर सुहला रही थी। दोनों दोस्त अच्छी तरह रोगीकी परीक्षा करने लगे। बालिका ज्वरसे बेसुध पड़ी हुई थी। औषध दे और उसकी शुश्रूषाके सम्बन्धमें उसकी माताको सब बातें अच्छी तरह समझा-बुझाकर दोनों घर लौटे।

दूसरे दिन सवेरे ही अमर कलकत्ते जानेवाला था, पर न जा

सका। जाये कैसे? एक बालिकाके क्षुद्र प्राण उन दोनोंके हाथमें थे। कभी-कभी तो अमरको यह सन्देह भी होता था कि या तो देवेन्द्र झूठमूठ मुझे शरारतसे रोक रहा है अथवा वह सचमुच अकेला मरीज़की सम्हाल नहीं कर सकता। चाहे जो कुछ हो, पर अमरका जाना नहीं हुआ। दोनोंकी लगातार चेष्टा और यत्नसे सात दिनमें बालिकाका ज्वर उतर गया। दोनोंके सिरपर विधवाकी अनगिनत असीसें बरसने लगीं। विधवाने जब यह सुना कि अमर उसका सजातीय है, तब वह बड़ी आनन्दित हुई। कन्यासे बोली—"चारु! इन्हें प्रणाम कर। ये तेरे भैया हैं।" तकियेपर ही सिर झुकाकर बालिकाने उसे प्रणाम किया। अमरने हंसते हुए उसके सिरपर हाथ फेरा। चारुकी उमर ग्यारह वर्षसे अधिककी नहीं है।

अमर कलकत्ते चला आया। फिर कालेज जाना, प्रोफ़ेसरोंका लेक्चर सुनना, सभा-सुसाइटियोंकी स्पीचोंके फेरमें पड़े रहना, थियेटर देखना जारी हो गया। गांवमें जाकर जो दो-चार दिन मौज-बहार लूटी थी वह इस चहल-पहलके आगे मनके एक कोनेमें जा छिपी, उसकी याद भूल-सी गयी।

अमरके पिता, हरनाथ-बाबू मानिकगञ्जके ज़मींदार हैं। उनके ख़ूब बढ़िया आलीशान मकान, बड़ी-सी जोड़ी और बड़ी भारी तोंद है। उनका नाम ही सुनकर कितनोंके प्राण सूख जाते हैं; किन्तु अपने मातृहीन पुत्रके लिये वे एक ही साथ मां और बाप दोनों ही हैं। पुत्र जब जो हठ पकड़ता है, उसे वे बड़ी व्यग्रता

साथ पूरा कर देते हैं और पुत्रके हर्षसे खिले हुए चेहरेकी ओर स्नेहसे देखने लगते हैं। मांका न रहना अमरको कभी न अखरा, इसके सिवा वे बड़े भारी ज़मींदार हैं, स्वभावके ख़र्चीले हैं। उनकी मुक्तहस्तता और अपरिमित व्ययशीलताके कारण ही उनके प्रबल प्रतिपक्षी वसु लोग भी यह बात स्वीकार करते हैं कि इन्हीं सब कारणोंसे उनकी ज़मींदारीकी आय और नहीं बढ़ने पाती। आपसके लोग कहते हैं कि उनके पास नगद् जमा कुछ भी नहीं है। पर यह बात वसु-घरानेवाले नहीं मानते।

पूजाके दिन हैं—अमरनाथ घर जानेकी तैयारी में है। सहसा एक दिन उसके कलकत्तेवाले डेरेमें उसका मित्र देवेन्द्र आ धमका। पूजाके बाज़ारसे बहुतसी चीज़ोंके साथ-साथ वह अमरनाथको भी साथ लेता आया। उसके घर दुर्गोत्सवकी तैयारी थी। उसकी मांने मन्नत मानी थी कि यदि देवेन्द्र डाक्टरी पास कर लेगा तो बड़ी धूमधामसे मांको पधराऊंगी। उनकी उस इच्छाको पूरा करनेके लिये देवेन्द्रने अमरनाथकी सहायता मांगी। उसके कोई भाई नहीं है—भाईकी जगह वही है, अतएव मांके काममें उसे हिस्सा बंटाना ही चाहिये! अमर नाहीं न कर सका। जिसके मां नहीं रहती, वह इसी तरह दुनियाके मुंहसे 'मां'का शब्द सुनकर गलकर पानी हो जाता है।

पूजाके कई दिन बड़े आनन्दसे कट गये। अमरने यद्यपि अपने घरकी पूजाकी अपेक्षा इस ग़रीबके घरकी पूजामें बहुतसी त्रुटियां देखीं; परन्तु जिससे सारी त्रुटियोंपर पर्दा पड़ जाता

है, उस आडम्बर-शून्य सहृदयताकी पवित्र प्रभासे मानों सारी वस्तुएं रञ्जित हो उठी थीं। सामान्य देहाती युवककी नाईं जब वह भी मुग्धहृदयसे लोगोंकी फर्मायशें पूरी करनेके लिये इधरसे उधर आया-जाया करता था तब गांवकी महिलाएं उसे देख-देखकर बड़ा अचम्भा मानती थीं। यदि कोई इस विषय-में कुछ कहता तो अमरको बड़ा बुरा लगता था। उसे यह नहीं मालूम होता था कि सबकी अपेक्षा मुझमें कौन-सा सुर्खाबका पर लगा हुआ है कि लोग मेरी दौड़धूप देखकर दंग हो रहे हैं।

विजयाकी रातमें, प्रतिमा-विसर्जनके बाद घर-घर वात्सल्यि मङ्गल-सम्भाषण प्रणाम, आशीर्वाद और आलिङ्गनके रूपमें जारी था। देवेन्द्रने, अमरके गलेमें बाहें डाल, कहा—"तो क्या तुम सचमुच आज चले ही जाओगे?"

"हां, भाई! यद्यपि मैंने पिताको सब कुछ लिख दिया है और वे कुछ भी नहीं कहेंगे तो भी मैं यह जानता हूं कि पूजाके समय मुझे नहीं आया देखकर उनका मन नहीं लगता और—"

"और तुम आप भी अभी नन्हे-नादान हो, इसलिये तुम्हारा भी जी नहीं मानता! क्यों?"

"यह भी तुमने ठीक ही कहा।—वाह, लड़की तो बड़ी ही सुन्दर है। यह किसकी लड़की है, देवेन्द्र?"

देवेन्द्रने आंख उठाकर देखा कि बालिकाओंका एक झुण्ड पास-ही-से चला जा रहा है। उनमेंसे नीली साड़ी पहने हुई बालिकाने ही मित्रकी दृष्टि आकर्षित की है, यह बात देवेन्द्रने

झटपट ताड़ ली, हंसकर कहा—"अच्छा, बतलाओ तो सही, वह कौन है?"

"यार! मालूम तो होता है कि मैंने इसे कहीं देखा है—हां, हां, अब याद आयी—वही है न, जो उस बार बीमार पड़ी थी?" कहते-कहते अमर चुप हो गया।

बालिकाओंका झुण्ड पास आकर बारी-बारीसे उन दोनोंको प्रणाम करने लगा। देवेन्द्रने हंसते हुए सबको सम्बोधन कर कहा—"जाओ, बहनो! भीतर चली जाओ। तुम सब बिना मुंह मीठा किये चली जाओगी तो मां बहुत नाराज़ होंगी।"

झुण्डके आगेवाली बालिकाने कहा—"पहले हमलोग सब घरोंमें जाकर मिल-मिला आयें।"

"तब तो तुम लोगोंने आके खा लिया! और लोग बिना खिलाये कभी न आने देंगे। इसलिये यह नहीं होगा।"

चारु नीचा सिर किये हुए बोली—"देवेन भैया! मांने तुम दोनोंको एक बार बुलाया है।"

देवेन्द्रने झटपट उत्तर दिया—"हम दोनों तो उन्हें प्रणाम करने जायंगे ही। अमर! चलो।"

अमरने मुंह बनाकर कहा—"ट्रेनका समय रहेगा न?"

"बहुत—बहुत समय रहेगा—चलो।"

दोनोंने जाकर देखा कि उस टूटे-फूटे मकानके आंगनमें दरिद्र विधवा सामने दो आसन बिछाये और अपने सामर्थ्यके अनुसार कलेवा करनेका सामान परोसे बैठी हुई है। चांदनी

खिली हुई है। अमर और देवेन्द्रको आते देख, बुढ़ियाका आनन्द मानों आशासे अधिक कृतज्ञ होकर बढ़ गया। अमर इस बेहद ख़ातिरसे झेंपने लगा। विधवाने देवेन्द्रसे कहा—"बेटा देवेन! तुम लोगोंकी मैं सदा ऋणिया बनी रहूंगी। तुमने अपनी दुखिया चाचीका कितना उपकार किया है—"

देवेन्द्र चटपट बात काटकर बोला—"यह क्या कहती हो, चाची? मैं तो तुम्हें अपनी चाची ही समझता आया हूं। अच्छा, यह सब बातें इस समय रहने दो, अमरकी ट्रेनका समय हो रहा है, देर करना ठीक नहीं।"

विधवा न जाने और क्या कहना चाहती थी, पर देवेन्द्रकी जल्दबाज़ीके मारे कुछ न कह सकी।

दोनोंने उन्हें प्रणाम कर बिदा ली। दशमीके चन्द्रमाकी शुभ्र ज्योत्स्नासे ग्राम्य पथ आलोकित हो रहा था। उस समय भी गांवके बालक और युवक बड़े आनन्द—उछाहसे गली-कूचेमें शोर मचाते हुए घर-घर मिलने-मिलाने और नमस्कार प्रणाम करनेके लिये घूम-फिर रहे थे। कहीं कोई रसिया छैला खञ्जरी बजाकर गा रहा था—

"हांजी भोला बाबा! आजसे गौरी तुम्हारी
रखिहौ याहि नेह-आदरसों,
सेवा करेगी तुम्हारी ॥ भोला० ।
बड़े भागसे कन्याने है, मृत्युञ्जय पति पाया।
मानोगे तुम अवशि इसे हर! जानि प्राण-सम प्यारी ॥भोला०॥

तोभी मांको जिय है ऐसो, विन बोले नहिं माने।"
रखिहौ नैन-पुतरि इव अपनी, गौरी प्राण हमारी ॥भोला०॥

देवेन्द्रने सहसा निस्तब्धता भङ्ग कर कहा—"उनको कोई अपना-सगा नहीं है, इसीलिये मुझे लड़केकी तरह मानतीं, अपना दुःख-सुख कहतीं, सब कुछ दिखाती-सुनाती हैं; पर भैया! मुझसे कुछ बन नहीं पड़ता। मेरी जैसी हालत है वह तुम देख ही रहे हो। जिन्हें मिहनत-मज़दूरी करके पेट भरना और रात-दिन अपने "गृह-कारज नाना जञ्जाला" की झञ्झटमें फंसा रहना पड़ता है, उनसे कोई अच्छा काम या परोपकार क्या ख़ाक हो सकता है? पर उनका स्वभाव ऐसा अच्छा है कि कोई उनसे दो-दो मीठी बातें भी करता है तो वे उसकी ऋणियां बन जाती हैं।"

अमरने कहा—"सचमुच उनका स्वभाव बड़ा अच्छा मालूम होता है। बातें करते समय मांकी तरह लाड़-प्यार दिखलाती हैं। मुझे भी उनकी रीति-भांति बहुत पसन्द आयी है। क्या उनकी अवस्था बड़ी ही———"

बात काटकर देवेन्द्रने कहा—"इसलिये नहीं। कन्याका ब्याह करनेके लिये उन्हें बड़ी भारी चिन्ता हो रही है।"

"अभी? अभी तो लड़की बहुत छोटी है।"

"छोटी कहां है? ग्यारह वर्षकी हुई। हिन्दूकी लड़की और कितने दिन बिन-ब्याही रह सकती है? काफ़ी समय रहते ब्याहका ठीक-ठाक किये बिना, जल्दी-जल्दीमें कन्याके कुपात्रके हाथोंमें पड़

जानेका भी तो भय रहता है। किसी अच्छेके साथ व्याह ठीक हो जाय तो वेचारीकी चिन्ता मिट जाये, पर उनकी अवस्था भी तो वैसी नहीं है। भाई! तुम्हें एक उपकार करना होगा।—"

अमर उस वातका जवाव न देकर बोला—"ऐसी सुन्दर लड़की है—अवस्था अच्छी नहीं है तो क्या हुआ? लोग आप ही उसके साथ व्याह करनेको मुंह वायेंगे।"

"अमर! तुम अभीतक वच्चे ही हो। दुनियादारीका हाल अभी इतना ही जानते हो? किसी वड़े घरमें या अच्छे लड़केके साथ कन्याका विवाह हो, इसे क्या तुम वहुत आसान समझते हो? भैया! रूप और गुणकी वात कौन पूछता है? यहां तो 'जगको मूल रूपया' है! उस लड़कीमें रूपकी अपेक्षा गुण इतने अधिक हैं कि क्या वतलाऊं? कैसी सीधी-सादी और नरम स्वभावकी लड़की है। पर यह सव होनेसे ही क्या होनेका है? यहां तो वेचारीके घरमें चूहे डण्ड पेला करते हैं।"

अमरने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—"क्यों देवेन! यह तुमने क्या कह डाला? इतने दिनोंकी शिक्षाका क्या तुमने यही फल पाया? जगत्‌में सर्वत्र एक ही नीति थोड़े चलती है?"

देवेन्द्रने तानेके साथ कहा—"खासकर वड़े आदमियोंके घरमें तो यही एक नीति चलती है। ग़रीव भलेमानसोंमें कोई भले ही ऐसा मनुष्य निकल आये जो इस नीतिको नहीं माने; पर वड़े आदमियोंके यहां तो सदासे इसी नीतिका पालन होता आया है और होता रहेगा।"

"देवेन्द्र ! तुम यह अन्यायकी बात कह रहे हो। दो-एक स्थानोंमें यह बात ठीक भी मालूम होती है, पर—"

"अरे यार ! वह सब किताबी बातें छोड़कर सच्ची दुनियामें उतर आओ। बतलाओ तो सही, कितने बड़े घरके लड़कोंने रूप, गुण और स्वभावका आदर किया है? अपनी ही बात देखो। तुम्हारे लिये कितने लखपतियोंके यहांसे पैग़ाम आ रहे हैं। तुम क्या वहां रूप और गुणकी बात देखने जाओगे? यह क्या तुमसे हो सकेगा? क्या वहा रूपचन्द्का रूप ही सबसे बाज़ी नहीं मार लेगा?"

"देवेन्द्र! यह तो तुमने और भी अनुचित बात कह डाली। मां-बापकी इच्छा, भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियोंका अनुरोध, इन सब बातोंकी ओर ध्यान न देकर तुम केवल रुपयेकी ही बात सोच रहे हो।"

"जो हो, वह भी मतलबकी ही बात है। नाक चाहे सीधी तरहसे छुओ या हाथ घुमाकर, बात एक ही है। उससे भी तो तुम्हें सुविधा ही हो जाती है?"

"वाह! तुम मुझे भी उन्हीं लोगोंमें क्यों गिन रहे हो? मैंने क्या किया है?"

"औरोंपर अपना क्या वश है? इसीसे तुम्हारे ही ऊपर दिलका बुख़ार निकाल रहा हूं।"

"इसीको कहते हैं भविष्यत्-दर्शन! मैंने तो अभी किसी बड़े घरकी बेटीसे ब्याह नहीं किया? जब करूं तब कहना। अच्छा

जाने दो, इस बातको गोली मारो। तुम मुझे क्या करनेको कह रहे थे?"

"ग़रीबकी कुछ भलाई करनेको कहता था। लड़कीको तो तुम देख ही चुके! अगर तुमसे हो सके तो उसके लिये एक अच्छा-सा वर ढूंढ दो।"

सामनेसे आती हुई कड़े-छड़े और पायज़ेबकी रुनझुनकी आवाज़ सुनकर दोनोंने उस ओर मुंह फेरकर देखा कि बालिकाओंका दल अभीतक घर-घर घूम ही रहा है। देवेन्द्रने पुकारा—"चारु! हमलोग तेरे घरसे खा-पी आये।"

कृतज्ञता-भरी आंखोंसे एक बार उनकी ओर देख, उसने सिर नीचा कर लिया। अहा, वह दृष्टि कैसी सरल—कैसी सुन्दर है!

अमर चुपचाप गाड़ीपर जा सवार हुआ। जब वह चलने लगी, तब अमरने मुंह बाहर निकालकर देवेन्द्रसे कहा—"मैं तुम्हारी बात याद रक्खूंगा। वरकी तलाश करूंगा।—" शेष बातें गाड़ीके पहियोंकी घरघराहटमें दब गयीं।

देवेन्द्रने मन-ही-मन हंसकर कहा—"सो तो मुझे मालूम है।"

दूसरा परिच्छेद

जवाबदेही

कुछ दिनतक पिताके प्यारका निश्चिन्त मनसे भोग करनेके बाद अमरनाथने सुना कि उसका ब्याह पक्का हो गया

है। शादी कालीगञ्जके ज़मींदार श्री राधिकाकिशोर
इकलौती लड़की श्रीमती सुरमादासीसे होनेकी बात तै
है। लड़की सयानी और सुन्दरी है। हरनाथ-बाबू
जाकर लड़कीको देख-सुनकर पसन्द कर आये हैं।
दीवानजीने ये सब बातें भलीभांति अमरनाथको समझा दीं
इसके बाद अपनी निजी सम्मति यों प्रकट की—"बड़ी सु-
लक्ष्मी-सी लड़की है।"

सुनकर अमरनाथको हंसी आ गयी। उसके जीमें आया कि अभी कह दूं, "क्या ज़मींदारीका काम भी जानती है?" पर पिताके समान बूढ़े दीवानके साथ दिल्लगी करना अच्छा न समझकर उसने अपनी जीभकी लगाम रोक ली। पर उसके मनमें, भीतर-ही-भीतर, बड़ी हलचल-सी मच रही थी। जब पिता स्वयं देख-सुन आये हैं, तब मैं उसमें आपत्ति कैसे कर सकता हूं? तो भी मनमें न जाने क्यों खटका पैदा हो रहा था, पर उसका कोई ठीक कारण समझमें नहीं आता था। दो-चार दफ़े उसने मन-ही-मन कहा—"इतनी शीघ्रता क्यों की जा रही है?" परन्तु वह महज़ इसी मामूली असन्तोषके लिये, निर्लज्ज होकर पितासे कुछ कह न सका। "बड़े घरकी बेटीसे ब्याह करनेके विरोधमें कोई ऐसी युक्ति-युक्त बाधा भी तो नहीं दिखलाई पड़ती जिसे दिखलाकर पिताको अपनी आपत्तिकी बात कहूं। यह भी तो नहीं है कि किसी ग़रीबकी लड़कीकी उपेक्षा करके पिता मेरा विवाह एक धनीकी कन्याके साथ करने जा रहे

तें। किसी ग़रीबकी लड़कीके साथ ब्याहकी बातचीत भी तो नहीं चली, फिर यदि मैं उसके लिये यह नये ढंगकी वकालत करूंगा तो लोग मेरे सिरमें ठण्ढा तेल या लेप लगानेकी सलाह देने लगेंगे; और सम्भवतः पिताजी भी भौंचक-से होकर मेरा मुंह देखने लगें। सही-सलामत दिमाग़वालेकी यह बेढंगी बात कौन सुनेगा?" यही सब सोचकर अमरनाथ इस विवाहमें कोई आपत्ति नहीं खड़ी कर सका। देखते-देखते कार्तिक मासके शेष दिन भी बीत गये और अगहनका महीना लगते ही बड़ी धूम-धामसे अमरनाथका विवाह हो गया। इधर इनके भी एक लड़का था और उधर भी एक ही लड़की, अतएव दोनों ओरसे खूब धूमधाम हुई। हरनाथ-बाबूने बहुत खोज-ढूंढ़कर यह सम्बन्ध किया था। इस शादीकी बातको लेकर वसु-घरानेवाले कहने लगे, "इस बार तो बुड्ढेने बड़ी बाज़ी मार ली!" अमर केवल देवेन्द्रको इस ब्याहका समाचार नहीं दे सका। कोई कारण न होनेपर भी, न जाने क्यों, देवेन्द्रको हाल लिखते हुए उसे बड़ी लज्जा मालूम हुई। वह मन-ही-मन अपनेको देवेन्द्रके निकट शपथ भङ्ग करनेका अपराधी समझने लगा।

रीतिके अनुसार बहू घर आयी। उसकी पाक-स्पर्श और फूलशय्या* आदि रस्में पूरी हो गयीं। फूलशय्याके दिन अमरनाथ

* विवाहके बाद वर-वधूके प्रथम मिलनको बंगालमें फूलशय्या कहते हैं यहाँ उसे "सुहागरात" कहते हैं।

सिमट-सिमटाकर पलंगके एक कोनेमें पड़ा रहा और उसने जिस किसी तरह वह रात बितायी। उसे बड़ी लज्जा मालूम होती थी। लड़की एकदम नादान बच्ची नहीं थी—तेरह-चौदह सालकी होगी। पुरुषके हिसाबसे अमरनाथकी अभी किशोर अवस्था व्यतीत नहीं हुई थी। इसके बाद जितने दिनतक वहू घर रही, उतने दिन अमरनाथ उससे भागा-ही-भागा फिरता रहा।

तदनन्तर वह पीहर चली गयी और अमरनाथ भी पितासे पूछकर कलकत्ते चला गया। वहां जानेपर एक दिन उसके पास उसके मित्र देवेन्द्रकी चिट्ठी आयी, जिसमें उसने उसे अपने यहां आनेके लिये बार-बार अनुरोध किया था। अमरने इस चिट्ठीका कोई जवाब नहीं दिया। पूजाकी छुट्टियोंमें घर आकर अमरने सुना कि बहूकी माता मर गयीं, इसीलिये वह इस समय यहां नहीं बुलायी जा सकी। पिताने बड़ा दुःख प्रकट किया। अमरनाथके जीमें आया कि एक चिट्ठी लिखूं; पर जिसके साथ कभी भर-मुंह बात भी नहीं की, उसे एकाएक चिट्ठी कैसे लिखी जाये? इसलिये अमरनाथका पत्र लिखना तबतकके लिये रुक गया जबतक बहूसे उसकी बातचीत नहीं हो जाती।

विवाहके बाद डेढ़ वर्षका समय निकल गया। अमरनाथ घर जानेको तैयार था, इसी समय उसके मित्र देवेन्द्रका पत्र आया—"यदि तुम इस बार न आओगे तो तुम्हें जन्मभरके लिये पछतावा ही रह जायेगा। इसलिये अवश्य ही आओ।"

लाचार, अमरनाथ देवेन्द्रके गांवमें आ पहुंचा। घरके साम

ही देवेन्द्रको खड़ा देख, उसने घबराहटके साथ पूछा— "क्यों भाई! मामला क्या है ?"

देवेन्द्रने मुस्कुराकर कहा— "मामला और क्या होगा ? जब तुम किसी तरह आते नहीं दिखाई पड़े, तब मैं तुम्हें यों फन्देमें ले आया।"

अमरके जी-में-जा आया। उसने कहा—"यह तो बड़ा अन्याय है—यह कैसा लड़कपन है ?"

इसमें अन्यायकी क्या बात है ? क्या इसके लिये किसीके आगे कैफ़ियत थोड़े ही देनी पड़ेगी ? डर काहेका है ?"

अमरनाथका मुंह लज्जाके मारे लाल हो आया—वह और कुछ न कह सका।

तीसरे पहर देवेन्द्रने कहा— "क्यो यार! वह लड़की याद आती है ? वही चारु ?"

अमरका कलेजा फिर एक बार धक्कसे हो गया। उसने थोड़ी देर ठहरकर कहा— "क्यों ? क्या हुआ ? मर गयी क्या ?" कहते-कहते उसे बहुत दिन पहले देखी हुई और रोगसे पीले बने हुए चेहरेके ऊपर दो हंसती हुई सरलता-भरी आंखें याद आ गयीं।

अमरको अनमना-सा देख, देवेन्द्र तनिक मुस्कुराता हुआ बोला— "नहीं यार! वह नहीं मरी। उसकी मां मरूं-मरूं हो रही है—मैं उसकी दवा कर रहा हूं। चलो, उसे देख आयें।"

"सचमुच ? अच्छा, चलो। उस लड़कीका ब्याह हुआ या नहीं ?"

"ब्याह! कहां हुआ? वह ग़रीब ठहरी और तुम्हारी जातिमें लड़कीके ब्याहके लिये रुपये गिन देने पड़ते हैं। तुमने उसके लिये वर ढूंढ़ देनेको कहा था, इसीसे तो हमलोग निश्चिन्त हो बैठे थे।"

अमरने लज्जा और अनुतापके मारे सिर नीचा कर लिया। यह बात तो उसे याद ही नहीं थी!

दोनों जने उस बहुत दिन पहलेके देखे हुए और इस समय पहलेसे भी अधिक टूटे-फूटे हुए मकानमें आये। दुबली-पतली और मैले कपड़े पहने हुई विधवा, बीमार हो, सेजपर पड़ी थी। उसके पास ही वह नन्ही-सी बालिका चारु बैठी हुई थी। मुस्कुराहट-भरी आंखोंपर गम्भीर काली रेखा खिंची हुई थी। मुख मलिन और शुष्क था। देखते ही अमरके दिलसे एक सर्द आह निकल पड़ी। बालिका उसे देख लज्जा और सङ्कोचसे सिमटकर बैठ गयी। उसके पीले कपोलोंपर थोड़ी-सी लाली दौड़ गयी। भला, ऐसे समयमें भी लज्जा की जाती है? लड़की बड़ी ही भोली-भाली है!

क्षण-भरके बाद जब विधवा होशमें आयी, तब देवेन्द्र उसके पास चला आया और बड़े ज़ोरसे बोला—"चाची! अमर आया है।"

क्षीण स्वरसे विधवा बोली—"कहां है?"

"यही है।" कहकर देवेन्द्रने अमरको ठेलकर बुढ़ियाके सामने ला खड़ा किया। अमर विधवाकी मृत्युकी छायासे भरी हुई

आंखोंको हर्षसे विकसित होते देख, अचम्भेमें आ गया और भौंचक होकर उसकी ओर देखता रहा।

विधवाने धीमे स्वरसे कहा—"चारु!" अपने मलिन और लाली चढ़े हुए मुखड़ेको नीचा ही किये हुए, चारु मांके सामने आ बैठी। विधवाने कांपते हाथसे उसका वह नन्हा-सा हाथ पकड़कर अमरके हाथमें दे दिया और अर्द्धोच्चारित स्वरमें बोली, "इसे मैं तुम्हें सौंपे जाती हूं। मेरी चारुलता आजसे तुम्हारी हुई। भगवान् तुम दोनोंको सुखी करें।"

अमरनाथ तो हक्काबक्का-सा हो गया। वह अचरज और डरके मारे बेचैन-सा हो गया। उसके कांपते हुए हाथमें वह नन्हा-सा हाथ भी कांप रहा था। शोक-भरी आंखोंसे आंसूकी छोटी-छोटी बूंदें उसके हाथपर गिरकर मोतीकी तरह झलमला रही थीं।

अमरनाथका बड़ी मुश्किलसे कण्ठ फूटा। उसने कहा—"आप यह क्या कह रही हैं? क्या आपको मालूम नहीं है कि—"

देवेन्द्रने बात काटकर कहा—"चुप रहो, चुप रहो। उन्हें अभी ज़रा झपकी आयी है। जगाओ मत।"

अमरने उत्तेजित स्वरमें कहा—"मुझे बहुत-सी बातें समझाने-बुझानेको हैं—मैं—"

फिर बीचमें ही बात काटकर देवेन्द्रने कहा—"मुझे मालूम होता है, अमर! तुम बड़े ही हृदयहीन हो!"

रातको विधवाका दमा ज़ोर पकड़ गया। अब समय नहीं

है—यह देख, अमरने विधवाकी छातीपर लोट-लोटकर रोती हुई बालिकाको एक ओर हटा दिया और उसके कानके पास मुंह ले जाकर ज़ोरसे बोला—"मेरा विवाह हो गया है। क्या आपको मालूम नहीं है? मैं व्याह कर चुका हूं।"

उस समय विधवाकी स्मरण-शक्ति उन सर्वनियन्ताके चरणोंमें जा मिली थी! हां, प्राण उस देह-रूपी पींजरेमें उसी ध्यानमें डूबे हुए थे।

"सम्भव है, तुम्हें न मालूम हो, क्योंकि मैंने आजतक तुम्हें लिखा ही नहीं। पर तुमने यह क्या अन्धेर कर दिया? जबतक उन्हें ज्ञान था तबतक उनसे कुछ कहने भी न दिया! एक तरहसे मैं मरनेवालीके आगे शपथमें बंध गया! देवेन्द्र! तुमने यह क्या गड़बड़भाला कर डाला?"

"ईश्वर साक्षी है, मैं इस मामलेमें बिलकुल निर्दोष हूं। तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है, यही जानकर मैंने उन्हें भरोसा दे रक्खा था। उस समय मैंने समझा था कि तुम अपने पिताकी राय न होनेकी बात कहने जा रहे हो।"

भोर होते-होते विधवाका शरीर छूट गया। देवेन्द्र कुछ आदमियोंको बुलवाकर लाशको श्मशान घाट ले चला। अमरनाथ चुपचाप उस शोकमें डूबी हुई बालिकाके ही पास बैठा रहा। उसकी समझमें नहीं आता था कि क्या कहकर उसको धीरज बंधावे।

आश्रयहीना, असहाया बालिका ज़मीनपर लोट रही है।

शायद थोड़ी देर पहले वह अपनेको ऐसी असहाया और अनाथ नहीं समझती थी। इस समय उसकी आंसूभरी आंखोंके आगे सारा संसार धुएंके पहाड़-सा दीख रहा है। अमर अपने मनमें सोच रहा था—"क्या इस विचित्र घटनाने उसके शोकके भारको और भी बढ़ा दिया है ? क्या इससे वह एक नयी तरहकी व्यथा अनुभव कर रही है ?"

कई दिन बीत गये। एक दिन अमरने देवेन्द्रसे पूछा—"देवेन्द्र ! अब मैं क्या करूं ?"

"मैं क्या कहूं ?" यह कह, देवेन्द्र चुप हो रहा ।

"क्या तुम लोग इसे यहीं रखकर इसका व्याह नहीं करा दे सकते ?"

"हम वर कहांसे पायेंगे ? बिना रुपयेके व्याह कैसे होगा ?"

अमरने कहा—"मैं रुपया दूंगा।"

"मेरी मांकी राय नहीं है, अतएव मैं इसे अपने घर कैसे रख सकता हूं ? वे कहती हैं कि अपनी जातिकी लड़की नहीं है, हम-लोग कहां इसके लिये वर ढूंढ़ते फिरेंगे ? तुम्हारे सिवा अब इसका कहीं ठिकाना नहीं है। मुझे तो यही एक उपाय दीखता है कि तुम इसे अपने साथ ले जाओ और अच्छा-सा वर ढूंढ़-कर इसका कहीं व्याह करा दो। यहां छोड़ जाओगे तो तुम्हें अपनी जवाबदेहीका ख़याल रहेगा, यह तो अब माननेकी बात नहीं है।"

देवेन्द्रकी श्लेष-भरी बातसे झुंझलाकर और कोई और उपाय न देख, अमर अपने कर्मके फल-स्वरूप चारुलताको साथ ले, कलकत्ते चला आया।

तीसरा परिच्छेद

फूल-सा मुखड़ा।

अमरनाथने पहले सोचा था कि चारुको किसी दोस्तके डेरे-पर रख दूंगा; पर जब देवेन्द्रने ही उसका भार ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया तब उसे और किसी मित्रसे सहायता लेनेकी प्रवृत्ति न हुई। न जाने कौन क्या कहेगा, कितनी कैफ़ि-यत और गवाही-साक्षी मांगेगा। सब कुछ पूछ-पाछकर भी बहुत सम्भव है कि लोग यही कहकर टाल दें कि यह दूसरेकी झंझट कौन अपने सिरपर लेने जाये? ख़ासकर यह हिन्दूकी व्याहने योग्य क्वांरी लड़की ठहरी! यह बोझा कौन अपने सिरपर ले? लाचार, अमरने चारुको अपने ही डेरेमें रक्खा, छुट्टीके दिन तो इसी झमेलेमें कट गये। अमरका घर जाना नहीं हुआ। हरनाथ-बाबूने कैफ़ियत तलब की! अमरने जिस-किसी तरह समझा-बुझाकर सिरकी बला टाली।

अमरका डेरा खूब लम्बा-चौड़ा था, इसलिये चारुके लिये मकानका कोई और बन्दोबस्त करनेकी ज़रूरत नहीं पड़ी। सिर्फ़ एक बुढ़िया दाई रखनी पड़ी। चारुके

स्नेह-भरे वचन कहकर समझाते-बुझाते हुए वह उसे डेरेपर ले आया और नियमित रूपसे कालेज जाना-आना आरम्भ किया। साथ ही उसके लिये वरकी भी तलाश करता रहा। न जाने क्यों, पिताको यह सब हाल लिखते हुए उसे बड़ा सङ्कोच हो रहा था। उसने सोच रक्खा था कि शीघ्र ही किसी अच्छे वरके साथ इसकी शादी करके यदि पीछे पिताको इस अनावश्यक बातकी सूचना दूं तो भी ठीक है, और नहीं दूं तो भी कोई हर्ज नहीं है। परन्तु इस समय सब लोगोंकी कौतूहल-भरी कृपादृष्टिके सामने असहाया चारुको भिखारिणी-की भांति खड़ी करते हुए अमरका कलेजा फटा जाता था। उस मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई बुढ़ियाके सामने एक प्रकारसे वह अङ्गीकारके बन्धनमें पड़ गया था, इस बातकी याद आकर उसको रह-रहकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बना देती थी। क्या करूं, क्या नहीं, यह स्थिर न कर सकनेके कारण वह अछता-पछताकर बड़ी उत्कण्ठा और व्यग्रताके साथ वर ढूंढ़ने लगा। देवेन्द्रने हालमे एक चिट्ठी भेजकर उससे पूछा था कि चारुके लिये क्या प्रबन्ध हो रहा है। क्रोध और कुढ़नेके कारण अमरनाथने उस चिट्ठीका कोई उत्तर नहीं दिया।

नयी वर्षा आरम्भ होते ही महानगरीने नयी शोभा धारण की। ऊंची अटारियां, खिड़कियोंके दरवाज़े बन्द रहनेपर भी, नववर्षाके आगमनका संवाद उससे छिपाये न रख सकीं। खुली हुई छतके ऊपर कज्जलके रंगवाले आसमानसे मोतियोंकी

धाराकी भांति पानी बरस रहा है। पास ही शिरीष और कदम्बके फूले हुए वृक्ष खड़े हैं। छतपर गमलोंमें चारुने जो फूलोंके पेड़ लगा रक्खे थे उनकी भीनी-भीनी सुगन्ध खुली खिड़कीकी राहसे आ रही है। उसी खुली हुई खिड़कीके सामने चारुलता खड़ी है। छोटे-छोटे पानीके छींटे, खिड़कीकी राहसे भीतर आ, उसके बन्धनसे निकले हुए बिखरे बालोंपर पड़कर, छोटे-छोटे मोतीके दानोंकी तरह दिखलाई पड़ते हैं।

चारु खड़ी-खड़ी अपने गांवकी बात सोच रही थी। बरसातके दिनोंमे किस तरह वह अपनी फूसकी मड़ैयाके ओसारेमें बैठी पानीकी बहार देखा करती। झमाझम पानी बरसा करता, मेंढ़क और झींगुर बोला करते, जङ्गली फूलोंकी मधुर सुगन्ध हर तरफ़से आया करती। रह-रहकर मेघ गड़-गड़ाने लगता और मां पुकार उठतीं—"अरी चारु! चली आ, घरके अन्दर आ जा।"

इसी समय पीछेसे अमरनाथने कहा—"यह क्या चारु! तुम पानीमें भींग क्यों रही हो?"

बिना मुंह फेरे ही चारु एक ओर हट गयी। अमर घूमकर उसके सामने चला आया और उसकी ओर देखने लगा। उसने पूछा—"चारु! तुम रो क्यों रही हो?"

चारु चुपचाप रही।

"क्यों रोती हो? क्या यहां तुम्हें कोई कष्ट है?"

चारुने क्षीण कण्ठसे कहा—"नहीं।"

"तब क्यों रोती हो ? न बतलाओगी ? क्या मांके लिये जी उदास हो रहा है ?"

"हां।"

अमरने खिड़कीके पास जाकर किवाड़ बन्द कर दिया। इसके बाद एक कुर्सीपर बैठकर एक दूसरी कुर्सीकी ओर इशारा करते हुए बोला—"बैठो।"

चारु बड़े सङ्कोचके साथ उसपर बैठ रही।

"चारु ! अब भी तुम छिपे-छिपे मांके लिये रोती हो ?"

"नहीं।"

"अभी तो रो रही थीं ?"

"आज एकाएक मन न जाने कैसा तो हो गया !"

"क्यों ऐसा मन हो गया, चारु ?"

"सो कैसे कहूं ? यह बादर-बूंदी देखकर ही हो गया होगा।"

"सो क्यों ?"

"बूंदा-बांदीमें मैं बाहर भींगती रहती तो मेरी मां मुझे घरके भीतर बुला लेती थीं। और—" कहते-कहते चारुने आंसुओंसे धुले हुए अपने मुंहको नीचा कर लिया। अमरने स्नेह-भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए कहा—"चारु ! क्या और कोई तुम्हें वैसा प्यार नहीं करता ?"

चारु चुपचाप अपनी आंखें पोंछती रही।

"चारु ! क्या और किसीको उनकी तरह तुम्हारे लिये चिन्ता नहीं रहती ?"

चारु अधखुले कण्ठसे बोली—"मेरा और कौन है ?—आपके सिवा !"

अमरने चारुको तनिक हंसा देनेके लिये हंसते हुए कहा—"यह 'आपके सिवा' वाली बात तुमने पीछेसे सोचकर कही है, क्यो ? जब रो रही थीं, तब यह बात याद नहीं थी ?—ऐं ।"

चारुने सिर ऊपर उठाया—तनिक आनन्द और लज्जाका आभास पाकर उसका पीला मुखड़ा लाल हो आया। उसने मृदु स्वरसे कहा—"नहीं ।"

अमरने फिर मुस्कुराकर कहा—"इस 'नहीं' के क्या मानी ? तुम्हें यह बात याद नहीं थी अथवा पीछेसे सोच-विचारकर नहीं बोली हो ?"

चारु तनिक और प्रफुल्ल मुखसे नीची नज़र किये बोली—"आप मेरे लिये सोच-फ़िक्र करते हैं, मुझे प्यार करते हैं—यह बात मुझे सदा याद रहती है। मेरी मां मुझे आपके ही हाथोंमे तो सौंप गयी हैं ।"

किधरकी बात किधर जा पड़ी !—अमरके कलेजेमे फिर एक आघात पहुंचा। बेचारी सीधी-सादी बालिका बात करना नहीं जानती, इसीलिये उसने बात घुमा-घुमाकर नहीं कही, सीधी तरह कह डाली। अमरनाथ उस बातको मनसे दूर करनेके लिये अपनी कुर्सी थोड़ी दूर हटा ले गया और कुछ देरतक उसीपर चुपचाप बैठा रहा ।

चारु भी उसी प्रकार सिर नीचा किये बैठी रही। क्षण-भर

बाद अमरनाथने गला साफ़ कर धीरेसे कहा—"इसीलिये तो मैं तुम्हारा ब्याह जिसी-तिसीके साथ करके आफ़त नहीं टालना चाहता। इतने दिन खोजने-ढूंढनेके बाद अबकी बार मुझे एक अच्छा वर मिला है। तुम्हें अच्छेसे वरके हाथमें दे, तुम्हें सुखी देख, मैं इस बार ऋणसे छुटकारा पा जाऊंगा। चारु! इतनी शर्म न करो। तुम अब नन्ही-नादान नहीं, सब समझती-बूझती हो। विचारकर देखो, ये सब बातें अगर मैं तुमसे न कहूं, तो किससे कहूं? ऐसा तुम्हारा अपना-सगा कौन है, चारु?"

अमरनाथ अच्छी तरह समझ रहा था कि वह कोरी बकवास कर रहा है, उसकी बातें बहरे कानोंपर पड़ रही हैं; क्योंकि चारुकी हरकतोंसे यह नहीं मालूम हुआ कि वह उसकी बातोंका कुछ जवाब देना चाहती है। ब्याहकी बात छिड़ते ही चारु गूंगी-सी हो रही। तो यह क्या बालिका-सुलभ लज्जा है?—अथवा यह क्या? अमरनाथके मनमें न जाने कैसा कौतूहल उठ रहा था और धीरे-धीरे बढ़ता जाता था।

"चारुलता! मैंने जो कहा वह तुम्हारी समझमें आया कि नहीं? तुम किसी तरह नाराज़ तो नहीं हुई?"

चारु पहलेसे भी अधिक अचल भाव धारण करने लगी। उसने अमरनाथकी बातका कोई जवाब नहीं दिया। उसका यों भाव बदलते देख, अमरनाथके मनमें एक नयी तरहकी आशङ्का धीरे-धीरे जगह करने लगी। विवाहके सम्बन्धमें चारुकी चुप्पी

कुछ निराले ही ढंगकी है—इसे ठीक-ठीक न तो लज्जा ही कह सकते हैं, न सङ्कोच—यह तो मुर्दोंकी-सी निश्चेष्टता है। अमरनाथका जी बेचैन हो उठा; पर उसे कोई उपाय भी नहीं दिखाई देता था। सहसा अमरनाथको याद आया कि चारु स्नेह-सवन्धी बातोंका ठीक-ठीक जवाब देती है, और उस तरहकी बातें सुनकर प्रसन्न भी हो जाती है, अतएव वैसी ही बात छेड़कर अगर उसके जीकी बात मालूम कर सकूं तो इस समस्याकी मीमांसा हो सकती है, अतएव यही चेष्टा कर देखूं तो अच्छा है। यही सोचकर अमरने गप्प छेड़ दी —

"अच्छा, चारु! तुम अपने गांवमें किस-किसको बहुत मानती थीं?"

चारुने पहले तो कुछ उत्तर नहीं दिया, किन्तु जब अमरनाथने और दो-तीन बार यह प्रश्न किया तब लाचार बड़े धीमे स्वरमें रुक-रुककर कहने लगी—

"किस-किसको? मांको, भोलू नामके कुत्तेको, मैनाको, देवेन्द्र-भैयाकी बहन सुखूको, देवेन्द्र-भैयाको, आपको—"

"मुझको? यह कैसी बात, चारु! मैं क्या तुम्हारे गांवका हूं? मुझे तुमने कहांसे अपने गांववालोंमें गिन लिया?"

"क्यों, आप तो मेरे यहां दो-दो बार जा चुके हैं। आप-ही-ने मेरी बीमारी छुड़ायी थी। मां आपको कितना प्यार करतीं, कितना आपका नाम ले-लेकर आपको याद किया करतीं, देवेन्द्र-भैया, आप और आपके घरकी कितनी बातें कहा करते थे।"

अमरनाथने देखा कि वह जिस बातसे भागा फिरता था वही सामने आ पड़ी। मन-ही-मन देवेन्द्रकी नासमझीकी निन्दा करते हुए उसने फिर गप्प छेड़ी, पूछा—"अच्छा चारु! मैं यदि ठीक अपने जैसे, बल्कि अपनेसे भी अच्छे आदमीके साथ तुम्हारा ब्याह करा दूं तो कैसा हो? तुम उसे खूब प्यार करोगी न?"

"नहीं।"

अमर कांप उठा। बोला—"क्यों, चारु?"

"आप मुझे बहुत प्यार करते हैं।"

"वह तुम्हें मेरी अपेक्षा अधिक प्यार करेगा।"

चारु अबको फिर सूखे काठकी तरह अचल हो रही। अमरनाथने चुप हो रहनेकी चेष्टा की, पर उससे चुप न रहा गया। उसे न जाने कैसा कुलक्षण दिखाई दिया। वह फिर कहने लगा—"हां, चारु! वह तुम्हें बहुत मानेगा, बड़ा प्यार करेगा। वह बड़ा आदमी है। उसका बड़ा भारी मकान है। कितने ही नौकर-चाकर और दासियां हैं। तुम वहां सङ्ग खेलनेवाली सखियां भी बहुतेरी पाओगी। ब्याह होनेपर वह तुम्हें अपने घर ले जायगा। क्यों, चारु! सुनकर सुखी हुई या नहीं? वह देखनेमें बड़ा ही सुन्दर—बड़ा ही भला आदमी है।"—अमरने सहसा देखा कि चारु दोनों हाथोंसे मुंह छिपाये कुर्सीको बांहपर सिर टेके हुए है। अस्फुट रोदन-ध्वनि बड़ी कठिनतासे उसके गलेसे बाहर हो रही है। अमरने झटपट उसके सिरपर हाथ रख, स्नेह मिली हुई झिड़कीके साथ कहा—"यह क्या चारु? यह क्यों? यह क्या?"

चारुने रुंधे हुए गलेसे कहा—"मैं वहां न जाऊंगी। कदापि नहीं जाऊंगी।"

"यह क्या? क्यो नहीं जाओगी, चारु?"

"तब तो मैं मर ही जाऊंगी।"

अमर भौंचक-सा होकर खड़ा रहा। इतनी देरतक वह जिस बातको बड़े बलपूर्वक अपने मनसे निकाल बाहर कर रहा था, यह तो देखते हैं कि वही बात स्पष्ट भावसे उसके सामने आ खड़ी हुई! अब तो उसे झूठा सन्देह कहकर उड़ा नहीं दिया जा सकता। यह लो, यह दुखिया और थर-थर कांपती तथा रोती हुई बालिका आंखोंमे आंसू भरे, चुपचाप सिर झुकाये, मानों यही कह रही है कि मैं तुम्हारी हूं, मैं और किसीकी नहीं हो सकती।

अमरनाथ यह सुनकर हक्काबक्का-सा हो गया, पर इससे कुछ दुःखित थोड़े ही हुआ? दुःख कैसा? इस सरल, स्निग्ध, और अधखिले फूलकी तरह किशोर-हृदयके ऐसे देवभोग्य प्रथमोत्थित प्रणयके आभासका वह अनादर थोड़े ही कर सकता है? ऐसा प्रेम न तो उसने किसीसे पाया है और न किसीको उसने ऐसा प्यार किया है कि जिसके लिये इस बालिकाके प्रेमका प्रतिदान करते हुए वह दु.खित हो! और वह अपना कर्त्तव्य भी तो नहीं स्थिर कर सकता था? अपने विवाहकी बात और पिताके क्रोध आदि कारणोंकी पर्य्यालोचना कर, वह वर ढूंढ़ रहा था सही; पर क्या वे सरलता-भरी, स्वच्छ और नीली आंखें एकबार ही सारा मामला उलट-पलट नहीं देती

...हूँ ? तो भी वह किसी-न-किसी तरह अपना कर्त्तव्य पूरा करता; परन्तु अब क्या करे ? अब तो और भी गपड़चौथ हो गयी ! गड़बड़ हुई सही, पर क्या इसी गड़बड़से उसका शोणित-समुद्र सुखकी लहरोंसे उछलने नहीं लगा ? चारु—चारुलता—उसकी है ! चारु उसे ही प्यार करती है ! अब यह बात जान-सुनकर भी वह कैसे इस प्रेमका निरादर कर सकता है ? मनुष्य-के मनकी इच्छा जब कर्त्तव्यके भावसे प्रकाशित हो उठती है तब वह उसके चरणोंतले सब कुछ न्योछावर कर दे सकता है। अमर समझ गया कि चारु उसे सदासे प्यार करती आती है। यह असम्भव भी नहीं है, क्योंकि वह अपनी मांसे बराबर ही यह बात सुनती थी कि उसका ब्याह अमरके ही साथ होगा। अमर उसके लिये वर ढूंढ़ रहा था, पर चारु समझती थी कि वह उसीकी होगी।

इस चिन्ताके साथ-ही-साथ उस अन्तिम शय्यापर सोयी हुई विधवाके आगे की हुई प्रतिज्ञा भी नये आकारमें, नयी शक्तिके साथ, उसके मनपर काम करने लगी। तो क्या सचमुच वह प्रतिज्ञा थी ? प्रतिज्ञाके सिवा और उसे कह ही क्या सकते हैं ! उसने जो आपत्ति की, वह तो विधवाके कानमें पड़ी ही नहीं। उसने अमरके उस विस्मित भावको सम्मति :समझकर अन्तिम शय्यापर आराम पाया था। उसी प्रतिज्ञाको अमरनाथ आज अपने स्नेह-धनको कष्ट पहुंचाकर भी तोड़ डालना चाहता है ! अमरनाथने पलक मारते अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया।

ओह, तो क्या मैं बहुविवाह करूं ? पर यह क्या हिन्दू-समाजमें वैसा दूषणीय समझा जाता है ? आजकलके लोग इसे भले ही बुरा बतलायें, पर उससे अमरका क्या बनता-बिगड़ता है ? हां, एक ही डर है। वह यह कि पिता और स्त्रीको दुःख होगा। पर कर्त्तव्य तो सबके ऊपर है ? सम्भव है कि सारा हाल सुनकर, मेरी अवस्थाका अनुभव कर, पिता और स्त्री मुझे क्षमा कर दें। मैं जान-बूझकर कोई अधर्म्म थोड़े ही कर रहा हूं ? मैं तो कर्त्तव्यके कठिन अनुरोधसे धर्म्मकी रक्षा करने जा रहा हूं। इसके लिये वे लोग क्यों नाराज़ होंगे ? अगर हों भी, तो अमरनाथ लाचार है। तब दोनों हाथोंसे चारुका मुंह ऊपर उठाकर अमरनाथने स्नेहसे गद्गद कण्ठ हो पुकारा—"चारु !"

चारुने डबडबायी आंखोंसे उसकी ओर देखा।

"चारु ! तुम क्या मुझे बहुत प्यार करती हो ?"

सम्मति जतानेके लिये सिर हिलाकर चारुने धीरेसे कहा-"हां।"

"मुझे छोड़कर कहीं न जा सकोगी ?"

"हां, कहीं नहीं।"

"तो क्या तुम मेरे साथ व्याह करोगी ? तब तो सचमुच तुम्हें कहीं न जाना पड़ेगा।"

चारुने चुपचाप सिर हिलाकर बतलाया कि हां, मैं व्याह करूंगी। अमरने गम्भीर मुख बनाये हुए कहा—"चारु ! तुम्हें मालूम है कि मैं एक और शादी कर चुका हूं ? मेरी स्त्री मौजूद है ?"

"मालूम है। आपने देवेन्द्र-भैयासे कहा था।"

"तो भी तुम मुझे प्यार करती हो? यह सुनकर भी तुम मेरे ही साथ शादी करना चाहती हो?"

"हां, क्योंकि आप मुझे बहुत प्यार करते हैं।"

"अवश्य प्यार करता हूं; पर देखो, मैंने दूसरेके साथ तुम्हारा ब्याह ठीक किया है। वहां तुम बड़े सुखसे रहोगी। यदि मेरी स्त्रीसे तुम्हारी न पटी तो तुम्हें बड़ा कष्ट झेलना पड़ेगा। मैं भी सुखी न हो सकूंगा। तुम जिस घरमें अकेली रानी बनकर रहो, वहीं रहना तुम्हारे लिये अच्छा है। उस बेचारेके प्रेममें तुम अवश्य ही मुझे भूल जा सकोगी।"

चारुने अबकी फिर कुर्सीकी बांहपर सिर झुकाकर धीरेसे कहा—"मैं आपको छोड़कर कहीं न जा सकूंगी—आपसे बिछुड़कर मैं मर जाऊंगी।"

"तुम पगली हो गयी हो क्या? बिना ब्याह हुए एक साथ रहना कैसे हो सकता है?"

"तब ब्याह ही हो जाने दें, मेरी मां तो मुझे आपको ही सौंप गयी हैं।"

"मेरा ब्याह हो गया है, एक और स्त्री घरमें मौजूद है, तो भी तुम मुझे प्यार कर सकती हो? मेरे साथ ब्याह करनेको तैयार हो?"

चारुने सम्मति जतानेके लिये सिर हिला दिया।

"अच्छा, तो यही होने दो। परन्तु चारु! तुम मुझे सदा

इसी तरह प्यार करोगी न ? क्यों चारु ! दुनियाकी सैकड़ों झञ्झटों और तरद्दुदोंको झेलते हुए भी तुम इसी तरह प्रसन्न-मुखसे मुझे प्यार करती रहोगी न ?" कहते-कहते अमरनाथने दोनों हाथोंसे उसका फूल-सा मुखड़ा और ऊपर उठा लिया, फिर उसे छोड़कर स्थिर और प्रेम-भरी दृष्टिसे उसके उत्तरकी प्रतीक्षामें एकटक उसकी ओर देखता रह गया।

चारुने फिर उसी तरह मुंह छिपाकर कहा—"हां।"

चौथा परिच्छेद

नोक-झोंक

सजा-सजाया कमरा रोशनीसे जगमगा रहा है; खुली खिड़कीकी राहसे आकर शामको खिले हुए हरसिंगारके फूलोंकी प्यारी-प्यारी सुगन्ध कमरेके अन्दर फैल रही है। मन्दिरमें बजती हुई बोधन-नवमीकी शहनाईकी सुरीली तान कानमें पड़कर नींदसे अलसाये हुए लोगोंके मनमें भी एक अपूर्व सुखका आवेश भर रही है। अमरनाथ एक कौचपर लेटा हुआ है।

अमरनाथ आज ही घर आया है। चारुको बहुत-कुछ समझा-बुझाकर कलकत्ते-ही-में छोड़ आया है। उसने सोचा है कि अबकी बार मैं पिता और स्त्रीको अपने शपथकी गुरुताकी बात समझा दूंगा, फिर कोई गोलमाल नहीं रह जायेगा। इस मामलेमें

स्त्रीकी अनुमति लेनेकी सबसे अधिक आवश्यकता है, इसीलिये उसने अभीतक पितासे कुछ भी नहीं कहा है। वह पहले स्त्रीसे ही कहनेके विचारसे उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। धीरेसे द्वार खुला और एक युवती, जो चेहरेको आधे घूंघटसे छिपाये हुए थी, घरके भीतर आयी और गलीचा बिछे हुए फर्शपर चुपचाप पैर रखती हुई पलंगके पास आ, ठिठककर खड़ी हो गयी। इसके बाद धीरे-धीरे आकर वहां खड़ी हुई जहां अमरनाथ अलसाया-सा होकर लेटा हुआ था। अमरनाथकी तन्द्रा टूट गयी—उसने आंखें खुलते ही देखा कि एक अपरिचित रमणी अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंकी काली पुतलियोंको उसीके चेहरेकी ओर फेरे हुए है। अमरनाथ सकपकाकर उठ बैठा। उसके मुंहसे अनजानते ही-में—आप-से-आप यह बात धीरेसे निकल गयी—"कौन है ?"

युवतीने आंखें नीची कर लीं और अमरनाथके विमूढ़ भावका अनुभव कर अपने झुके हुए मुखड़ेको और भी घूंघटसे ढांकती हुई, तनिक कांपते हुए, पर मीठे, स्वरमें बोली—"मैं हूं।" थोड़ी देर बाद, फिर अमरनाथके चेहरेकी ओर देखती हुई अबकी गला साफ़ कर बोली—"मैं हूं सुरमा।"

सुरमा! यह तो मेरी स्त्रीका नाम है। मैंने उस दिन, सुहाग-रातको, जिसे देखा था वही सुरमा अब इतनी बड़ी हो गयी है! अमरनाथ अबकी बहुत सम्हलकर उठ बैठा। स्वप्नके साथ असली बातका बड़ा बेमेल देख, जैसे सपना देखते-देखते जगा हुआ मनुष्य चञ्चल हो जाता है वैसे ही अमरनाथ भी चञ्चल हो

गया। अबतक वह अलसायी आंखोंसे देख रहा था कि सुन्दर सजे-सजाये कमरेमें हरसिंगारके फूलोंकी सुगन्ध और शहनाईकी सुरीली तान आ रही है, साथ ही एक मुग्धा किशोरी शर्माती हुई धीरे-धीरे पांव रखती चली आ रही है, और अपनी सुनील आंखोंसे मेरी ओर देख रही है। सहसा नींद टूट जानेपर उसने देखा कि मुग्धा किशोरीके बदले एक सङ्कोच-हीना युवती, अपनी स्थिर और असहनीय ज्योतिसे भरी हुई आंखोंकी पुतलियां नचाती हुई, मेरी ओर एकटक देखती हुई खड़ी है। यहां उसीका अटल अधिकार है—और वह लज्जाके भारसे झुकी हुई बालिका तो यहांके लिये अपराधिनी अभिसारिका-मात्र है।

अमरनाथ, गम्भीर मुख बनाये, चुपचाप बैठा रहा।

कुछ देर खड़ी रहनेके बाद सुरमा किसी कामके बहाने उस सजी हुई मेज़के पास चली गयी। वहां जा, टेबिलपरकी चीज़ें इधरसे उधर कर, वह मानों यही सोचने लगी कि अब क्या करूं। इसके बाद जब वह द्वारकी ओर बढ़ चली तब अमरनाथने कहा—"सुनो तो सही।"

सुरमा पास आ खड़ी हुई।

अमर—"बैठो।"

इधर-उधर देखकर सुरमा अन्तमें अमरनाथकी कोचके ही एक हिस्सेमें बड़े सङ्कोचके साथ जा बैठी। वह बड़ी देरतक स्वामीको चुप्पी साधे देख, फिर अपनी अचञ्चल आंखोंको अमरके चेहरेकी ओर फेरकर बोली—"तुमने मुझे पुकारा था?"

अमरनाथ अब भी चुप है ।—

कुछ ही क्षण बाद सुरमाने कहा—"तुम क्या मुझसे कोई बात कहना चाहते हो ?"

"हां ।"

"कौनसी बात है ? कहो ।"

अमरनाथ अब भी चुप है ।

कुछ देर ठहरकर सुरमाने फिर कहा—"कोई सङ्कोचकी बात है क्या ?"

अबकी अमरनाथका मुंह खुला, बोला—"मुझे तो वैसा कुछ सङ्कोच नहीं मालूम होता ।"

"तो क्या ऐसी कोई बात है जो मुझे सङ्कोचजनक मालूम पड़े ?"

"नहीं—तुम्हें भी ऐसी कुछ सङ्कोचजनक नहीं मालूम पड़ेगी । बात मेरे ही लिये कुछ सङ्कोचकी है; क्योंकि कर्त्तव्यकी बात है । तुम इस बातको अच्छी तरह मन लगाकर सुनो और सुनकर अच्छी तरह इस मामलेको समझनेकी चेष्टा करो ।"

"कहो ।"

तब अमरनाथने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया । हां, इसमें शक नहीं कि उसने उतना ही कहा जितना वह कह सकता था, पहली बार चारुके गांवमें जानेपर उसकी दवा-दारू कर उसकी बीमारी दूर करना, फिर देवेन्द्रके कहनेसे एक बार और पूजाकी छुट्टियोंमें जाना, उस समयकी बातचीत; फिर घर आते ही

सुरमाके सङ्ग ब्याह होना, उधर उन लोगोंका झूठी आशामें पड़े रहना; फिर अन्तमें चारुकी माताका मरते-मरते उसको एक तरहकी शपथमें बांधना—ये सब बातें अमरनाथने एक-एक करके अपनी स्त्रीको कह सुनायीं।

सुरमा चुपचाप सब सुनती रही। अमरनाथके चुप हो जानेके क्षण-भर बाद वह बोली—"वह लड़की इस समय कहां है?"

कौन लड़की? वही चारु? वह तो मेरे कलकत्तेवाले डेरेमें है।"

"कलकत्तेवाले डेरेमें? तब तो वह जेठ या आषाढ़ महीनेसे ही वहां होगी? पर हमलोगोंको तो इतने दिनोंतक कुछ भी मालूम न होने पाया?"

अमरनाथका मिज़ाज कुछ गरम हो आया। सुरमाकी इस बातमें उसे एक तरहका कर्तृत्व और तिरस्कार-भरा भाव दिखलाई पड़ा।

"अगर पहले नहीं बतलाया तो कुछ बेजा थोड़े ही हुआ? जैसे तब कहता वैसे ही अब कहा।"

दोनों एक ही बात नहीं हैं। चारु—शायद उसका नाम चारु ही है; क्यों? उसे यहीं लाकर रखते तो क्या बुरा होता?"

अमरनाथ ज़रा और उत्तेजित होकर बोला—"जैसा वहां रखना वैसा ही यहां रखना—दोनों बराबर ही हैं। हैं या नहीं?"

"नहीं। यहां तुम्हारे पिता हैं, स्त्री है।"

"जिसके साथ मैं ब्याह करूंगा उसे यदि मैंने पहलेसे ही अपने पास रख लिया तो कोई बुराई नहीं हुई।"

"थोड़ी-बहुत बुराई तो हुई ही। ख़ैर, वह बात जाने दो। तो क्या इस समय तुमने उससे ब्याह करनेका निश्चय किया है?"

"अब नहीं, यह तो पहलेसे ही निश्चय है। ऐसी हालतमें ब्याह करनेके सिवा और क्या किया जा सकता है?"

"अब तो ब्याह करना ही कर्त्तव्य मालूम पड़ता है, परन्तु यदि तुम उसी समय चाहते तो उसका ब्याह करा दे सकते थे।"

"इस 'अब और तब' में क्या भेद है?"

युवतीने जलती हुई आंखोंसे उसकी ओर देखकर कहा—"इस समय तुम उसे प्यार करते हो।"

क्रोधके साथ उठकर खड़े होते हुए अमरनाथने ज़ोरसे कहा—"ये एकदम स्वार्थपरताकी बातें हैं! मैं-मैं क्या उसे प्यार करता हूं? क्या दिल आ जानेके कारण ब्याह करने जा रहा हूं? नहीं, उसके साथ विवाह करना पहले भी कर्त्तव्य था, और इस समय भी है।"

"अच्छा। तो क्या तुम मेरी राय लेने आये हो? क्या यह भी तुम्हारे कर्त्तव्यका ही अङ्ग है?"

"मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं; पर हां, यह बात तुम्हारे कानोंतक पहुंचा देना मेरे लिये आवश्यक था।"

"अच्छी बात है। शायद तुमने पिताजीसे अभी नहीं कहा है। यह भी तो कर्त्तव्य है?"

"इस विषयमें तुम्हारे याद दिलानेका कोई काम नहीं है।"

"तो क्या समझते हो कि वे राज़ी हो जायेंगे?"
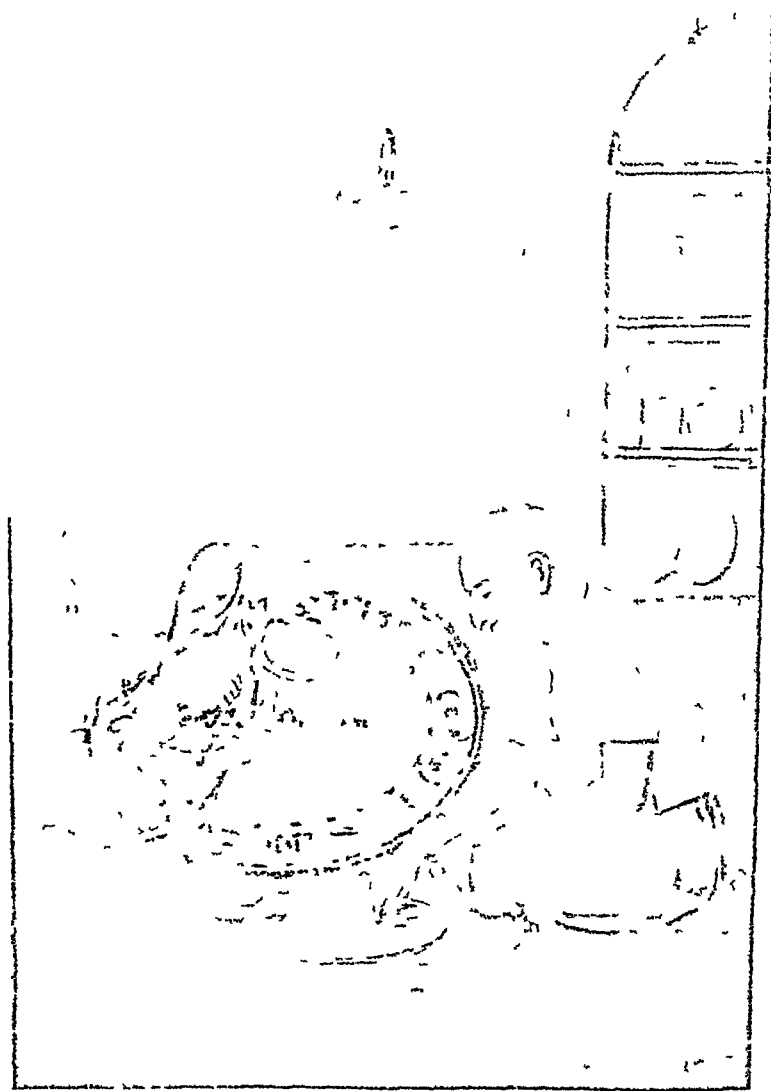
घरके मालिक हरनाथ बाबू भोजन करने बैठे हैं। पास ही बैठी आधा घूँघट काढ़े उनकी पुत्रवधू सुरमा हाथमें ताड़का पंखा लिये हवा कर रही है। [पृ० ९१]

"हों या न हों, पर मैं तो अपना कर्त्तव्य करूँगा ही।"

"वे सम्मति दें या नहीं, पर तुम्हारा मूल कर्त्तव्य स्थिर है, क्यों?"

"निश्चय ही।"

"अच्छा, तो मैं अब जा सकती हूं?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।" कहता हुआ अमरनाथ खाली कौचपर सो रहा। सुरमा खड़ी-खड़ी न जाने क्या सोचती रही—इसके बाद, धीरे-धीरे घरके बाहर चली गयी।

पांचवां परिच्छेद

कुलाङ्गारकी करतूत

दिनके दो पहरका समय है। घरके मालिक हरनाथ-बाबू भोजन करने बैठे हैं। पास ही बैठी, आधा घूंघट काढ़े, उनकी पुत्रवधू सुरमा, हाथमें ताड़का पंखा लिये, हवा कर रही है। हरनाथ-बाबू बड़े ही अनमने-से होकर भोजन कर रहे हैं। कुछ क्षण बाद सहसा बहूकी ओर देखकर बोले, "बहू!"

बहूने सिर ऊपर उठाकर ससुरकी ओर देखा।

हरनाथ-बाबू ज़रा ठहरकर बोले—

"अमर घर आया है, यह तो तुम्हें मालूम है न?"

बहूको सिर नीचा करते देख, ससुरने समझ लिया कि इसे यह बात मालूम हो चुकी है।

"कल वह तुमसे मिला था क्या?"

सुरमा चुपचाप सिर नीचा किये रही। जब हरनाथ-बाबूने फिर पूछा तब लाचार हो बोली—"हां।"

"कुछ कहता था?"

वहूने चुपचाप सिर हिला दिया।

हरनाथ-बाबू फिर कुछ देरतक चुप रहनेके बाद बोले—"तो मालूम होता है कि तुम्हें सब बातें मालूम हो गयी हैं?"

सिर झुकाये ही सुरमाने धीमे स्वरसे कहा—"हां, मैंने सब सुना है।"

हरनाथ-बाबू एकाएक कड़ककर बोल उठे—"देखो तो, अभागेको लज्जा भी नहीं आती! एकबारही सारी विद्या-बुद्धि खो बैठा है। भला अपना सिर कटाकर प्रतिज्ञा-पालन किया जाता है? लल्लू एकबारही दूजे भीष्म हो गये हैं! क्या कहने हैं! कलकत्तेमें रहनेका यही सब फल है। मैंने उसे वहां पढ़नेको भेजा, यही बड़ी भारी भूल की। अच्छा, जाने दो। मैंने तो उससे ख़ूब समझाकर कह दिया है कि यदि ऐसा करोगे तो मैं तुम्हें त्याज्य पुत्र बना दूंगा—कभी तुम्हारा मुंह भी न देखूंगा। अगर क्षणभरके लिये भी ऐसी बात फिर मनमें आये तो मेरा घर छोड़कर चले जाना। साथ ही यह भी समझ लेना कि उसी दिनसे मेरे साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा।"

बहू चुपचाप पङ्खा झलने लगी। फिर हरनाथ-बाबूने ज़रा पहलेसे धीमे स्वरमें, मानों बहूको ढाढ़स बंधानेके लिये कहा—

"मालूम होता है कि अब वह ऐसा करनेका साहस न करेगा। मैंने उससे कह दिया है कि आज ही कलकत्ते जाकर उस लड़कीको बुला लाओ। किसी अच्छे लड़केके साथ उसकी शादी करा देनेसे ही सिरकी बला टल जायेगी।"

सुरमा कुछ देरतक तो चुपचाप रही, इसके बाद मृदु स्वरसे बोली—"सो कैसे हो सकता है, पिताजी? आप यदि उन्हें त्याज्य पुत्र कर देने या घर-द्वार और ज़र-ज़मीनसे वञ्चित कर देनेकी धमकी न देते तो वही बात अच्छी होती।"

"यह क्या? बहू! तुम यह क्या कह रही हो?"

"आपके निषेधसे क्या विषय-सम्पत्तिका ही मूल्य अधिक है? पिताजी! आप यदि उन्हें ऐसा भय नहीं दिखलाते तो ठीक था।"

कुछ देर चुप रहनेके बाद मालिकने कहा—

"बेटी! जो अपने बापका ऐसा मान रखता है उसीके सम्बन्धमें ऐसा करना उचित भी है।"

"पिताजी! तब जो ऐसा मान नहीं रखता उसे मनमाने रास्तेपर ही क्यों नहीं चलने देते?"

"नहीं बेटी! यह बात तुम आज भले ही कह लो; पर जब मेरी उमरको पहुंचोगी तब समझोगी कि क्यों तुच्छ मानापमानके विचारको लेकर अपने जन्म-भरके प्यारेको इतनी बड़ी भूल करने नहीं दिया जा सकता। वह यदि आगे समुद्र देखकर भी उसमें नादान बच्चेकी तरह कूदने जायेगा तो मैं प्राणपणसे उसे कलेजेसे

लगाये हुए रोके बिना थोड़े ही रह सकता हूं? चाहे इस तरह कलेजेसे लगा रखनेसे वह मन-ही-मन दुःखित भले ही हो, पर मैं उसे हरगिज़ नहीं छोड़ूंगा। यदि वह सीधी तरह प्यारसे कहनेसे न मानेगा तो रो-कलपकर, डरा-धमकाकर, रोक रखनेकी चेष्टा अवश्य करूंगा।"

सुरमाने रुंधे हुए गलेसे कहा—"पिता जी! आप तो मुझे बहुत प्यार करते थे?"

"तो क्या अब नहीं करता? मैं तुम्हें आज भी अपने लड़केसे बढ़कर मानता हूं। तुम्हारे ही कष्टका विचार करके तो मैं और भी—"

"पिताजी! मैं भी तो इसीलिये कह रही हूं। माताजी नहीं रहीं, इसीलिये आपसे ही यह सब बातें कहनी पड़ती हैं। आपकी बातोंसे यह साफ़ मालूम पड़ता है कि सबसे बड़ी बाधा मैं ही हूं। तो क्या मैं सचमुच इतनी स्वार्थिन हूं?"

"जो तुम्हें स्वार्थिन समझे या कहे उसे मैं दुनियाभरमें सबसे बड़ा स्वार्थी समझता हूं। बेटी, मुझे इस बातका बड़ा भारी दुःख हो रहा है कि मैं तुम्हें अपने घर लाकर सुखी न कर सका। यदि ऐसा हुआ तो —"

"यह क्या? आपने तो कुछ भी नहीं खाया! क्या मछली अच्छी नहीं बनी? शोरबा भी अच्छा नहीं मालूम होता?"

"अभी तो खा ही रहा हूं, बेटी! सब चीज़ें अच्छी बनी हैं—लेकिन बेटी, सुनो तो—"

कई दिन बादकी बात है—उस दिन दुर्गापूजाकी षष्ठी तिथि थी। सुरमा देवालयके एक कमरेमें पूजाकी डाली सजा रही थी। चारों ओर नाते-गोतेकी और आपसकी मेलजोलवाली स्त्रियां काम करनेमें लगी हुई थीं। सब-की-सब सुरमाके कहे अनुसार इधर-से उधर डोल रही थीं। खुली हुई खिड़कीके सामने, दरवाज़ेके ऊपर पल्लव-पताकाओंसे सजे हुए नौबतख़ानेपर नौबत बज रही थी। आंगनमें मिठाइयोंके लालचसे इकट्ठे हुए बालकों और बालिकाओंका हंसना और चिल्ला-चिल्लाकर कोलाहल मचाना जारी था।

कुम्हार बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें लोगोंको यह समझानेकी चेष्टा कर रहा था कि मालीने अच्छे-अच्छे गहने और मनोहर मालाएं नहीं बनायीं, इसीलिये मेरी प्रतिमा वैसी भड़कीली नहीं मालूम पड़ती। कुम्हारकी यह बात काटकर मालीने कहा—"अरे! तुम क्या चीज़ हो? तुम्हारा बाप मुझे ख़ूब पहचानता था। मेरे बनाये हुए चिमकीके गहनोंको इस दुनियामें कौन नहीं जानता? आसपासके दस-पांच गांवोंमें ऐसा कौन है जो चन्दर मालीका नाम नहीं जानता? इन्हीं ज़मींदार-बाबूके घर देवीका श्रृंगार करते-करते मैं बूढ़ा हो गया, और तुम आज मेरा ऐब ढूंढ़ने चले हो?" गांवके धनी-धोरी बीच-बचाव करते हुए इन दोनों-का झगड़ा मिटा रहे हैं। नौकर-चाकर शामियानेके नीचे झाड़-फ़ानूस ठीक करनेमें लगे हैं। कोई उन्हें लटका रहा है, कोई उनमें तेल भर रहा है, कोई शीशे साफ़ कर रहा है। शीशेके झाड़की पत्तियोंके हिलनेसे जो मधुर शब्द हो रहा है उसमें

बीच-बीचमें किसी सरदार या ख़ानसामेके हाथसे किसी तसवीर या दीवालगीरके गिर पड़नेसे जो झन-झन-शब्द पैदा होता है वह कोमल सुरमें कड़े मध्यम सुरके मिल जानेकी तरह मालूम पड़ता है। कई उज्ज्वल उपवीत धारण किये हुए ब्राह्मण अपनी लम्बी चुटैया फहराये हुए भद्रा और शुभ योगका पचड़ा निकाले हुए हैं। गांवके भलेमानसोंमेंसे कोई वसु-घरानेकी यात्राकी तैयारियोंका नोन-मिर्च लगाकर वर्णन कर रहा है; कोई किसीसे कह रहा है—"क्यों भाई! इस साल यहां यात्राका प्रबन्ध क्यों नहीं किया गया?" इसपर पुरोहितजीने झुंझलाकर कहा—"अजी! वह सब केवल तामसिक व्यापार है। सात्विक पूजा तो यही है कि महामायाको ख़ूब बढ़िया भोग लगायो जाये, उनकी भली भांति पूजा हो, बलिदान आदि हो। नाच-गान आदि तो तामसिक व्यापार हैं।" यह सुन, किसीने कहा—"अजी, बाबाजी महाराज! आप यह क्या कहते हैं? यह भी भला कोई बात है? देवी-भागवतमें साफ़ लिखा है—वाद्य भाण्ड नृत्य गीत।" इसपर पुरोहितने कहा, "बाबा! जो बात समझते ही नहीं हो उसमें व्यर्थ क्यों टांग अड़ाते हो?" एक ढीठ नवयुवक बोल उठा—"भट्टाचारज-महाराज! आप मांस खाते हैं या नहीं? मांस खाना बड़ा भारी सात्विक काम है न?"

इसपर बड़ा गोलमाल फैला। बूढ़े दीवानजीने आकर किसी-किसी तरहसे उनका झगड़ा मिटाया। एकने कहा—"अरे भाई! अमर कहां है? उसे तो मैंने कहीं देखा ही नहीं। क्या वह नहीं आया?" दीवानजी भर्रायी हुई आवाज़में बोले—

"शायद उनकी पढ़ाई-लिखाईमें हर्ज होता, इसीसे वे नहीं आये। उन्होंने मालिकको चिट्ठी दी है।"

इसी समय एक दासीने आकर सुरमासे कहा—"बहूजी, आपको मालिक बुला रहे हैं।"

सुरमा उठ खड़ी हुई, बोली—"किस लिये बुलाते हैं, सो कुछ कह सकती है?"

"नहीं।"

सुरमाने धीरे-धीरे उस कमरेसे बाहर निकल, बरामदेमें सीढ़ीके पास पहुंचकर देखा कि सामने ही ससुरजी खड़े हैं। उनका चेहरा काला पड़ रहा है। उनके हाथमें एक चिट्ठी है। सुरमाने चौंककर पूछा—"क्या है, बाबा?"

"यह चिट्ठी पढ़ो, आप ही मालूम हो जायेगा।"

"चिट्ठी क्या पढ़ूं? आप ही कहिये।"

"नहीं, नहीं, पढ़कर देखो कि उस कुलाङ्गारने क्या लिखा है।"

ससुरके क्रोधसे कांपते हुए हाथोंसे पत्र लेकर सुरमाने पढ़ा। उसमें लिखा था:—

"पिताजीके चरणोंमें प्रणामके अनन्तर निवेदन है कि मुझे ब्याह कर लेनेके सिवाय और कोई उपाय नहीं दिखलाई पड़ता। मैं ऐसा अधम हूं कि आपकी आज्ञाका पालन नहीं कर सका। और क्या लिखूं?

अभागा—

अमर।"

पत्र पढ़कर सुरमाने उसे ससुरके हाथमें दे दिया और सिर झुकाये खड़ी रही।

"लेकिन कम्बख़्त क्या समझता है कि मैं उसे क्षमा कर दूंगा? इसी दुर्गापूजामें मैं उसे विसर्जन करता हूं!"

यह कह, उन्होंने उस पत्रको सौ-सौ टुकड़े कर फेंक दिया और बड़े वेगसे चले गये।

सुरमा भी धीरे-धीरे पैर रखती हुई अपने आरम्भ किये हुए काममें जा लगी।

छठा परिच्छेद

जवानीका नशा

अमरनाथ उद्भ्रान्त भावसे कलकत्ते आ पहुंचा। अनाहार, अनिद्रा और चिन्ता आदिने मिलकर उसके मस्तकको विश्रृङ्खल भावसे आन्दोलित करना आरम्भ किया।

हावड़ेसे गाड़ीपर सवार हो वह अपने डेरेकी तरफ़ चला। बड़ाबाज़ारके मारवाड़ियोंकी दूकानोंकी उज्वल शोभा आंखोंमें चकाचौंध पैदा कर रही थी। बड़े-बड़े ज़मींदारों और भाग्यवानोंके घर-घर मङ्गल-कलश, आम्र-पल्लवकी माला और कदली-वृक्ष दिखाई दे रहे थे। कहीं नौबतकी शहनाईकी मधुर ध्वनि दुर्गाके आवाहनकी सूचना दे रही थी। अमरनाथको

रह-रहकर अपने घरका वह बृहत् पूजा-मण्डप, वह धूमधाम और वह चहलपहल याद आ रही थी। विदेशसे घर आये हुए बेटेपर बापका वह नेह-भरा बर्त्ताव रह-रहकर याद आ जाता था। उस समय वह जिधर ही जाता, उधर ही लोग उसकी प्रतिष्ठा करते, प्रशंसा-भरी दृष्टिसे उसे देखते। लड़कपनका वह धूलमिट्टीमें खेलना भी याद आ रहा था। पूजाके दिनोंमें यात्राकी धूमधामसे खाना-सोना बन्द हो जाना, सङ्गी-साथियोंको साथ लेकर बीच-बीचमें प्रतिमाके सामने बैठकर उसके दोष-गुणका विचार करना, धूपमें दौड़ने-फिरनेके लिये बापका वह प्यारसे डांटना—आदि लड़कपनकी तमाम छोटी-मोटी बातें याद आ रही थीं। परन्तु आज क्या है? घरपर पूजाकी वैसी ही धूमधाम है, वही पिता हैं; परन्तु अमरनाथ घरपर नहीं है। पूजाके दिनोंमें ही उसके अपराधका विचार कर, पिताने उसे लौट जानेका हुक्म दे दिया। वह अपराधका भार सिरपर लादे चला आया। उनसे दो दिन भी सब्र नहीं किया गया!

लम्बी सांसें लेता हुआ अमरनाथ सोच रहा था—"ऐसा क्यों होता है? अपनी प्रधानतामें थोड़ा-सा भी बट्टा लगते देख, आदमी उस मनुष्यको, जो उसके अधिकारमें बट्टा लगाता है, सौगुनी ताक़तके साथ चोट पहुंचानेकी चेष्टा करता है। जिसे आज प्राणोंसे भी अधिक समझता है, कल उसीके ऊपर आघात करते सङ्कोच नहीं होता। ऐसा क्यों होता है? अकपट और असीम स्नेह भी, जब इस प्रकार प्रतिशोध लेनेके लिये

बेचैन-सा हो पड़ता है, बदलेके विषसे जर्जरित हो उठता है, तब मालूम होता है कि इस संसारमें केवल प्रतिशोधका ही राज्य है। जबतक मनुष्यका आत्माभिमान बना रहता है, उसमें बट्टा नहीं लगता, तभीतक मालूम होता है कि वह क्षमा और स्नेहका परिचय दे सकता है।"

उसे रह-रहकर अपनी बातें भी याद आती थीं। पिता असन्तुष्ट होंगे, यह बात सोचते ही किसी दिन उसका कलेजा निकलने लगता था; लेकिन आज पिताके बाहरी क्रोधसे ढंकी हुई उनकी आन्तरिक दारुण वेदनाका चाञ्चल्य देखकर भी उसी अमरनाथको यह नहीं सूझता कि मुझे क्या करना चाहिये! वही पिता हैं, जिनके अधीन रहने, जिनके स्नेहके आदेश-पर निर्भर रहनेके कारण बालक अमरनाथको अपने सुख-दुःखका अस्तित्वतक नहीं मालूम होने पाता था। पर युवा अमरनाथके वही वृद्ध पिता, हृदयमें वैसे ही स्नेहशील होते हुए भी, आज आघात पाकर ऐसे कठिन हो गये हैं; तथापि उन्हीं पिताको अतिक्रम कर अमरनाथ अपने वर्तमान सुख-दुःखमें पड़कर विद्रोहका झण्डा उड़ानेको तैयार है! हायरी जवानी! क्या तेरे ही लिये दुनिया इतनी लालायित रहती है? क्या इसीलिये मनुष्य आजन्म-सञ्चित भाण्डारको शून्य कर, सब कुछको तुच्छ समझकर, नवजीवन-समुद्रके तटपर आशासे आलोकित उषाके प्रारम्भमें नूतन रत्न संग्रह करनेको उत्सुक होता है? क्या इसीलिये वह पुरानी बही फेंककर, नये

सालमें, नयी वही जारी करता और नये व्यापारियोंके साथ लेन-देन करता है? क्या इसीलिये वह नया हिसाब इतना साफ़, इतना शीघ्र समझमें आनेवाला होता है? क्या इसीलिये उसमें इतना अधिक मूलधन है? पर शायद पुराना खाता खोल-कर देखा जाये तो वह मूलधन किसीके दिये हुए क़र्ज़के ही हिसाबमें दिखाई दे! इसीलिये उसे नया कारबार करनेके लिये सबसे पहले उस पुराने खातेका जमाख़र्च बराबर कर देना पड़ता है। हायरे यौवन! तेरा भी यही हाल है? तेरे फेनिलो-च्छ्वाससे मनमें समायी हुई कठोर कर्त्तव्य-चिन्ता धो-बहा दी जाती है, इसीलिये क्या तू इतना सुखदायक है? तेरे तेज़ नशेमें पड़कर मनुष्य बावला हो जाता है, दुःखके गहरे गड्ढे में गिरकर भी तेरे ही नशेमें मस्त रहता है। हाय रे, तीनों लोकके तृषित हृदयोंके वाञ्छित सुरा-सदृश यौवन! हाय, यौवन! तू एक ही साथ अमृत भी है और विष भी।

अमरनाथने डेरेपर पहुंच, सीढ़ियां तय कर ऊपर आते ही देखा कि सामने बुढ़िया दासी खड़ी है। उसे देखते ही दासी बोल उठी—"अहा! बाबू आ गये। जान बची। बड़ी चिन्ता हो रही थी—"

"क्यों, क्यों? चारु कहां है? कैसी है?"

"सोही तो बाबूजी! वे अच्छी होतीं तो चिन्ता काहेकी थी?"

"क्यों, क्या हुआ है?"

"ज्वर हुआ है, और क्या? लेकिन बाबू! इतनी बड़ी उमर

हुई, मैंने ऐसी लड़की आजतक कभी नहीं देखी। तमाम कमरेकी खिड़कियां खोले रहती है, ज़रा भी होश नहीं रखतीं, यह कैसा लड़कपन है? रातको खिड़कियां बन्द करनेमें डर मालूम होता हो तो सवेरे तो बन्द कर देना चाहिये? नहीं तो मुझसे कहना चाहिये। पर यह नहीं हो आता। दो-दो रातोंतक खूब सर्दी लगी है, इसीसे ज्वर हो आया। हरिको भेजकर डाक्टरको बुलवाया, दवा दिलवायी, और म क्या करूं?—"

"जाने दो, पहले यह तो बतलाओ कि ज्वर उतरा या नहीं? कब ज्वर हुआ था?"

"कल हुआ था। डाक्टर कह गया है कि अभीतक नहीं उतरा।"

अमरनाथ धीरे-धीरे पैर रखता हुआ चारुके सोनेवाले कमरेमें आया। चारु सेजपर आंखें मूंदे पड़ी है, चेहरा लाल हो रहा है, मालूम होता है कि नींदमें बेसुध है। अमरनाथ खड़ा-खड़ा देखने लगा—दो साल पहलेकी बातें याद हो आयीं। उस समय भी वह इसी तरह ज्वरके प्रकोपमें अचेत होकर पड़ी हुई थी। चेहरेका रंग इसी तरह सुर्ख़ हो रहा था। उस समय वह अपने टूटे-फूटे मकानमें मैली सेजपर सोयी हुई थी। इस समय देखने-में और उमरमें भी उस समयकी अपेक्षा वह बड़ी हो गयी है, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह "पल्लविनीलतेव" किशोरी चारुलता वही चारु है। परन्तु यह घर वैसा टूटा-फूटा नहीं, यह शय्या भी वैसी मलिन नहीं। तिनतल्लेके इस सजे हुए कमरे-

मे, ऊंचे पलंगपर, कोमल और साफ़-सुथरे बिछावनपर, वसन-भूषणसे सज्जित चारु लेटी हुई है। परन्तु उस जीर्ण गृहकी दीना बालिका चारु क्या इसकी अपेक्षा भी अनाथ, अधिक परदया-प्रत्याशिनी और अधिक सहायहीना थी? जो अमङ्गलकी आ-शङ्कासे कातर और अटूट स्नेहसे भरा हुआ मातृ-हृदय उसके पास वैठा हुआ उसके रोगसे पीले मुखड़ेकी ओर देखता रहता था, वह स्नेह-दृष्टि क्या उसे सारे संसारके ऐश्वर्य्यके ऊपर नही वैठा देती थी? वेचारी मांको क्या मालूम था कि उसके स्नेहकी सम्पत्ति इस प्रकार एक वेसरोकारी और कठोर-हृदय विचारकके सामने अनाथा भिखमङ्गिनकी तरह खड़ी होगी? और वह उसे इच्छा होते ही पैरोंसे कुचल दे सकता है? अमरनाथकी आंखोंमें जल भर आया। उसके जीमें आया कि कौन जाने यह जङ्गली फूल वन-ही-में खिलकर डालपर रहता या चू जाता? इसे इस संसारमें—आदमियोंकी वस्तीमें—लाकर दुनियाके सामने इसकी हंसी करानेवाला मैं ही हूं। यदि मैं वहां नहीं जाता, क्षणभरके लिये भी इन लोगोंसे अपनपौ नहीं दिख-लाता, तो यह क्यों मेरे सम्वन्धमे ऐसी आशाको हृदयमें स्थान देती? फिर तो अपनी भरसक अच्छा घर-वर देखकर इसकी माता इसका हाथ किसी अच्छे पुरुषको अवश्य ही पकड़ा देती। चारुकी यह अवस्था मेरी ही वदौलत हुई है।

यही सोचते हुए अमरनाथने, यह देखनेके लिये कि ज्वर है या नहीं, ज्योंही चारुके ललाटपर हाथ रक्खा त्योंही चारुने

चौंककर आंखें खोल दीं। उसे देखते ही वह डरी हुई-सी करवट बदलकर बोली—"आप हैं? कब आये?"

अमरने गम्भीर मुख बनाये हुए कहा—"अभी चला आ रहा हूं।"

"अभी? गाड़ीकी आवाज़ तो मैंने सुनी ही नहीं? मालूम होता है कि मैं सो गयी थी।"

"सुना है कि तुम्हें ज्वर आ रहा है? क्या अभीतक उतरा नहीं है?"

"आप तो कह गये थे कि पूजाके बाद आऊंगा; फिर अभी क्यों चले आये? क्या फिर जाइयेगा?"

"हां, जाऊंगा।"

"फिर जायेंगे? अबकी कब आइयेगा?"

"चारु! तुम मेरे साथ मेरे घरपर चलोगी?"

"आपके घर? क्या आप मुझे वहां लिवा ले चलेंगे?"

"मेरे पिताने तुम्हींको साथ ले आनेके लिये मुझे भेजा है।"

हर्षकी अधिकतासे चारु शय्याके ऊपर उठकर बैठ रही।

"उठो मत, पड़ी रहो, अभी ज्वर बना हुआ है।"

"डाक्टरने कहा है कि जल्दी ही छूट जायेगा। हमलोगोंको कब चलना होगा?"

"कल ही चलो न। चारु! तुम्हें वहां जाते आनन्द होता है?"

"हां।"

"क्यों?"

"अपना घर ही जो ठहरा।"

"चारु! अपना घर होनेसे ही क्या वह तुम्हारे लिये निरापद स्थान है? मेरा घर होने-ही-से तो वह तुम्हारे लिये बड़ी भयानक जगह है।"

"भयानक जगह? सो क्यों?"

"क्यों? तुम्हें क्या यह नहीं मालूम होता कि मैंने अपने घरवालोंकी समझसे कितना बड़ा अपराध किया है?"

चारुके चेहरेका रंग उड़ गया। उसके होंठ फड़कने लगे। उसने तकियेपर अपना सिर रख दिया। कुछ देर बाद बोली—"मेरी तो समझमें कुछ भी नहीं आता। क्या वे लोग मेरे ऊपर बहुत नाराज़ होंगे?"

"नाराज़ नहीं होंगे—बल्कि, बहुत सम्भव है, वे बड़े आदरसे तुम्हें घरमें बिठायेंगे।"

"फिर भयकी क्या बात है? मैं तो चलूंगी ही।"

"अच्छा, चलना! पर क्या तुम मेरे सारे अपराध अपने सिरपर लेकर अपराधिनीकी नाईं वहां रह सकोगी? चारु! क्या तुमसे मेरे पापका प्रायश्चित्त किया जा सकेगा?"

"मेरी समझमें कोई बात नहीं आती। आपकी बातें सुनकर मुझे बड़ा भय मालूम होता है। आप वहां रहेंगे न?"

"मैं?" मनस्ताप-व्यञ्जक क्षीण हंसी हंसकर अमर कहने लगा—"क्या तुम कुछ भी नहीं समझतीं? हाय! संसारके सामने ऐसी ही कृपा और अवहेला पानेके लिये क्या तुम ऐसी

हुई थीं ? तुम मेरी कौन हो जो मैं तुम्हारे पास रहूंगा ? मैं वहां स्वच्छन्द फिरता रहूंगा, परन्तु शायद तुम्हें वहां रहनेको जगह नहीं मिलेगी—तुम्हें दूसरेके पास भेज देनेके लिये ही तो मैं तुम्हें वहां लिये जा रहा हूं।"

अमरनाथ, जल्दीसे चारुके पास आ, दोनों हाथोंसे उसका मुंह ऊपर उठा, कम्पित कण्ठसे बोला—"चारु! तुम चल सकोगी ? मैं मरा जाता हूं—मुझे बचाओ। तुमसे वहां जाया आयगा न ? ऐसा करो तो मेरे पिता मुझे माफ़ कर देंगे, मैं संसारके आगे निरपराध हो सकूंगा। तुम दूसरेके साथ विवाह कर सकोगी न ? दूसरेके घर जा सकोगी न ?"

आवेग थोड़ा शान्त होनेपर अमरनाथने देखा कि चारु चुपचाप हाथ-पांव ढीले किये, सेजपर पड़ी हुई है। वह देखती है, पर उसकी आंखोंकी पलकें नहीं गिरतीं, छातीकी धड़कन बिलकुल बन्द है, नाकपर हाथ रखकर देखनेपर मालूम हुआ कि बहुत ही धीरे-धीरे और बड़ी देरपर सांस निकलती है।

"चारु! चारु!! तुम ऐसी क्यों हो रही हो ? क्या तुम्हें डर लगता है ? चारु! ऐ चारु!!"

चारुने उसके मुंहकी ओर देखा। उसने कहा—"क्या तुम्हें बड़ा डर मालूम होता है ?"

बड़े ज़ोरसे सांस लेकर चारुने बड़े धीमे स्वरमें कहा—"हां।"

"डरकी क्या बात है ? अभी ज्वर उतरा नहीं मालूम होता। तुम अभी थोड़ी देर और सो रहो।"

चारु करवट फेरकर सो रही। अमरनाथ एक कुर्सी खींच-कर खिड़कीके पास आ वैठा। थोड़ी देर वाद दासीने आकर पूछा—"वावू! आप खा-पी चुके हैं न?"

"खाना-पीना कहांसे हुआ?"

दासीने ज़रा नकियाकर कहा—"यह लो! इतनी देर आये हुई, अवतक खाने-पीनेका नाम ही नहीं! अरे जाओ, तुम भी भली औरत हो। मर्द-मानस कभी अपने-आप ऐसी वातें कहते फिरते हैं? उनकी खोज-ख़वर दूसरोंको ही लेनी होती है। आओ, भैया! चलो, खाओ-पियो। अहा! मुंह सूख रहा है।"

ज्योंही अमरनाथ खानेके लिये कमरेसे वाहर हुआ त्योंही चारु भयके मारे चिल्ला उठी—"आप ज़रा दाईको यहां रहनेके लिये कहिये। मुझसे अकेले नहीं रहा जाता, वड़ा डर मालूम होता है।"

अनुतप्त भावसे उसके पास लौट आकर अमरने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—"अकेली कैसे हो, चारु! यह देखो, मैं तुम्हारे पास हूं। डरकी क्या वात है? मैं वैठा हूं, तुम सो रहो।"

"नहीं, नहीं—आप खाने जाइये।" यह कहकर चारुने तकियेमें अपना मुंह छिपा लिया। अमरनाथ चुपचाप वैठा रहा।

रातको चारुका ज्वर १०५ डिगरीतक पहुच गया। तक-लीफ़के मारे वेचारी चिल्लाने लगी। सारी रात अमरनाथ उसके

सिरहाने बैठा हुआ उसके सिरपर बरफ़ और इउ-डि-कलोनका सिञ्चन करता रहा। कहनेको भी उसकी आंखें न लगीं। दाई रात-भर खड़ी पङ्खा झलती रही। बालिका रह-रहकर आर्त्त-कण्ठसे चिल्लाती हुई रो उठती थी—"मैं नहीं जाऊंगी, नहीं जाऊंगी। जाऊंगी तो जीती न बचूंगी।"

सवेरे डाक्टरने आकर देखा और कहा—"मालूम होता है कि इन्हें रेमिटेण्ट फ़ीवर (मियादी बुख़ार) हो गया है। कल ठीकसे समझमे नहीं आया था, पर शक हुआ था। आज देखता हूं कि मेरा शक ठीक था।"

ज्वर कम न हुआ। लगातार एकके बाद दूसरा कुलक्षण दिखाई देने लगा। तीसरे पहर अमरनाथने पिताको पूर्वोक्त पत्र लिखा। इसके बाद अचेत पड़ी हुई चारुको सिर पकड़कर उठाते हुए बोला—"चारु! चारु! मैं तुम्हें अपने घर न ले जाऊंगा—तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा। तुम मेरी हो—मेरे ही पास रहो।"

चारु यह सब न सुन सकी—वह ज्वरकी बेहोशीमें पड़ी थी। परन्तु अमरनाथ पिताके पास पत्र भेजकर निश्चिन्त भावसे उसके पलंगके एक कोनेमें आज कई दिन बाद थोड़ा सो रहा। आज उसके जीकी सारी दुविधा मिट गयी है—सब फन्दे कट गये हैं।

चौदह दिन बाद चारुका ज्वर उतरा। बलकारक पथ्यके प्रभावसे वह दूसरे ही दिन अमरनाथके साथ क्षीण स्वरसे

अमरनाथ सिरहाने बैठा हुआ उसके सिरपर बरफ और इड-डिकलोनका सिञ्चन करता रहा। दाई रातभर खड़ी पङ्खा झलती रही।

(पृ० ५६)

सिरहाने बैठा हुआ उसके सिरपर बरफ़ और इउ-डि-कलोनका सिञ्चन करता रहा। कहनेको भी उसकी आंखें न लगी। दाईं रात-भर खड़ी पङ्खा झलती रही। बालिका रह-रहकर आर्त्त-कण्ठसे चिल्लाती हुई रो उठती थी—"मैं नही जाऊंगी, नहीं जाऊंगी। जाऊंगी तो जीती न बचूंगी।"

सवेरे डाकृरने आकर देखा और कहा—"मालूम होता है कि इन्हें रेमिटेण्ट फ़ीवर (मियादी बुख़ार) हो गया है। कल ठीकसे समझमें नहीं आया था, पर शक हुआ था। आज देखता हूं कि मेरा शक ठीक था।"

ज्वर कम न हुआ। लगातार एकके बाद दूसरा कुलक्षण दिखाई देने लगा। तीसरे पहर अमरनाथने पिताको पूर्वोक्त पत्र लिखा। इसके बाद अचेत पड़ी हुई चारुको सिर पकड़कर उठाते हुए बोला—"चारु! चारु! मैं तुम्हें अपने घर न ले जाऊंगा—तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा। तुम मेरी हो—मेरे ही पास रहो।"

चारु यह सब न सुन सकी—वह ज्वरकी बेहोशीमें पड़ी थी। परन्तु अमरनाथ पिताके पास पत्र भेजकर निश्चिन्त भावसे उसके पलंगके एक कोनेमें आज कई दिन बाद थोड़ा सो रहा। आज उसके जीकी सारी दुविधा मिट गयी है—सब फन्दे कट गये हैं।

चौदह दिन बाद चारुका ज्वर उतरा। बलकारक पथ्यके प्रभावसे वह दूसरे ही दिन अमरनाथके साथ क्षीण स्वरसे

बातें कर सकी। क्रमसे वह सेजपर बैठी-बैठी सूखते हुए होंठोंकी हलकी हंसीसे अमरनाथको आशान्वित करने लगी।

इसके बाद जब दाई और हरि नौकरने रातको बारी-बारीसे जगानेका भार लिया तब अमर दो दिन ख़ूब जी भरकर सोया और भरपेट भोजन किया। सच पूछिये, तो चारुका सेवा-यत्न जो कुछ हुआ था वह इन्हीं दोनोंने किया था, अमरनाथ तो केवल चिन्ताका बोझा सिरपर लादे हुए अनाहार और अनिद्राकी अवस्थामें पड़ा चुपचाप उसके मुंहकी ओर देखता हुआ बैठा रहता था। जिससे अपने शरीरकी सम्हाल नहीं हो आती वह दूसरेकी शुश्रूषा क्या ख़ाक करेगा ?"

क्रमसे चारु अन्न खाने लगी। तीसरे पहर अमरनाथने उसके कमरेमें जाकर देखा कि चारु यथास्थान लेटी हुई, खुली हुई खिड़कीसे नीलोज्ज्वल आकाशकी ओर देख रही है। मुंहका रंग उतरा हुआ है, चेहरा सूख रहा है, सायाह्न-सूर्य्यकी सुनहली किरणें उसके रूखे केशों और मलिन ललाटपर पड़कर, विवाहके दिन नववधूके लज्जासे पीले पड़े हुए ललाटपर सोहते हुए सिन्दूरकी नाईं शोभा पा रही हैं। रास्तेके दूसरी ओर नीमके पेड़पर बैठे हुए पक्षी अपनी शक्ति-भर गोलमाल मचाये हुए हैं। नीचे रास्तेमें भी कम चहलपहल नहीं है। चारु एक मनसे वह सहस्रों कण्ठोंसे निकली हुई विचित्र रागिणियां सुन रही थी। बड़ी कठिन बीमारीके बाद मनुष्य मानों किसी दूसरी दुनियासे लौट आता है। चारों ओरके उच्छ्वसित आनन्द या

दुःखकी तरङ्ग उसे स्पर्श नहीं कर पाती—वह मानों इन सबसे बिल्कुल परे हो जाता है। वह सब कुछ सुनता है, पर कोई बात उसकी समझमें अच्छी तरह नहीं आती। वह केवल अर्थहीन दृष्टिसे देखता रहता है।

अमरनाथने मुग्ध नेत्रोंसे उसे देखते-देखते कहा—"अब कैसी हो, चारु ! तबीयत कुछ ख़राब तो नहीं है ?"

"नहीं, मैं अच्छी-भली हूं।" कहकर चारुने उसकी ओर देखा।

अमरनाथने उसके पास आकर कहा—"डाक्टर कह गया है कि एकदमसे अच्छी होनेमें लगभग महीना-भर लगेगा।"

चारुने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"मैं अच्छी तो हो गयी हूं, पर जब उठ खड़ी होती हूं तब सिरमे चक्कर-सा आ जाता है।"

स्नेह-भरे नेत्रोंसे उसे देखते हुए अमरनाथने कहा—"बहुत कमज़ोर भी तो हो गयी हो। मुझे तो यही आशा नहीं थी कि तुम उठ खड़ी होगी। कितने दिन, कितनी रातें किस तरह कटीं, यह मेरी समझमे भी नही आया।"

अनेक क्षण बाद अपनी भय-भरी आंखें अमरके मुंहकी ओर फेरकर क्षीण कण्ठसे चारुने कहा—"मुझे उस समय यही मालूम होता था कि मानों आप मुझे यहां अकेली छोड़कर घर चले गये हैं। उस समय क्या आप यहीं थे ? गये नहीं थे ?"

"यह कैसी बात कहती हो, चारु ? मैं तुम्हें यहां अकेली छोड़कर कैसे चला जाता ? तुम्हारा मन ऐसा कहता है ?"

"उस समय तो मेरे जीमें ऐसा ही आता था।"

अमरनाथने ज़रा और पास आकर उसके पतले हाथको अपने हाथमें ले, स्नेहके साथ कहा—"चारु! क्या अब भी वैसा ही डर बना हुआ है?"

"थोड़ा-थोड़ा है।"

"सो क्यों, चारुलता?"

चारुने कम्पित कण्ठसे कहा—"उस दिन आपने जैसा क्रोध किया था, कहीं फिर वैसा ही न करने लगें?"

"क्रोध? नहीं, नहीं, लता! भला मुझे तुम्हारे ऊपर कब क्रोध हो सकता है? हां, अपने ऊपर अलबत्ता क्रोध हुआ था कि क्यों मैंने दुर्बलताके कारण तुम्हें अपने पास रखकर तुम्हारे तरुण मनमें जो भ्रम भरी धारणा थी उसे और भी दृढ़ कर दिया? यदि मैं उसी समय तुम्हें घर ले जाता और बाबाके हाथोंमें सौंप देता, तो सम्भव है कि तुम मुझे किसी दिन भूल जातीं और सुखी होतीं। सो न करके मैंने अपनी दुर्बलताके कारण चारो ओर अशान्तिकी सृष्टि कर डाली, पिताको भी न जाने कितना कष्ट पहुचाया, और तुम्हें तो एकबारगी मार ही डाला था, परन्तु ख़ैरियत हुई जो तुम बच गयीं।"

"आप घर जाइये, पर मुझे जाते हुए बड़ा भय मालूम होता है, इसलिये मैं तो वहां न जा सकूंगी।"

"अब भी तुम उसी चिन्तामें हो क्या? मैं अब घर न

जाऊंगा, तुम्हें भी नहीं जाना पड़ेगा। जिस दिन पिताजी मेरे साथ-साथ तुम्हें भी माफ़ कर देंगे, उसी दिन जाऊंगा। नहीं तो दोनों जने इसी तरह सबसे न्यारे रहकर केवल एक-दूसरेका मुंह देखते हुए रहेंगे। समझीं न, लता?"

"आप मुझे किसी दूसरी जगह तो न भेज देंगे?"

"भेज दूंगा! नहीं, नहीं—जन्म-भर इसी तरह गले लगाकर रक्खूंगा।" यह कह, अमरनाथने चारुको पास खींचकर छातीसे लगा लिया।

कुछ ही देर बाद अमरनाथने देखा कि चारु वैसी ही अवस्थामें सो गयी है। उसके हाथ उसी तरह उसके हाथोंमें पड़े हैं। गहरे स्नेहके आवेशमें आकर अमरने उसका मस्तक चूम लिया और उसे धीरे-धीरे बिस्तरेपर सुला दिया।

एक महीनेमें चारु एकदम भली-चङ्गी हो गयी। उसके कपोलोंपर नया खून चढ़ आनेसे वे फिर पहले-ही-की तरह हलके गुलाबी रंगकी शोभा दिखाने लगे। उसकी करुणा-भरी आंखोंमें फिर पहलेके ही समान सुन्दर हंसी अठखेलियां करने लगी। सहसा एक दिन सवेरे ही उठकर उसने सुना कि उसका विवाह होगा!

× × × ×

विवाहके बाद अमरनाथने कलकत्ता छोड़ दिया और पासके एक गांवमें एक बगीचेवाला बंगला भाड़ेपर लेकर अपनी प्यारीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। संसारके अविश्रान्त कर्म-

कोलाहल और झगड़े-झञ्झटोंके बीचमें इस निभृत और निश्चिन्त प्रेमका कहां गुज़र हो सकता है? चारों ओरसे कानोंके परदे फाड़नेवाले कठोर शब्द आ-आकर उस मौन भाषाको प्रसङ्गान्तर और चिन्तान्तरमें ले जाते हैं। इस कर्महीन मिलनको जड़ कहकर हंसीमें उड़ाते हुए कर्मरथ अपने पहियेकी घरघराहटसे सुखमें मस्त और अलसाये हुए प्राणोंको चौंका देता है। जो मिलन केवल सुखका ही मिलन है, जिस मिलनके ऊपर संसारकी आशीर्वाद और स्नेहसे भरी दृष्टिके सिवा किसी तरहकी टेढ़ी दृष्टि नहीं पड़ती, वह मिलन भी मानों इस संसारके कोलाहलके बीच पड़कर निविड़ नहीं होने पाता। उसमें भी बीच-बीचमें एकाध घटनाएं ऐसी हो जाती हैं जो साफ़ बतला देती हैं कि संसारमे ऐसे मधुर मिलनका भी निश्चिन्त भावसे उपभोग करनेमें बड़ी-बड़ी बाधाएं हैं। संसार अपनी छोटी-मोटी बातोंको लेकर समय समयपर ऐसी चुभनेवाली उपहासकी हंसी हंस देता है कि भावका आवेश न होनेपर भी कानके नीचे दोनों गालोंपर सुर्खी दौड़ आती है। संसारमें रहकर संसारकी उपेक्षा करके नहीं चला जाता।

स्वजनोंके बिछोहसे कातर बना हुआ अमरनाथ, अपने क्षुधित हृदयके निविड़ वेष्टनमें चारुको जकड़े रहनेके लिये ही मानों कलकत्तेके कोलाहलसे दूर भाग आया है। यहां इस शब्दहीन अकेले गृहमें एक सुर छोड़कर किसीकी और कोई बातही मालूम नहीं। शिशिर-ऋतुकी स्निग्ध-सलिला गङ्गा,

एकबारगी निश्चिन्त भावसे मधुर रागिणी सुनाती हुई, बगीचेके पीछे, दिन-रात एक तरहसे बहती चली जाती है। कहां जाती है, सो नहीं कहा जा सकता; परन्तु उसकी गतिका कोई अन्त नहीं दिखाई देता। पास-ही-पास खड़े हुए वृक्षोंमें भी कोई चञ्चलता नहीं है। प्रातःकाल जब तरुण दम्पती बगीचेमें घूमने निकलते हैं तब दोनों ओर हरी-हरी दूबोंपर पड़ी हुई ओसकी बूंदें, शीतकालके तुरतके उगे हुए सूरजकी निस्तेज किरणोंके पड़नेसे, चारुके अभिमानके आंसुओंकी ही तरह झलमलाती हुई नज़र आती हैं। स्वच्छ आकाशमे उषाकी वह लोहित छटा ठीक वैसी ही मालूम होती है, जैसी ललाई उसके सुन्दर कपोलों-पर भावके आवेगके कारण चढ़ जाती है। कुहरेसे ढकी हुई कुन्दकी कलियां उसीकी तरह लज्जा और सङ्कोचसे सिर झुकाये प्राणपणसे अपने क्षुद्र हृदयका द्वार रुद्ध कर रखना चाहती हैं; सूर्य्यकी सुहाग-भरी उज्ज्वल किरणें बड़ी चेष्टासे उनका मुंह खोल पाती हैं। मध्याह्नकालमे तमाम खिड़की-दरवाज़े बन्द कर देनेपर घरके अन्दर उस धूपसे गरमाये हुए कमरेमें केवल उनका मिलन-गुञ्जार हो रह जाता है। सन्ध्या और रात्रिके समय उनके रोशनीसे जगमगाते हुए कमरेमें उनका वह मिलन सम्पूर्ण बाधाहीन आनन्दसे भर जाता है।

तीसरे पहर चारु, खुले हुए बरामदेमें एक लोहेकी तिपाईपर बैठी हुई एक मनसे न जाने क्या देख रही थी। अमरनाथ उस समय उसके पास न था; वह कमरेमें बैठा हुआ न जाने क्या

कर रहा था। चारु जानती थी कि अमर मुझे पास न पाकर अभी बाहर चला आयेगा। इसीलिये यथा-साध्य अपनी गम्भीरताको रक्षा करनेके हेतु उसने पास-ही-के एक गमलेमें खिली हुई गुलाबकी एक कलीके देखनेमें मन लगा रक्खा था। सवेरे ही उसका अमरनाथसे बड़ा झगड़ा हो चुका है।—बहुत देर हो गयी, पर अमरनाथ नहीं आया। चारुने ज़रा मुंह फेरकर पीछेके खुले हुए दरवाज़ेकी राह घरके भीतर दृष्टि दौड़ायी—कन-खियोंसे देखा; पर कोई दिखाई न पड़ा। तब धीरे-धीरे द्वारके पास आकर सारा घर देख लेनेके इरादेसे उसने भीतर झांककर देखा; पर उसे डर हो रहा था कि कहीं अपनी छिपनेकी जगहसे बाहर निकलकर अमरनाथ उसे पकड़ न ले।

न जाने किसने पीछेसे उसके सिर और मुंहपर कुन्दका फूल फेंक मारा। चारुने चौंककर पीछेको ओर देखा। देखा कि अमरनाथ पीछे खड़ा है। अतर्कित आनन्दसे उसका सारा चेहरा खिल उठा, क्रोधका भाव दिखलाते न बन पड़ा।

"तुम घरमें झांककर क्या देख रही थीं ?"

"ऊंह! जाओ—"

"तो क्या अबतक तुम्हारा गुस्सा कम नहीं हुआ ?"

चारुने भारी-सा मुंह बनाकर कहा—"नहीं।"

"देखो, मैं कितने ही फूल तोड़ लाया हूं। आओ, दोनों आदमी मिलकर एक-एक हार गूंथें। जिसका अच्छा होगा वह जीतेगा और जिसका अच्छा न होगा उसकी हार होगी। फिर दूसरेपर क्रोध न कर सकेगा।"
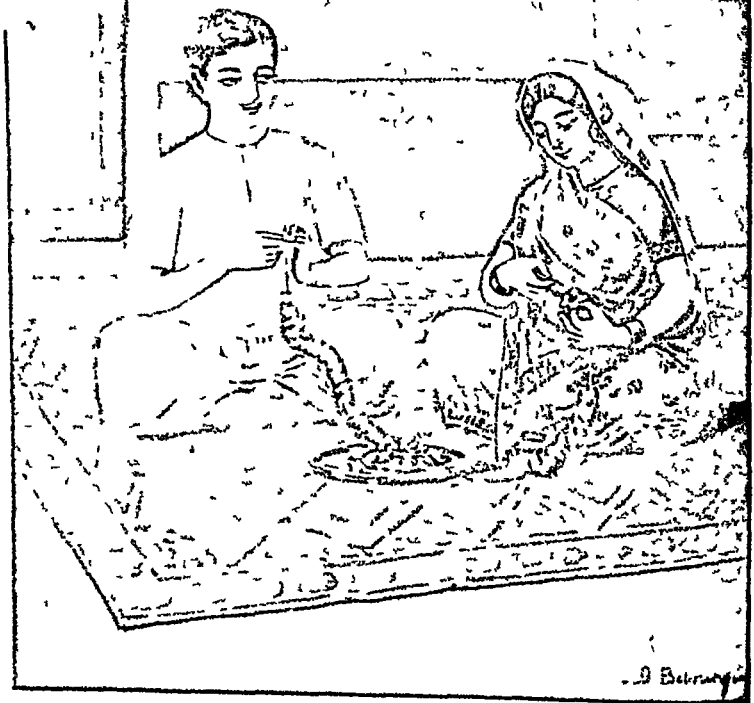
इसके बाद दोनों जने माला गूंथने लगे। अमरनाथ तो किसी न किसी तरह गूंथ भी रहा था, पर अभ्यास न होनेके कारण अंगुलियों-से पकड़ी हुई सुई चारुके हाथमें ही चुभ जाती थी। (पृ० ६७)

"अच्छा, ठीक है; पर मुझे अच्छे फूल देना।"

"वाह! इसकी सही नहीं। तुम ठहरो, मैं सुई-डोरा ले आता हूं। कहीं अच्छे-अच्छे फूल चुरा न लेना।"

"तो मैं क्या चोट्टी हूं?"

"और नहीं तो क्या?" कहता हुआ अमरनाथ हंसते-हंसते, घरके अन्दर चला गया और सुई-डोरा लाकर हंसते ही हुए बोला—"पहले-ही-से मुंह फुलानेसे काम न चलेगा। हार गूंधो।"

"मैं कब इससे भागती हूं? मेरी माला अवश्य ही तुम्हारी मालासे अच्छी होगी।"

"देखा जायगा।"

इसके बाद दोनों जने माला गूंधने लगे। दोनों ही इस काममें एकसे कारीगर थे। तो भी अवस्था अधिक होनेके कारण अमरनाथ तो किसी-न-किसी तरह गूंध भी रहा था, पर बेचारी चारुकी जान घपलेमें पड़ गयी। माला गूंधनेका कभीका अभ्यास न होनेके कारण अंगुलियोंसे पकड़ी हुई सुई-भर कांप रही थी। कभी-कभी तो वह हाथमें ही चुभ जाती थी। कभो तो जिस फूलमें सूत पिरोया जाता उसे भी लाचार हो निकाल फेंकना पड़ता था; क्योंकि सुई टेढ़ी-मेढ़ी घूम जाती, इसलिये फूल बराबर न होकर टेढ़ा-मेढ़ा होकर धागेमें झूलने लगता था। इस तरह दो-तीन बार पिरोने-निकालनेमें फूलोंका अधिकांश भाग मलिन और छिन्न हो गया। इसी तरह आधे घण्टेका समय निकल गया; पर चारु आठसे अधिक फूल धागेमें

न पिरो सकी। अमरनाथने अपनी मालाकी गांठ देते-देते हंसकर कहा—"अब बतलाओ, किसकी जीत हुई? फिर मेरे साथ बाज़ी लगाओगी?"

दोनों हाथोंसे माला पकड़े, अमरनाथने उसकी ओर देखते हुए न जाने क्या सोचा। तदनन्तर बड़ी फुर्तीके साथ उसने वह माला चारुके माथेपर फेंक दी। माला उसके गलेमें झूलने लगी। मारे अभिमानके मुंह फुलाये हुए चारुने गलेसे माला उतार डाली और अमरके ऊपर फेंककर कहा—"मुझे नहीं चाहिये।"

"देखकर उलटा गुस्सा करने लगीं? क्यों नहीं?" कहकर अमरने उसे अपनी ओर खींचकर हृदयसे चांप लिया। इसके बाद बायें हाथसे उसे जकड़कर पकड़े हुए उसने वह अनादर करके फेंकी हुई माला उठा ली और फिर उसे उसके गलेमें डाल, उसके लाल-लाल गालोंको चूमकर कहा—"बस, इसका यही ठीक दण्ड है।"

"रहने दो—मैं यह माला न लूंगी।"

"क्यों?"

"मेरी माला भी गूंथ दो।"

"अरे बापरे! राम-राम करके इतनी देरमें एक माला गूंथी, फिर भी गूंथूं? तुम यही ले लो—समझ लेना कि तुम्हींने गूंधी थी।"

"तब जाओ, मैं न लूंगी।"

"उतारकर फेंक तो दो। देखूं, तुम्हारे शरीरमे कितना बल है?"

दोनोंकी खेंचातानीमें वह माला टूट गयी। अमरनाथने हंसकर कहा—"चलो, अच्छा ही हुआ! बला टली!!"

चारुने उदासीके साथ वह टूटी हुई माला ही लेकर अमरनाथको पहना दी।

इसी समय बुढ़िया नौकरानीको आते देख, दोनों सहमकर चुपचाप बैठ रहे। बुढ़ियाने आते ही बड़प्पन जनाते हुए, मुंह भारी कर, कहा—"मैं क्या कहूं, क्या न कहूं। कहे बिना भी जी नहीं मानता; और कहनेसे कहीं तुम नाराज़ न हो जाओ, इस डरसे कुछ कहा भी नहीं जाता। मैं सोचती थी कि चलो, जाने दो, जब काम किसी-न-किसी तरहसे चल ही रहा है, तब क्यों लड़केको झूठमूठ तङ्ग करूं—आप ही कुछ-न-कुछ उपाय कर लेगा। पर यहां तो सिवा हंसी-खेलके और कोई काम ही नहीं दिखाई देता। घड़ी, चेन, अंगूठी, जो-जो चीज़ें तुमने दी थीं, वे सब हरिकी मारफ़त बेचकर आजतक मैं काम चलाती रही। बेटा! जमामेंसे ही ख़र्च होता रहेगा, आमदनी कुछ न होगी, तो कैसे काम चलेगा? बड़े-से-बड़ा ख़ज़ाना भी ऐसे ढंगसे ख़ाली हो जा सकता है। अब तो कोई ढंग सोचो।"

शरीरमें जहां दर्द होता है वहां आघात पहुंचनेसे जिस तरह मनुष्यके मुंहकी आकृति बिगड़ जाती है—वह सिहर उठता है—उसी तरह ये बातें सुनकर अमरनाथ भी चौंक पड़ा। चारुके सामने ही ये बातें कही गयीं, इसलिये उसकी हड्डी-हड्डीमें लज्जा

व्याप गयी। उसे साहस न हुआ कि सिर उठाकर देखे कि इन बातोंके सुननेसे चारुके चेहरेकी क्या रङ्गत हो गयी है। वह सिर नीचा किये रहा।

"मैंने हरिके मुंहसे सुना है कि तुम बड़े धनीके बेटे हो; फिर तुम्हारा ऐसा हाल क्यों है? क्या बापके यहांसे खर्च-वर्चको रुपये नहीं आते? शायद वे नाराज़ हैं! अक्सर बहुतसे घरोंमें ऐसे झगड़े हुआ करते हैं, लेकिन दो-चार मीठी-मीठी बातें हुईं और झगड़ा मिटा। आखिर बापका क्रोध के घड़ीका?"

"ज़रा चुप रह, चुप रह। मेरे और बाबाके बीच औरोंकी तरह रूठने-मननेवाला व्यवहार नहीं है। इसकी तो चर्चा ही छोड़ दे, और कुछ उपाय बतला सकती हो तो बतला।"

"मैं और क्या उपाय बतलाऊं? मर्द-मानुष हो, कोई नौकरी-चाकरी कर लो; काम चलता रहेगा।"

"नौकरी? मैं कौनसा काम करूंगा? मैं अभी जानता ही क्या हूं? और एक साल मेडिकल कालेजमें पढ़ लेता तो कहीं नौकरी मिल भी जाती।"

"चेष्टा करो। बिना चेष्टा किये, चुपचाप घर बैठे रहनेसे, क्योंकर काम चलेगा?"

"तब तो कलकत्ते जाना पड़ेगा। चारुके पास कौन रहेगा?"

"क्यों? हमलोग रहेंगे। फिर नौकरी करनेसे कोई चौबीस घण्टेका गुलाम थोड़े ही हो जाता है?"

"अच्छा, जा, मैं सोचूंगा। अभी यहांसे टल जा।"

दासी चली गयी। थोड़ी देर बाद अमरने चारुकी ओर नज़र फेरी। देखा कि वह सिर नीचा किये खड़ी-खड़ी पैरसे मिट्टी खोद रही है। उसे पास खींच लाकर अमरने कहा—"चारु! तुम क्या सोच रही हो?"

कुछ देर चुप रहनेके बाद चारुने कहा—"तुम एकबार पिताजीके पास चले जाओ।"

"पिताजीके पास? वे तो मुझसे जले बैठे हैं।" क्षण-भर पलक-हीन नेत्रोंसे स्वामीकी ओर देखते रहनेके बाद चारुने बड़े ही क्षीण स्वरसे कहा:—

"क्या वे तुमसे नाराज़ हैं? किसलिये नाराज़ है? तुम उनके पास जाओ, जाते ही उनका क्रोध ठण्ढा हो जायेगा। तुम उनके पास जाओ तो सही।"

थोड़ी देर सोच-विचार करनेके बाद अमरने कहा—"यदि वे मुझे क्षमा न करें तो? फिर मैं भी क्या उनपर अभिमान नहीं कर सकता?" इसके बाद ही उसने झटपट कह डाला—"बस, दासीने जो बात कही है वही करूंगा—मैं कहीं-न-कहीं नौकरी करनेका ही बन्दोबस्त करता हूं। तुमने क्या इसी सोचके मारे मुझसे वैसी बात कही है?"

जिज्ञासा-पूर्ण नेत्रोंसे अमरकी ओर देखती हुई चारु बोली—"दासीने क्या कहा था? उसने तो यही कहा था कि पिताजी तुमसे नाराज़ हैं। लेकिन वे क्यों नाराज़ हैं? तुमने ऐसा कौनसा अपराध किया है?" कहते-कहते चारुका गला भर आया।

अमरनाथको इच्छा नहीं हुई कि चारुको बतला दे कि उसका अपराध कितना भारी है या उसके पिताने उसका क्यों त्याग कर रक्खा है। ऐसे सरल हृदयवालीके मनमें ज़हर क्यों ढाला जाये? यही सोचकर उसने सहज स्वरमें कहा—"चारु! अगर मैं कुछ दिनोंके लिये विदेश चला जाऊं—क्योंकि कलकत्तेमें तो नौकरी करना पार ही नहीं लगेगा—दूर जाना ही पड़ेगा—तो तुम क्या अकेली रह सकोगी?"

चारुने डरके मारे कांपकर कहा—"नहीं, मैं अकेली न रह सकूंगी—मुझे भी साथ ले चलना।"

अमरने ज़रा झुंझलाहटके साथ कहा—"चारु! तुम्हें कब समझ होगी? अरे, मैं क्या अभी चला ही जा रहा हूं? फिर तुम्हें कुछ बहुत दिनोंतक तो अकेली रहना नहीं पड़ेगा। डरो मत।"

चारु, भयसे जकड़ी हुई, सिर झुकाये खड़ी रही।

सातवां परिच्छेद

लोक-हसाई

ज़मींदार हरनाथ-बाबू अपनी पुरानी चाल निभाये चले जाते हैं। बाहरके लोगोंको इस बातका सन्देह भी नहीं होने पाता कि उनके जीवनमें कोई अशान्तिका भी कारण है। जैसे वे पहले थोड़ी रात रहते उठकर मुंह-हाथ धो, तीन-चार घण्टे सन्ध्या-पूजामें बिता देते और आठ बजते-बजते ज़मींदारी-कचहरी-

में आ बैठते थे, वैसे ही अब भी नियमपूर्वक काम चला रहे हैं। प्रायः दोपहरके समय यथारीति स्नान कर, वे घरके अन्दर अपनी पुत्रवधू सुरमाके पास जाकर भोजन करने बैठते हैं। वहां सस्नेह हास्यके साथ बहूपर नानाप्रकारके प्रेम और आदर-के भाव प्रकट कर, उसकी रसोईके दोष-गुणोंका विचार करते हुए उन्हें खाते-पीते एक घण्टेसे भी अधिक समय लग जाता है। इसके बाद दो घण्टे आराममें लेटने और सोनेके बाद बहूके साथ तरह-तरहके मामलोंके बारेमें बातचीत करके वे फिर बाहर चले आते हैं। उस समय अनेक विद्यालङ्कार, तर्कालङ्कार, नैया-यिक, वेदान्तिक आदि उनके बैठकख़ानेकी शोभा बढ़ानेके लिये आ पहुचते हैं। तर्क-वितर्क करते-करते रात हो जाती है। ख़ान-सामा आकर बार-बार भीतरका यह संदेशा सुना जाता है कि सन्ध्याह्निकका समय हो चुका। अन्तमें मीमांसा समाप्त होने-पर पण्डितोंकी एक मुंहसे 'धन्य-धन्य' ध्वनि और आशीर्वादोंके साथ-ही-साथ, पद-धूलि लेनेके अनन्तर हरनाथ-बाबूके दिये हुए बिदाईके रुपयोंकी 'ठन-ठन'-ध्वनिके बीच हरनाथ-बाबूकी सभा भङ्ग होती है। उस समय पुनर्वार, सन्ध्याह्निक करनेके अनन्तर, वधूके मृदु-मधुर सस्नेह अनुयोग और तिरस्कारके साथ-ही-साथ अपने विलम्बका कारण बतलाते हुए वे जलपान करते हैं, और भीतरके कमरेमें विश्राम करते हुए हुक्का पीते-पीते वे दीवान-जीके साथ ज़मीदारी आदिकी ज़रूरी बातें करते हैं। उस समय बहूको भी वहां मौजूद रहनेका हुक्म मिला हुआ है।

उस दिन भी हरनाथ-बाबू सन्ध्याका जलपान ख़तम कर, बिस्तरेपर लेटे हुए हुक्क़ा पी रहे थे। सामने ही बूढ़े दीवान श्यामाचरणराय मोढ़ेपर बैठे हुए बातें कर रहे थे। वे ज़मींदारीके ही कामसे कलकत्ते गये थे, आज ही तीसरे पहर घर आये हैं। उसी कामके बारेमें बातें हो रही थीं। मालिकके पलंगके पास ही हाथमें पङ्खा लिये सुरमा बैठी हुई थी। चुपचाप ख़ाली हाथ बैठी रहना स्त्रियोंके लिये अशोभन है। इसलिये काम न होनेपर भी हाथमें कुछ-न-कुछ बहानेके तौरपर होना ही चाहिये। इसी-लिये, यद्यपि उस समय पङ्खेकी कोई ज़रूरत नहीं थी तथापि सुरमा बीच-बीचमें धीरे-धीरे पङ्खा डुला रही थी।

हरनाथ-बाबूने कहा—"जाने दो—वे लोग तो सदा जलाते ही रहेंगे—उपाय ही क्या है? अब तो वे अपील-वपील नहीं न करेंगे?"

दीवानने गम्भीर मुंह बनाये हुए कहा—"अब इसमें तो वे टिरफिस नहीं कर सकेंगे, लेकिन बसु-बाबुओंको एक नया बहाना ढूंढ़ते क्या देर लगेगी? इसके अलावा, हमारी और उनकी ज़मींदारीकी सरहद ऐसी मिली-जुली है कि बिना झगड़ेके कभी चल ही नहीं सकता। हम दोनों बूढ़ोंके न रहनेपर और कोई नया आदमी तो इन सब मामलोंको अच्छी तरह समझ ही न सकेगा। लेकिन हमें चाहिये कि पहलेसे ही—"

बात काटकर मालिकने कहा—"श्यामाचरण! इसीलिये तो मैं बहूको यह सब बातें सुना देना चाहता हूं। हमारे जीते-

जी यह सब कुछ समझ-बूझ न लेगी तो अन्तमें इसे ही न कष्ट उठाना पड़ेगा ? सब बातें मन लगाकर सुनती हो न बेटी ? सुन-कर सब बातें समझनेकी कोशिश किया करो ।"

श्यामाचरण राय कुछ देर चुपचाप बैठे रहे और हरनाथ-बाबू भी खूब ज़ोरसे हुक्क़ा गुड़गुड़ाने लगे । कुछ देर बाद दीवान-ने हरनाथ-बाबूकी ओर देखते हुए कहा—"मैं आपसे दो-चार बाते कहना चाहता हूं, यदि आप—"

"यह क्या, श्यामाचरण ? तुमने तो आजतक कभी इस ढंगसे मेरे साथ बातें नहीं कीं ! क्या मैंने तुम्हें सदासे अपने छोटे भाईका-सा अधिकार नहीं दे रक्खा है ?"

"ज़रूर दे रक्खा है । लेकिन आप ही सोच देखिये,जब महज़-मामूली मनोमालिन्यके कारण ईश्वरका दिया हुआ अधिकार भी लुप्त हो जाता है तब इस जगत्में कोई किस अधिकारपर गर्व करे ?"

हरनाथ-बाबू कुछ देर चुप रहे । अन्तमें बोले—"अप्रास-ङ्गिक बात छोड़ दो, श्यामाचरण ! व्यर्थ ही मनको गड़बड़में डाल देनेका क्या काम है ? ख़ैर, यह तो कहो, कलकत्तेमें तुम अपने समधीके घर गये थे या नहीं ? उनके यहां सब कुशल-मङ्गल है न ?"

"जी हां—कलकत्तेमें मैंने बहुतोंसे मुलाक़ात की ।"

हरनाथ-बाबू फिर चुप हो गये । बहुत इधर-उधर करनेके बाद बोले—"बहुतोंमेंसे कुछके भी तो नाम बताओ ।"

"यही, जैसे राधाचरण, शशिकान्त—अपने अमरनाथसे भी मुलाक़ात हुई।"

यद्यपि हरनाथ-बाबूने बातका रुख़ पलटनेकी चेष्टा की तथापि उनका अवाध्य कण्ठ मृदु भावसे कह उठा—"कैसा देखा?"

दीवानने सिर नीचा किये हुए गम्भीर कण्ठसे कहा—"और कैसा देखता? जैसा आप लोग दिखाना चाहते हैं, वैसा ही देखा।"

"तुम्हारी बात मेरी समझमें नहीं आयी, श्यामा! क्या वह बहुत बीमार है?"

"शरीरको छोड़कर और सब हालत ख़राब ही देखी। मैंने देखा कि वे नौकरीकी तलाश करते फिरते हैं।"

"नौकरीकी तलाश? तो शायद उसने पढ़ना छोड़ दिया?"

"पढ़ें कैसे? अब तो उन्हें कुछ ख़र्च-वर्च भी नहीं भेजा जाता।"

हरनाथ-बाबू बड़े ज़ोरसे गुड़गुड़ीका दम खींचने लगे। सहसा रुककर उन्होंने सुरमासे कहा—"बेटी! पङ्खा रख दो। इतने ज़ोरसे हवा न करो, ठण्ढ लगती है।"

सुरमाने सिटपिटाकर पङ्खा नीचे रख दिया।

हरनाथ-बाबूको चुप देख, दीवानने फिर खांसकर कहना शुरू किया—"लेकिन ऐसा करके आप अपनी ही लोक-हंसाई कराते हैं। आपके स्नेहसे वञ्चित होनेपर उन्हें भले ही

अनुताप न हुआ हो, पर रुपयेकी तङ्गीसे ज़रूर ही होगा। शायद वे आपसे क्षमा मांगने आयें। लेकिन इसका मूल कारण आप रुपयेकी कमी ही समझेंगे।"

कुछ देर बाद हरनाथ-बाबूने कहा—"सो तो ठीक है। अच्छा उसने कुछ कहा है?"

"और क्या कहेंगे? मैंने ही उनसे कहा कि तुम मेरे साथ चलो। यदि मालिक सोलह आने क्षमा न करेंगे तो थोड़ा-बहुत तो अवश्य ही कर देंगे। इसपर उन्होंने कहा कि पिताकी वैसी क्षमा मुझे नहीं चाहिये। यदि मैं ऐसा करूंगा तो उनका कुपुत्र कहलाऊंगा। जब वे स्वयं ही किसी दिन मुझे प्यारसे 'अमर' कहकर पुकारेंगे, तो मैं अवश्य ही उनकी गोदमें चला जाऊंगा। नहीं तो उनकी गोदके बदले मुझे उनकी क्षमा नहीं चाहिये।"

हरनाथ-बाबूने धीरेसे हंसकर कहा—"मिज़ाजमें गरमी तो ख़ूब है।"

"आख़िर आपके ही पुत्र जो हैं। ऐसा तो होना ही चाहिये था।"

"ख़ैर, जाने दो। तुमने अभी कहा था कि वह रुपयेके लिये क्षमा मांगने आयेगा?"

"मैंने यह भविष्यत्‌की बात कही थी। और भी देखिये, वे नौकरीकी तलाशमें बिना खाये-पिये दिन-रात कलकत्तेकी सड़कों और गलियोंकी ख़ाक छानते फिरते हैं, यह आपकी इज़्ज़तमें बट्टा

लगानेवाली बात है। आपसके झगड़ेको औरोंपर ज़ाहिर करने-का क्या काम है? उन्होंने आपकी बात नहीं मानी यह शर्मकी बात है। पर बाहरके लोग भी इस बातको न जान पायें, इसके लिये आपको भी उनकी यथोचित सहायता करनी चाहिये, जिसमें आपकी इज़्ज़तमें फ़र्क़ न पड़ने पाये। इसके बाद आप उन्हें सच्चे दिलसे भले ही क्षमा न करें, कभी उनका मुंह न देखें, वे जो अधिकार मांगते हैं वह उन्हें न दें। बस, यही उनके लिये उपयुक्त दण्ड है। यदि आप यह सोचते हों कि रुपया देना बन्द कर देनेसे उनके जीको बड़ी चोट पहुंचेगी तो यह आपकी भूल है। चाहे जो हो; पर आख़िर वे आपके लड़के हैं, इसलिये उनकी सज़ाका ढंग कुछ और होना चाहिये।"

हरनाथ-बाबू अबकी उठ बैठे। बोले, "चलो, जाने दो, इन बातोंमें अब क्या रक्खा है? बातों-ही-बातोंमें बड़ी रात बीत गयी। जाओ, तुम भी थोड़ा आराम कर लो—थके-मांदे आये हो। बेटी! आज मैं कुछ न खाऊंगा, तुम भी जाकर सो रहो। रामाको ज़रा बुलवा भेजो, यहां आकर रोशनी वग़ैरह हटाये।"

सुरमाने खड़ी होकर मृदुकण्ठसे कहा—"क्या आप एक-बारगी कुछ न खायेंगे? थोड़ा-सा दूध ही पी लीजिये।"

"नहीं—अच्छा, थोड़ा-सा दूध रामाके हाथ भिजवा देना। श्यामाचरण! तुमने भी तो अभीतक खाना नहीं खाया होगा?"

"जी नहीं, पर इसकी आप चिन्ता न करें—सो रहूं।"

यह कह, श्यामाचरण राय घरसे बाहर निकले। हरनाथ-

बाबूने सुरमाको तबतक खड़ी देखकर कहा—"जाओ, बेटी! खा-पीकर सो रहो।"

ससुरकी यह प्यार-भरी बात सुन, बहू बिना कुछ कहे, चुप-चाप धीरे-धीरे वहांसे दूसरे कमरेमें चली गयी।

हरनाथ-बाबूने नौकरको सब रोशनियां बुझा देनेका हुक्म दिया और सो रहे। प्रति दिनका काम समाप्त कर नौकर भी चला गया।

अंधेरे कमरेमें शय्यापर पड़े-पड़े उन्होंने यथा-साध्य निद्रा-देवीकी उपासना की; पर आज वे उनपर बड़ी निष्ठुरता प्रकट करने लगीं। उनकी बिना नींदके ही झंपी हुई आंखोंके सामने बहुतसी पुरानी बातोंके चित्र धीरे-धीरे घूमने लगे। अपनी उठती जवानी, वह निर्मल पत्नी-प्रेम, उस गहरे प्रेमके बीचमें भी पुत्रके अभावसे रह-रहकर दुःखी होना और अन्तमें उस स्नेह-प्रतिमाकी गोदमें उस अमल-शुभ्र स्नेह-पुतलीका आविर्भाव-चित्र मानों साफ़ उनकी आंखोंके सामने झलकने लगा। उस दिनकी उन आनन्द-बधाइयोंकी स्मृतिने आज भी उनके सारे शरीरमें पुलकावली उत्पन्न कर दी। कोमल शय्यामें अपनेको सम्पूर्ण मग्न करके हरनाथ-बाबू उस प्रथम दिनके पुत्र-गात्र-संस्पर्शका अनुभव आज भी अङ्ग-अङ्गसे करने लगे।

सचमुच इस स्मृतिको लेकर मनुष्य ऐसा ही पागल हो जाता है। कोई सुख या दुःखका खेल भले ही किसी दिन खतम हो गया हो; धूल-मिट्टी धो-पोंछकर मनुष्य, संयत भावसे अपने

निर्दिष्ट क्षेत्रके भीतर, नये जीवनका लेन-देन और जमा-खर्च मिलाते हुए ठीक-ठिकानेसे कारबार चला रहा हो; तो भी, उस नूतन जीवनके मध्यमें भी—यह स्मृति कभी तो उसे हंसनेके स्थानमें रुला देती है और कभी रोनेकी जगह हंसाकर देखने-वालोंकी नज़रमें उसे और भी उपहासका पात्र बना देती है।

इसके बाद उन्हें याद आया उस गम्भीर आनन्दकी तरङ्गोंके भीतर दो बार कालचक्रका आवर्त्तन होते-न—होते एक बड़ीसी पत्थरकी चट्टानका आकर उनके हृदयमें बड़े ज़ोरसे आघात करना। मोह-मायामे फंसे हुए उन्होंने दुगुने प्यारके साथ उस शिशुको कलेजेसे चिपका लिया। इतने दिनोंतक उस बच्चेके सुख-दुःखको दो जने आपसमे बांट लिया करते थे, आजसे उनके लिये एक-मात्र वह और उसके लिये एक-मात्र वे ही रह गये। उस दिनके दुःखकी याद करके हरनाथ-बाबू आज भी शय्यापर उसी तरह छटपटाने लगे। बड़ी साध्यसाधनाके बाद कहीं उन्हें नींद आयी तो उसमें भी सपने देखने लगे, जिनमे उस बालकके लड़कपनकी ही बातें दिखलाई देती रहीं!

प्रातःकाल शय्या त्यागकर उन्होंने अपने नित्यके काम पूरे किये। दोपहरमें रोज़की तरह भोजन किया। सुरमाने उनका वह असाधारण गम्भीर मुख देख, बिना कुछ कहे ही, अपने सब काम पूरे कर डाले। सारे दिन उन्होंने किसीसे अच्छी तरह दो-दो बातें भी नहीं कीं। दीवानने भी सारे दिन उनके पास आनेका साहस नहीं किया।

सन्ध्याके समय, नियमानुसार सन्ध्या-पूजा और जलपान करनेके बाद हरनाथ-बाबूने दीवानको बुलवाया। हुक्म पाते ही वह भी हाथमें पङ्खा लिये शय्याके पास आकर बैठ रही। दो-एक इधर-उधरकी बातें होनेके बाद हरनाथ-बाबूने दीवानकी ओर न देखते हुए एक अख़बारपर नज़र दौड़ाते हुए कहा—"मैंने अच्छी तरह सोच-समझकर यही तै किया है कि अपनी मान-मर्यादा बनाये रखनेके लिये मुझे अमरको प्रति मास कुछ रुपये भेज देने चाहिये।"

दीवानने कुछ देर चुप रहनेके बाद कहा—"अच्छा, यदि आप इतने-ही-से अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझते हों तो ऐसा ही कीजिये। इसके बाद वह आपसे रुपये लेना स्वीकार करेंगे या नहीं, यह तो पीछेकी बात है।"

"पीछेकी बात नहीं, मेरी मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये उसे बाध्य होकर रुपये लेने ही पड़ेंगे। बहू! मैं इसमें तुम्हारी राय भी लेना चाहता हूं। लज्जा न करो, स्पष्टरूपसे अपने मनकी बात कह डालो। उसे मासिक देना उचित है या नहीं?"

सुरमाने धीरे-धीरे अपना झुका हुआ सिर ऊपर उठाकर, ससुरके सामने देखते हुए, स्थिर कण्ठसे कहा—"नहीं।"

"नहीं? क्या उसे कुछ भी देना उचित नहीं है? तुम ऐसी बात कहोगी, इसकी मुझे कदापि आशा नहीं थी।"

"नहीं, पिताजी! आप यदि उन्हें क्षमा कर सकें तो क्षमा ही कर दें। आप यदि चाहें तो यह काम बड़ी आसानीसे कर सकते हैं।"

"ओह, इसीलिये तुम ऐसा कह रही हो? पर बेटी! यह काम तो वैसा आसान नहीं है। यदि होता तो क्या मैं इस तरह उसे और भी दण्ड देनेका बन्दोवस्त करना चाहता?"

दीवानने कहा—"यह काम आपके-से पिताके लिये उचित नहो है।"

हरनाथ-बाबूने कहा—"यह काम मेरे ही जैसे पिताके लिये उचित भी है, और मुझीसे यह हो भी सकता है।"

इसके बाद उन्होंने बहूकी ओर फिरकर कहा—"बेटी! क्या तुम उसे क्षमा कर सकती हो? बोलो, कि मैं क्षमा करती हूं, बस, मैं भी उसे अभी क्षमा किये देता हूं। लेकिन देखो, झूठ मत बोलना, मैं तुमसे ठीक सच्ची बात कहनेको ही कह रहा हूं।"

दृढ़ पद्-विक्षेप करती हुई सुरमा दूसरे कमरेमे चली गयी। उसके वाष्प-रुद्ध कण्ठसे "नहीं" शब्द ठेल-ठालकर बाहर आया चाहता था।

दूसरे दिन दीवानने अमरके नाम सौ रुपयेका मनीआर्डर कलकत्ता भेजा। दो-चार दिनोंमें ही वह मनीआर्डर लौट आया। उसके साथ ही एक कार्डपर अमरके लिखे हुए दो-चार अक्षर भी आये। अमरने लिखा था—"चाचाजी! मैं आपका स्नेह सदा याद रक्खूंगा। मैं समझ रहा हूं कि आपने ही मेरे लिये पिताजीसे यह प्रबन्ध करवाया है। इसके लिये आपको धन्यवाद! पर मैं इस स्नेहके योग्य नहीं हूं।" डबडबायी हुई आंखोंसे दीवानने वह पत्र मालिकके हाथमें दे दिया।

उसी समय एक कागज़का टुकड़ा लेकर हरनाथ-बाबूने उस-पर ये चन्द सतरें लिख डालीः—

"मैं, हरनाथ-मित्र ज़मींदार हूं और तुम मेरे पुत्र हो, यह बात दुनिया जानती है। इसलिये मेरी मान-मर्यादा बहुत-कुछ तुम्हारे ऊपर भी निर्भर करती है। तुम यदि कहीं कोई छोटी-मोटी नौकरी कर लोगे, तो उससे मेरा भी अपमान होगा। अत-एव, जबतक तुम्हारी अवस्था अच्छी नहीं हो जाती तबतक तुम्हारे जेब-खर्चके लिये १००) हर महीने यहांसे जाया करेंगे, इसलिये तुम्हे उन्हें अवश्य ही स्वीकार करना होगा। इसके सिवा मेरे साथ तुम्हारा और कोई सम्बन्ध नहीं है। इति—

हरनाथ मित्र।

कई दिन बाद हरनाथ-बाबूके पास अमरनाथका एक पत्र आया। आवेग-कम्पित हाथोंसे उसे खोलकर उन्होंने पढ़ा। लिखा थाः—

अपने सम्मानकी ख़ातिर आपने मेरे सिरपर जो दण्डभार लादा है, उसे मैंने सिर झुकाकर स्वीकार किया। आपके घरसे निकाले जानेपर भी मैं आपके ही अन्नसे पलता रहूंगा। इति—

अमर।"

उस पत्रको बार-बार पढ़कर, उन्होंने उसे बड़े यत्नसे कैश-बक्समें छिपाकर रख दिया। इसके बाद हरनाथ-बाबूकी बहुत दिनोंसे सूखी हुई आंखोंसे आंसूकी दो बड़ी-बड़ी बूंदें गिर पड़ीं। उन्होंने तुरंत आंखें पोंछ डालीं।

आठवां परिच्छेद

रङ्गमें भङ्ग

किसी-किसी मनुष्यका स्वभाव बड़ा ही अद्भुत होता है। भूलसे या हठसे जब वह कोई काम कर बैठता है और उसके लिये पछतावा या दुःख अनुभव करने लगता है, तब उस समय उसकी सूरत देखकर किसीको यह भरोसा नहीं होता कि यह आदमी फिर कभी उठ खड़ा होगा या अपने निश्चित पथ-पर चल सकेगा। सचमुच, वह उस समय ऐसा ही दुःखी दिखाई देने लगता है; किन्तु वही आदमी जब दूसरी ओरसे फिर धक्का खाता है, तब इस ज़ोरके साथ तन-मनसे अपने कर्त्तव्यको पूरा करनेमें जुट जाता है कि देखनेवाले हैरतमें आकर कहने लगते हैं कि क्या यह वही आदमी है।

अमरनाथ भी, बड़े वेगसे—बड़ी तेज़ीके साथ, डेढ़ वर्ष पूरा होते-न-होते अपनी मेडिकल कालेजकी पढ़ाई पूरी कर, कर्मिष्ठ और कृती लोगोंके आसनोंके पास आ खड़ा हुआ। केवल अपने शिक्षा-उत्तीर्ण जीवनको काममें लगाना ही बाक़ी रहा।

चारु अब भी वैसी ही है। वैसी ही सरल, वैसी ही अनभिज्ञ, वैसी ही निर्भरशील है। एक हाथसे उसे पकड़कर अपने कलेजेसे सटाये हुए अमरनाथ दूसरे हाथसे दृढ़ एकाग्रताके साथ अपने आपको और उसको संसार-नदीके किनारे ले आनेकी चेष्टा कर रहा था।

इसी बीचमें चारु और अमरनाथका नया नातेदार आ पहुंचा। उसका नाम था तारिणीचरण, और वह नातेमें चारुका फुफेरा भाई लगता था। इस संसारसे अनजान दम्पतिके बीच तारिणी-चरणके आ जानेसे, इधर चारु अपने तारिणी-भैयाकी सहा-यतासे संसार-कार्य्यमें अभिज्ञता लाभ करने लगी, उधर अमरनाथको निश्चिन्त होकर लिखने-पढ़नेमें मन लगानेका अवसर मिला।

सच्ची बात तो यह है कि तारिणीचरणने सचमुच अमरनाथ-की बड़ी सहायता की थी। चारु और सारी गृहस्थीका भार अपने ऊपर लेकर उसने अमरनाथको लिखने-पढ़नेका अच्छा अव-काश दे दिया था। खूब अच्छी व्यवस्था हो जानेके कारण अमरनाथ और चारुको अबतक किसी बातकी कमी नहीं मालूम होने पायी। इस निःस्वार्थबन्धुताके लिये अमरनाथ उसका बड़ा ही कृतज्ञ है और उसमें अनेक छोटे-मोटे दोष होते हुए भी वह उसको प्यार करता और उसपर विश्वास करता है। और चारु तो उसे पाकर मानों मरनेसे बची; क्योंकि अमरनाथ जब कालेजमें पढ़नेके लिये कलकत्ता चला गया था, तब यदि वह न होता तो किस तरह अकेले उसके दिन कटते, चारु इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

माघका महीना बीत गया है, अभी अभी फागुनका महीना, अपने चंचल अञ्चलको नये-नये खिले हुए मौलसिरीके फूलों और आमकी नयी मञ्जरोंकी सुगन्धसे भरकर, उस अकेले काननमें,

फूले हुए अशोक और पलाश-वृक्षोंकी छायामें अपना आसन विछा रहा है। ठण्ढी-ठण्ढी हवा, हालके खिले हुए वेलोंके फूलोंकी प्यारी खुशवू लेकर वहती हुई अवतक समस्त काननको वसन्तके आगमनकी सूचना नहीं दे सकी है। इस समयतक गुलावके लाल कपोल कुछ-कुछ तन्द्राच्छन्न हैं—हां, उनके अधखिले कपोलोंपर वायुके स्पर्शसे पैदा हुए समर-सङ्कोचका आभास कुछ-कुछ दिखाई दे रहा है। मधु-मक्खियोंका लगातार गुंजना जारी है। मुकुलित आम्र-शाखाएं उनके भारसे कुछ झुक-सी गयी हैं; वीच-वीचमें मञ्जरें डालसे चूकर झरझराकर नीचे गिर पड़ती हैं। उस दिन थोड़ी वृष्टि भी हो गयी थी। वहुत दिनकी अनावृष्टिके अनन्तर थोड़ा पानी पड़ जानेके कारण पृथ्वीसे एक प्रकारकी मधुर गन्ध उठकर खिडकीतक पहुच रही थी। पलाशके पेड़में अपनेको छिपाये हुए वसन्तका चाटुकार चिल्ला-चिल्लाकर गला फाडे डालता था, तोभी उसकी सङ्गिनी उसकी वातके जवावमे कुछ इशारा भी नहीं करती थी।—'कुहू!' खिडकीपरसे किसी कोमल और तरुण कण्ठने उसकी आवाज़की नक़लकर उसे चिढाया और साथ-ही-साथ एक मधुर-तरुण मुख खिड़कीके वाहर दिखाई दिया। काले कोकिलने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और फिर पहले ही-की तरह पुकारा—'कुहू!' फिर उसी नन्हेसे मुखडेके लाल लाल पतले होंठ हलकी मुस्कुराहटके साथ फड़क उठे और उनके वीचसे शब्द हुआ—'कुहू!' अवके कोकिलको क्रोध हो

आया। वह चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगा। साथ-ही-साथ उसका व्यंग्य भी बड़े ऊंचे स्वरमें होने लगा। उससे जहांतक बन पड़ा वहातक उसने अपना गला फाड़ा, पर जब दुष्ट मनुष्यके आगे उसकी एक भी न चली तब लाचार होकर वह चुप हो गया।

पीछेसे आकर अमरनाथने दोनों हाथोंसे चारुके गाल दाब लिये और हंसते हुए कहा—"बेचारे कोकिलको तुम पागल-बना दोगी क्या ? एक तो उसकी प्यारीने कुछ जवाब नहीं दिया, दूसरे तुम उसपर इतना अत्याचार करने लगी !"

उसके हाथोंके बीचसे अपना मुंह निकालकर चारुने हंसते-हंसते कहा—"वह तभीसे चिल्ला-चिल्लाकर जान दे रहा था। अब कैसा चुप हो गया !"

"वह चिल्लाया करता, इससे तुम्हारा क्या बिगड़ा जाता था ? वह तो तुम्हें कुञ्जके बीच अकेली बैठी विरहसे मलिन होती देख, अपने स्वर-रूपी तीखे तीरसे तुम्हारा हृदय विदीर्ण नहीं करता था ? और तुम कुछ विरहिणी भी तो नहीं हो 'कि नाहक बैर परयो विरहिनके कूक वियोगके लूकन जारति। फिर उस-पर इतना क्रोध क्यों ?"

"राम जानें, तुम क्या-क्या कह गये। मेरी तो समझमें ही कुछ न आया। लेकिन यह पक्षी बड़ा पाजी है। मैं तुम्हारा वह गीत मन-ही-मन गुनगुना रही थी। इसी समय यह मनहूस मारे बोलियोंके मेरे कानके परदे फाड़ने लगा।"

"प्यारी! कोई भयकी बात नहीं है। यह पक्षी बारहों महीने

नहीं बोलता, यही कई महीने और हैं, सह लो। वर्षा आते ही यह चुप हो जायगा। अगर बारहों महीने यह योंही बोला करता तो कवियोंके कथनानुसार कितनोंके प्राण बचने कठिन हो जाते।"

"सचमुच प्राण बचने कठिन हो जाते। उसकी आवाज़की नक़ल करते भी आंखें जल रही हैं। ओह, मैंने यह क्या किया ?"

अमरनाथने उसे अपनी ओर खींचकर एक कौचपर बिठा-दिया और ख़ुद उसके पास बैठकर कहा—"कौनसा गीत याद कर रही थी ?"

"वही तुम्हारावाला गीत—नित नित नूतन सेज बिछाऊं—यही गीत।"

"अगर उसे मेरा गीत बतलाओगी तो सुननेवाले मुझे लाठीसे मारे बिना न छोड़ेंगे।"

"अच्छा उस गीतपर 'विरह' लिखा है। विरहके क्या मानी ?"

"तुम इतना भी नहीं जानती ? सच कहो, क्या तुम्हें विरह-का मतलब नहीं मालूम ? विचित्र बात है !"

चारु सोचने लगी—"मैं यह नहीं जानती, यह तो बड़ी लज्जाकी बात है।" उसने लज्जा और सङ्कोचसे लाल होकर मीठे स्वरसे कहा —"हां नहीं जानती। तुम बतला दो।"

"बतला दूं कि विरह किसे कहते हैं ? यही देखो, मैं जब तुम्हारे पास नहीं रहता, तब तुम्हारा मन न जाने कैसा होने लगता है—"

"हां, होता तो है। इससे क्या?"

"इसी तरह मन न जाने कैसा हो जानेका नाम तो विरह है।"

"अच्छा! इसे ही 'विरह' कहते हैं?" यह कह, चारुने कुछ देरतक गम्भीर भावसे सोचकर कहा—"तब तो विरह बड़ी ही बुरी चीज़ है।"

"बुरी कैसे है? इसी विरहके ऊपर तो हमारे सभी काव्यों और साहित्यक जगत्‌की आधी पुष्टि होती है। केवल हमारे ही नहीं, सारे सभ्य साहित्योंमें विरहसे ही प्रेमकी परिपुष्टि दिखलायी गयी है। देखो, अब मैं तुम्हारी समझमें आने योग्य बात बतलाता हूं—राधा-कृष्णके विरहके गीत जैसे मधुर मालूम होते हैं, वैसे और गीत थोड़े ही मालूम होते हैं? कृष्ण राधाको छोड़कर मथुरा चले गये, यही उनका विरह हुआ।"

चारुने बहुत आकाश-पाताल सोचा, अन्तमें बड़ी फुर्तीसे सिर हिलाकर बोली—"चाहे जो हो, विरह बड़ी बुरी चीज़ है। मैं अब यह गीत कभी न याद करूंगी।"

अमरनाथने हार मानकर उसे अपने पास खींच लिया और बोला—"लो, एक दूसरा गाना गाता हूं, सुनो।"

"गाओ" कहकर हंसती हुई चारुने अपनेको उसके हाथसे छुड़ाते-छुड़ाते कहा—"जाओ, हारमोनियमके पास बैठकर गाओ तो और भी अच्छा लगेगा।"

"अच्छा," कहकर अमरनाथ हारमोनियमके पास कुर्सी खींचकर बैठ गया, और दोनों हाथोंसे उसे बजाने लगा। अन्तमें उसने यह गीत छेड़ा:—

जागु-जागु सखि! छांड़ु सेज अब, देखहु नयन उघार।
भांति भांतिके पंछी बोलत, यौवन-कुञ्ज-मंझार॥
राग-भरी अंखियनकी पलकैं, खोलि लखौ चहुं ओर।
कैसी शोभा छहर रही है, आनंद होत अथोर॥

गाना चलने लगा। चारु एक मनसे उसे दमसाधे सुनती रही। उसकी समझमें कुछ भी नहीं आता था, तोभी अमरनाथका प्रेमपूर्ण स्वर, उसको वे अनुरागभरी आंखें उसे बहुत-कुछ समझा देती थीं। अमरनाथने अपने प्रथम मिलनके कुछ दिन इसी तरह हंसी-खुशी और आमोद-प्रमोदमें बिता दिये थे। बीच-बीचमें कभी-कभी विषादकी छाया भी आ पड़ती थी। इसके बाद इतने दिनोंतक अमरके कर्म्म-व्याप्त नयनोंके सामनेसे पृथ्वी, अपनी समस्त ऋतुओं और सारे मोह-जालोंको समेटकर, कावा काटकर चली जाती रही। सहसा किसी किसी दिन-रातको शय्याके एक कोनेमें पड़ी हुई चारुका कोमल निद्रित मुख उसके कर्म्मक्लान्त चक्षुओंपर सरल-स्नेहकी सूक्ष्म मायाका जाल फैला देता था; किन्तु फिर सवेरे ही नये सूर्य्यके साथ-ही-साथ उसका हृदय, कर्त्तव्यकी पुकार सुन, सारे मोह-जालोंको काट देता था। उस समय वह दुगुने उत्साहके साथ, पूरी तरह मन लगाकर, फिर अपने कर्त्तव्यमें लग जाता था।

अब कार्य्य समाप्त हो गया है इस समय मधुर वसन्तके साथ-ही-साथ मधुर प्रेम उसके यौवन-निकुञ्जको सुशोभित कर रहा है। इस समय उसमें चैनकी वंशी बजती और कल्पनाकी कोयल कूकती है। जूही-जाही और चमेली आदिकी सुगन्ध लिये हुई दक्खिनी वायु फाल्गुनी गीतोंसे भर रही है और आकाश वासन्तिक चन्द्रमाकी अचञ्चल चन्द्रिकासे जगमगा रहा है। सब कुछ प्रथम मिलनकी ही भांति आनन्द, आवेश और चाञ्चल्यसे भरा हुआ है। इसीसे प्रेमी, आकुल वासनाके सुखो-च्छ्वाससे अपना आपा खो, कम्पिता और भीता प्रियाको सोतेसे उठा रहा है। उसमें अपनी वासना-वेदनाका सञ्चार करते हुए, वह सुप्ति-मग्न नवोढ़ा प्रणयिनीसे कह रहा है—"जागु-जागु सखि, सेज छांड़ु अब, देखहु नयन उघार।"

वही गाना एक बार, दो बार, तीन बार गाया गया, तथापि अमरनाथ गाता ही चला जाता है—

"कुञ्जनकी यह नवल छटा लखि, गौरव पेखि अपार।
डाल-डालपर देखो कैसी, फूलनकी है बहार॥
मौलासिरी, जूही, चम्पा यह, नेवारी, कचनार।
तापर देखो, त्रिविध बह रही, कैसी मलय बयार॥
निर्जन कुञ्ज बीच सखि! देखो, सेज रची सुखकारि।
हृदय मध्य बजता वीणा है, तनमन मोहनहारि॥
जागु, जागु, देखु भर आंखें, कुञ्ज शोभा सुखदानि।
प्रथम मिलनकी लाज-सकुचमय, बतियां अमृत-खानि।"

इसी समय दासी आकर एक पत्र कौचपर फेंककर चली गयी। चारुने पत्रको कौचपरसे उठा लिया और अमरनाथको वह पत्र देने चली। बीचमें ही वह विस्मित भावसे उस पत्रको देखने लगी। अमरनाथ अपने सुखोच्छ्वासकी नींदसे मानों जग पड़ा और हारमोनियमके एक सुरको दबाये भाथी चलाते-चलाते उसने पूछा—"क्या है?"

चारुने विस्मित हो क्षीण स्वरमें कहा—"यह किसकी चिट्ठी है?"

"अरे, रङ्गमें भङ्ग न डालो, तुम्हीं पढ़कर देखो। मेरी नहीं, तारिणीकी होगी।"

"नहीं, यह तो मेरे नामसे है। मुझे भला कौन पत्र लिखेगा?"

हारमोनियम छोड़कर अमरनाथने मारे कौतूहलके हाथ बढ़ा दिया और कहा—"लाओ, देखूं तो सही।"

चारुने लिफ़ाफ़ा अपने स्वामीके हाथमे दे दिया। अमरने पता पढ़ा। साफ़-साफ़ सुन्दर अक्षरोंमें लिखा था—

"सौभाग्यवती श्रीमती चारुलता दासीके पास।"

"देखो, मैंने कहा न? यह पत्र किसने लिखा? अच्छा खोलकर पढ़ो न?"

यह सुन अमरनाथने लिफ़ाफ़ा फाड़कर पत्र बाहर निकाल लिया। चारु व्यग्रभावसे झुककर उसे देखने लगी और बोली—"पहले लिखनेवालेका नाम ही पढ़ लो न! यह देखो, लिखा है—सुरमा दासी। यह सुरमा दासी कौन है?"

अमरनाथने चौंककर कहा—"क्या कहा ? कहां नाम लिखा है ?"

"यह देखो, यहापर सुरमा दासी लिखा हुआ है। ऊपर स्थानकी जगह 'माणिकगञ्ज' लिखा हुआ है।"

अमरनाथ बड़ी देरतक चुप रहा। यह देख चारुने घबराकर पूछा—"क्यों ? चुप क्यों हो गये ? सुरमा दासी किसका नाम है ? तुम उसे पहचानते हो ?"

"क्या तुम नही पहचानती ?"

"नहीं। कौन है ?"

"वह—वह—" कहते-कहते अमरनाथने और एक बार पत्रमें लिखा हुआ हस्ताक्षर पढ़ा। इसके बाद वह पत्र चारुके हाथमें देकर बोला,—"तुम इसे पूरा पढ़ जाओ, पढ़नेसे ही तुम्हें सब कुछ मालूम हो जायगा।"

पत्र हाथमें ले, चारुने सन्देहमें पड़कर कहा—"यदि पढ़नेपर भी मेरी समझमें न आये ?"

"तब बतला दूंगा।"

"शायद मुझसे ठीक-ठीक न पढ़ा जाय, इसलिये तुम्हीं पढ़कर सुना दो न !"

"खूब साफ़ लिखावट है। तुम अच्छी तरह पढ़ सकोगी। कोशिश तो करो। तुम्हें ही पढ़ना चाहिये।"

चारुने चुपचाप पत्र हाथमें लेकर पढ़ना आरम्भ किया। अमरनाथ कुछ देरतक अनमना-सा सिर झुकाये बैठा-बैठा चारुके चेहरेकी ओर देखता रहा। एकाएक उसने देखा कि

चारुका उद्विग्न मुख एकदम विवर्ण हो गया है, उसके कांपते हुए हाथमें वह पत्र थर-थर कांप रहा है।

अमरनाथ घबड़ाकर उसके पास आया और उसका हाथ पकड़कर बोला—"क्यों चारु! क्या हुआ?"

"तुम्हीं पढ़ देखो, मुझसे ठीक-ठीक पढ़ा नहीं गया।"

अमरनाथने चौंककर कहा—"पिताजी अच्छे हैं न?"

"वे बहुत ही बीमार हैं—लो, पढ़ो न।" अमरनाथने पहले तो उस पत्रको भय-भरी दृष्टिसे सरसरी तौरसे नीचेसे ऊपरतक देख लिया। उसे एकाएक वह पत्र पढ़नेका साहस नहीं होता था। अन्तमें उसने बड़ी मुश्किलोंसे पढ़ा—

"माणिकगंज"

"बहन! शायद तुम मुझे न पहचानोगी; लेकिन यह पत्र पढ़कर जब अपने स्वामीको सब बातें कह सुनाओगी, तब तुम दोनोंही मुझे पहचान जाओगे और मेरे लिखनेका मतलब भी समझजाओगे। पिताजी एकाएक बहुत बीमार हो गये हैं। यों तो वे प्रायः सालभरसे बीमार हैं,पर अब उनकी अवस्था बड़ी ही संशयपूर्ण हो गयी है। वे ख़ुद नहीं लिख सकते, इसी लिये मैं तुम्हें लिखती हूं। अपने स्वामीसे कह देना कि उनके पिता बहुत बीमार हैं। वे तुम लोगोंको देखना चाहते हैं। यह पत्र पाते ही तुम दोनों पति-पत्नी चले आओ। अधिक घबराना नहीं, वे और दिनोंकी अपेक्षा आज कुछ अच्छे दिखाई देते हैं। उनके लिये कलकत्तेसे अच्छे अंगूर और बेदाना-अनार लेते आना; क्योंकि यहां

अच्छे, नहीं मिलते। और क्या लिखूं? इतना ही लिखना बहुत समझना।

तुम्हारी—सुरमा दासी।"

अमरनाथके तो काठ मार गया। वह चुपचाप बैठा रह गया। थोड़ी देर बाद चारुने धीरेसे कहा—"क्या पढ़ा?"

"पिताजी बहुत बीमार हैं।"

चारु चुप हो गयी। सन्नाटेको तोड़ते हुए अमरनाथने व्यग्र कण्ठसे कहा—"जल्दी तैयार हो जाओ, चारु! मैं अभी घर जाऊंगा। पिता बहुत बीमार हैं।"

"क्या करूं?"

"जल्दी-जल्दी अपने कपड़े-लत्तेकी गठरी बांध लो, और क्या? तारिणी! ओ तारिणी!"

तारिणीचरण झटपट उस कमरेमें आकर बोला—"क्या है? इतने घबराये हुए क्यों नज़र आते हो?"

"मैं आज ही रातकी गाड़ीसे घर जाऊंगा। ज़रूरी चीजोंकी एक गठरी तो बांधकर तैयार कर दो।"

तारिणीने अकबकाकर पूछा—"यह एकाएक घरकी तैयारी क्यों होने लगी? मामला क्या है?"

"पिताजी बीमार हैं।"

"अच्छा, बाबूजीकी तबीयत अच्छी नहीं है, इसीलिये! तो क्या उन्होंने तुम्हें बुलाया है?"

अमरनाथ झल्ला उठा, बोला—"बुलायेंगे क्यों नहीं? वे बीमार हैं, इसलिये मुझे जाना ही चाहिये।"

"सो तो ठीक है। पर देखो, बुरा न मानना, मेरी बात ध्यान देकर सुनो। उन्होंने पत्रमें ऐसी कोई बात लिखी है या नहीं, जिससे मालूम हो कि उन्होंने तुम्हें माफ़ कर दिया?"

"माफ़ कर दिया!—" यह कहते-ही-कहते अमरनाथ एकाएक चुप हो गया। उसे तुरन्त ही अपने विगत जीवनकी बातें याद हो आयीं। सुरमाका पत्र देख, विस्मित भावके साथ-साथ पिताकी कठिन बीमारीके संवादने उसे ऐसा तन्मय कर दिया कि वह सबकुछ भूल-भालकर बहुदिनप्रवासी, पितृ-गत-प्राण सन्तानकी तरह पिताको देखनेके लिये व्याकुल और उनकी बीमारीके संवादसे उत्कण्ठित हो गया। तारिणीचरणकी एक ही बातने उसे तुरन्त ही सब बातें याद करा दीं। उसे यह भी सोच हुआ कि इस समय पिताकी पुकार या उनकी बीमारीका हाल सुनकर दौड़े हुए चले जानेका उसे अधिकार नहीं है। इस समय बहुतेरे प्रश्नोंकी मीमांसा करके ही उसे अपना कर्त्तव्य स्थिर करना पड़ेगा। तारिणीका प्रश्न उसे सौ बिच्छुओंकी तरह डंक मारने और उसके व्याकुल प्राणोंसे पूछने लगा—"क्या उन्होंने तुम्हें माफ कर दिया?"

अमरनाथ धीरे-धीरे ख़ाली कोचपर बैठ गया।

उसका भाव ताड़कर तारिणीने फिर धीरेसे पूछा—"किसने पत्र लिखा है? बाबूजीने?"

"नहीं"

"तब किसने लिखा है ?"

अमरनाथ जरा झुंझलाकर बोला—"पिताने नहीं लिखा है—बस, इसीसे समझ लो।"

तारिणीको झेंपकर चुप हो जाते देख, चारुने कहा—"मेरी जीजीने लिखा है।"

तारिणीको फिर बोलनेका मौक़ा मिला। उसने कहा—"अच्छा, यदि अमर-बाबूको मेरी राय पसन्द हो तो मैं कहूंगा कि वे भले ही जायँ, पर तुम न जाओ, यहीं रहो।"

चारु चुप हो रही। अमरनाथ बोल उठा—"अच्छा, चारु! तुम यहीं रहो, तारिणी तुम्हारे पास रहेंगे ही, पर मैं तो जाऊंगा, बाबाने मुझे बुलाया है।"

तारिणीने मृदु कण्ठसे कहा,—"तुम्हारी स्त्रीने ही पत्र लिखा है न ? पिताने तो नहीं लिखा ?"

अमरनाथने झुंझलाकर उग्रकण्ठसे कहा—"तारिणी! तुम कैसी बात करते हो ? पिता बीमार हैं, वे कैसे पत्र लिखते ? इसे उन्हींका लिखा हुआ समझना होगा।"

"क्या वे मुनीम, गुमाश्ते या और किसीसे पत्र नही लिखवा सकते थे ? यह तुम्हारी स्त्रीका ही हुक्म है! क्या इतना भी तुम्हारी समझमे नहीं आता ? यह सब तुम्हारी स्त्रीकी ही माया है।"

अमरनाथ दोनों हाथोंसे सिर थामकर चुपचाप बैठा रहा।

दुःख, लज्जा और अपमान बड़े उग्रभावसे उसके सिरमें चक्कर मारने लगे। उसने सोचते-सोचते लड़खड़ाती आवाज़में कहा—"जब बाबाने बुलाया ही नहीं, तब मैं क्यों जाऊं? मैं नहीं जाऊंगा।"

"अमर-बाबू! मेरे कहनेका मतलब यही है कि बहुत समझ-बूझकर काम करो। झोंकमें आकर कोई काम कर बैठनेसे जीवनभर पछतावा हो, ऐसा काम न करो। मान लो कि तुम गये, पिताको बीमार देखकर रोने लगे; पर उन्होंने तुमसे दो बातें भी न की, तुम्हारी ओरसे मुंह फेर लिया, और तुम्हारी स्त्री—"

बात काटकर अमरनाथने आर्त्त कण्ठसे कहा—"चुप रहो, तारिणी! अब अधिक कुछ न कहो। सम्भवतः वे मुझे लौट-जानेको कहेंगे, बात न करके मुंह फेर लेंगे। पर तोभी जब वे बीमार हैं, तब तो मुझसे गये बिना रहा नहीं जाता, मैं तो जाऊंगाही।"

"इसकी तो बात ही न्यारी है। इसपर कोई क्या कह सकता है? लेकिन चारुके बारेमें तुम्हारा क्या विचार है? क्या उसे भी सङ्ग ले जाना चाहते हो? संभव है कि तुम्हारा दोहरा अप-मान करनेके लिये ही तुम्हारी स्त्रीने यह चाल चली हो। जाना हो, तो तुम अकेले ही जाओ, पर चारुको इस झमेलेमें क्यों घसीटते हो। इसे क्या तुम उचित समझते हो?"

"चारु! तुम तारिणीके ही पास रहो।"

आंखोंमें आँसू भरे, स्वामीके पास आ, बदनसे बदन सटाये

हुई चारु बोली—"नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी । मुझे भी लेते चलो । जीजीने तो मुझे भी बुलाया है ।"

"लेकिन चारु! पिताने तो चिट्ठी नहीं लिखी है।"

"पिताने ही हमें बुलवानेके लिये जीजीसे चिट्ठी लिखवायी है। तभी तो उन्होंने लिखी है ?"

अमरनाथ कुछ देरतक चुप रहा। चारुके सरल विश्वाससे उसके हृदयमें बहुत कुछ बल हो आया। उसने लम्बी सांस लेकर कहा—"तारिणी! यह बात तो कुछ अनहोनी नहीं है।"

"तुम्हीं सोच देखो, मुझे तो न जाने क्यों यह बात अच्छी नहीं मालूम होती ।"

चारुने व्यग्र होकर कहा—"इसमें सोचने-समझनेकी क्या बात है ? तारिणी-भैया! तुम लोग बातको अच्छी तरह क्यों नहीं समझ लेते ?"

"जाने दो। जो होना होगा, होगा ही। तारिणी! तुम्हीं अकेले मेरे दुःखके साथी हो। अगर भूलसे मैंने तुम्हें कुछ कह दिया, तो माफ़ करना। तुम यहीं डेरेपर रहो। मैं चारुको साथ लेकर आज ही घर जाता हूं।"

इसके बाद कुछ ठहरकर एक लम्बी सांस लेता हुआ अमर बोला—"मेरे जीमें, न जाने क्यों, यही आता है कि पिताने ही बुलाया है, उन्होंने निश्चय ही मुझे माफ़ कर दिया है।"

निष्ठुर हंसी हंसकर तारिणीचरणने सिर हिलाते-हिलाते केवल इतना ही कहा,—"हां! हां!"

नवां परिच्छेद

पिताका हृदय

सारी राह दुर्वह भार मनपर लादे, अमरनाथ चारुके साथ-साथ घर जाने लगा। रास्तेमें उसने चारुसे बहुत बातें नहीं कीं; चारु भी स्वामीको चुप देख चुप हो रही। वह भी एक अज्ञात भयसे सङ्कुचित हो रही थी। रास्तेमें अमरनाथने दो-तीन बार वह पत्र निकालकर पढ़ा—उसे चारुके लिये जितनी चिन्ता थी, उतनी अपने लिये नहीं। वह उस पत्रके एक-एक अक्षरका मतलब लगा रहा था—उसे ऐसा मालूम होता था, मानों उस पत्रमें कुछ विचित्र भाव भरा हुआ हो। उस पत्रसे आज्ञाधीन व्यक्तिके ऊपर प्रभु अथवा अपराधीके ऊपर विचारक-कीसी कठोर दृष्टि प्रकट हो रही थी। अमरनाथ, भौंहें टेढ़ी किये, उस पत्रकी ओर देखता हुआ सोच रहा था कि सुरमाको क्या अधिकार है कि मेरी अवज्ञा करे अथवा मेरे ऊपर हुक्म जारी करे? साथ-ही-साथ उसके मनमें सुरमाके प्रति एक प्रकारके विद्वेषका भाव भी उठ रहा था। मनुष्यका अपराध जिस मामलेमें अधिक होता है, उसमें वह अपराधका भाव बहुत बार विद्वेष ही पैदा कर देता है।—कहीं तारिणीकी ही बात सच न हो? परन्तु यदि बाबा मुझसे नहीं बोलचाल करेंगे तो फिर उन्हें चिट्ठी भिजवानेकी क्या आवश्यकता थी? इस

समय जहां हमलोग [illegible] सुरमा-ही-क [illegible]
बढ़ा-चढ़ा है। तो क्या हमलोग उसीके अनुमति-सूचक आह्वान-पर उसके पास अनुग्रहकी प्रार्थना और क्षमाकी भिक्षा मांगने-वालोंकी तरह जा रहे हैं?—अमरनाथ जिस घरका मालिक है, आज वह वहांसे खदेड़ा हुआ—दूर भगाया हुआ है। अपराधीकी तरह आज्ञा पानेपर ही वह वहां जाने पाया है। इधर जो उन दोनोंको दण्ड देनेके लिये विचारकके आसनपर बैठी है वह वहांकी कौन है? एक आगन्तुक-मात्र! यह सोचते ही अमरनाथकी छाती रह-रहकर अभिमान और क्षोभसे फूलने लगी।—संभव है, उसके पिता सुरमाके सामने ही उसका अपमान करें; शायद उसकी वह प्रभुत्व-व्यञ्जक दृष्टि देख चारु उसके मारे सूख जाय। लम्बी सांस लेकर अमरनाथने सोचा—"चारुको साथ लाना अच्छा नहीं हुआ।" पलभरमें ही उसे पिताकी बीमारी याद हो आयी। अमरनाथ व्यग्रभावसे रह-रहकर घड़ी देखने लगा। 25/80

रेलसे उतरकर जब दोनों घोड़ागाड़ीपर आ सवार हुए, तब सवेरा हो रहा था। अगल-बगलकी श्यामल वृक्षश्रेणीके भीतरसे जब उसे आधे कोसकी दूरीपर स्थित अपने गांवके घरों और पेड़ोंकी धुंधली छाया-सी दिखाई पड़ने लगी, तब अमरनाथके आंसू रोके न रुके। दोनों ओर धानके खेत, वसु बाबुओंके और उसके अपने बगीचेके बड़े-बड़े लम्बे पेड़ परस्पर होड़ करते हुए अपने सिर आसमानमें उठाये हुए खड़े हैं। वह

बड़ा-सा पुल और उसके नीचे दोनों ओर फैला हुआ वह जलका स्रोत, (जिसके लिये सदा झगड़ा चला करता था,) इस समय भी क्षीण भावसे वह रहा है। सामनेवाले बड़के पेड़मे रख-वालोंके लड़के इस समय भी पहले-ही-की तरह झूला झूल रहे हैं। अमरनाथको याद आया कि वह यहां लड़कपनमें प्रतिदिन घूमनेके लिये आता, पुलपरसे नीचे जलमें कुद-कूदकर तैरा करता तथा इस बड़के पेड़के फलोंमेसे अधिक हिस्सेका वही मालिक बन बैठता था। इस रास्तेके दोनों ओर जो फूसके छप्परोंवाले मकान हैं, उनके रहनेवालोंको वह भलीभांति जानता है। मुमकिन है कि उसके हरि, पुत्तू और नपला आदि इन्हीं घरोंमें किसी तरह सुख-दुःखसे अपने दिन बिता रहे हों, और वह आज दो वर्षोंसे यहांसे निर्वासित किया हुआ है!

क्रमसे ग्रामके ऊंचे-ऊंचे महल-मकान और छोटे-छोटे झोंपड़े दिखाई देने लगे। गांवके अन्दर गाड़ीके प्रवेश करते ही अमरनाथको न जाने कैसी लज्जा-सी मालूम हुई कि उसने गाड़ीकी तमाम झिलमिलियां बन्द करा दीं, जिसमें गांवके लोग भौंचक-से होकर उसकी ओर देखने न लग जायं। उसने देखा कि चारु चुपचाप बैठी हुई है। अमरनाथसे जब नहीं रहा गया तब वह ज़रा झिलमिली उठाकर देखने लगा—ओह! बसु-बाबुओंका मकान उतनी दूर पीछे छूट गया! यह सामने नवीन-पालका दवाख़ाना है, यही बनर्जी-बाबुओंका बैठकख़ाना है। यही बग़लवाला मकान स्कूलका है। उस तरफ़ डाकघर

सर्वस्व-समर्पण

अमरबाबूने वह बड़ा सा पुल और जलका स्रोत देखा। सामनेवाले बड़के पेड़में रखवालोंके लड़के इस समय भी पहले ही की तरह झूला झूल रहे हैं। [पृ० १०२]

है, जिसके पीछे चटर्जी-महाराजोंका पुराना कोठेवाला मकान है। उसके बाद ही हमलोगोंका सफ़ेद मकान नज़र आ रहा है। सामने वही सदाका जाना-पहचाना हुआ, उजले रंगका बड़ा-सा फाटक है। अमरनाथने बड़े ज़ोरसे दरवाज़ा खोल दिया और मुंह बाहर निकालकर देखा कि फाटकके भीतरसे एक गाड़ी निकलकर उसीकी तरफ़ चली आ रही है। अमरनाथने अपने गाड़ीवानको ज़ोरसे गाड़ी चलानेके लिये कहा। पहले कही हुई गाड़ी जब पास आयी, तब उसके कोचबक्सपर बैठा हुआ रहीमबख़्श कोचवान, घोड़ेकी रास खींच, सलाम करता हुआ बोला—“बाबू! आप ही आये हैं?” अमरनाथके कुछ जवाब देनेके पहले ही वह गाड़ी आगे बढ़ गयी। सामनेसे रामचरण ख़ानसामा कई-एक दवाओंकी शीशियां लिये चला जा रहा था, उसने अमरनाथको गाड़ीका दरवाज़ा खोलकर मुंह लटकाये देखते हुए देख, गाड़ीके पास आकर पूछा—“बाबू! कब आये? बड़ेबाबू बहुत बीमार हैं। इतने दिनोंतक—” अमरनाथने मुंह फेर लिया। ख़ानसामा पीछे छूट गया। गाड़ी आगे बढ़कर फाटकके पास पहुंची। अमरनाथ धड़ामसे नीचे कूद पड़ा और चिरपरिचित लाल कङ्कड़ोंवाले रास्तेको पार कर, बैठकख़ानेकी बड़ी-बड़ी सीढ़ियोंपर ज्योंही पैर रख रहा था, त्योंही ऊपरसे न जाने किसने स्नेह-कोमल कण्ठसे कहा-“अमर! ओ अमर! धीरे-धीरे आओ, इतना घबड़ाओ नहीं।” चौंककर अमरनाथने मुंह ऊपर करके देखा कि सामने सीढ़ीके ऊपर

बूढ़े दीवान श्यामाचरण राय खड़े हैं और उनके चारों तरफ़ कई-एक अमले और गांवके कुछ भलेमानस घबड़ायी हुई सूरतें बनाये खड़े हैं। अमरको रुक जाते देख, वे नीचे उतरते-उतरते बोले—"आनेका ठीक समय मालूम न होनेके कारण स्टेशनपर गाड़ी नहीं भेजी जा सकी। मालिक बहुत—"अमरनाथने उनकी बात बीचसे ही काट दी और पहलेकी तरह जल्दी-जल्दी सीढ़ी तै करता हुआ रुंधे हुए गलेसे बोला—"मुझे मालूम है; आप और कुछ न कहिये, चाचा! चुप रहिये।" कहते-कहते अमरनाथ सीढ़ियां तैकर बैठकख़ानेमें पहुच गया। दीवान-जीने ज़ोरसे पुकारकर कहा—"अमर! बाबू भीतरके सामनेवाले दोतल्लेके कमरेमें हैं।" अमरके चले जानेपर कर्म्मनिष्ठ दीवान-जीने मुनीमको बुलाकर कहा—"गाड़ीवानको चलता करो। अरे नन्दू! चीज़-वस्तु सब उतार लो।" चीज़ें उतारने जाकर नन्दूने झट उल्टे पाँवों लौटकर कहा—"बाबूजी! गाड़ीके अन्दर कोई स्त्री है।" चौंककर दीवानजीने कहा, "ठीक ही तो! ओह, क्या लड़कपन है!" डरते-डरते गाड़ीके पास जाकर दीवानजीने कहा, "ओ गाड़ीवान! गाड़ी भीतर ले चलो। आगे बढ़ा लाओ। वहां दरवाज़ाके पास ले जाकर गाड़ी खड़ी करना! नन्दू! घरके भीतर ख़बर दे और बामा या छेमी, जो कोई हो, उसे बुला ला।" नौकर झटपट दौड पड़े।

सवारी उतारकर जब गाड़ी सामनेवाले बैठकख़ानेके दरवाज़ेपर आयी, तब दीवानजीने शान्तभावसे एक कुर्सी

खींचकर उसीपर बैठते हुए नौकरको तम्बाकू लानेकी आज्ञा दी और आये हुए सज्जनोंसे बाबूकी बीमारीका हाल डाक्टरके बतलाये अनुसार कहना आरम्भ किया। मुनीम और गाड़ीवानकी भाड़ेके लिये ख़ासी ले-दे होती रही।

दुतल्लेकी सीढ़ियां जल्दी-जल्दी तै करके अमर हालके सामनेवाले बरामदेमें आकर एकाएक रुक गया। खुली हुई खिड़कीके द्वारा हालके भीतर दृष्टि पड़नेपर उसने एक शय्याका कुछ अंश देखा। साथ ही शय्यापर पड़े किसी मनुष्यकी कपड़ेसे ढकी हुई देहका आधा हिस्सा देखकर ही वह समझ गया कि यही उसके पिता होंगे। एक अज्ञात भयसे उसकी देह कांप उठी और भौंचक-सा होकर कुछ देरतक खड़ा रह गया। उसे भय हो रहा था, कि पिताजी कहीं स्वर्गवासी तो नहीं हो गये! घरके भीतरवाले आदमीने शायद अमरका वह जल्दी जल्दी पैर पटकना सुन लिया था। एकाएक वह शब्द बन्द हो जानेसे गम्भीर और क्लान्त कण्ठसे किसीने घरके अन्दरसे पूछा,—"कौन है?" अमरकी सारी देह कांप उठी। उसने मन-ही-मन सोचा—"पिताजीकी ही तो बोली मालूम पड़ती है।" थोड़ा सम्हलकर अमर बड़ी सावधानीसे पैर रखता हुआ चला जा रहा था, इसी समय उसने घरके अन्दर ही किसी स्त्रीको कहते सुना—"आप चुप रहिये। मैं जाकर देखती हूं कि कौन है?" अमर अबकी और जल्दी-जल्दी चलने लगा। खुले हुए दरवाज़ेके सामने ही पिताकी रोग-शय्या

दिखाई दे रही है। वही उन्नत ललाट, शुभ्र-गम्भीर मुख-श्री है, पर उनके स्नेह-पूर्ण नयन मारे थकावटके बन्द हो रहे हैं। अमरनाथ अपनी वेदनाका स्रोत मनका मनमें ही दबाकर आगे बढ़ता गया और किसी तरह लटपटे पैरोंसे चलता हुआ पिताकी सेजके पास आ, पायँतेकी ओर बैठ रहा। मोटे गलीचेवाले उस कमरेमें वह बड़े दबे पाँवों आया था, तोभी न जाने किस अज्ञात कारणसे रोगीका हृदय चञ्चल हो गया। उसने आँखें बन्द किये ही किये, सिरहाने बैठी हुई रमणीसे कहा—"देख तो, बेटी! कौन है? मेरे पायँते कौन आ बैठा है? श्यामाचरण हैं क्या?"

अमरनाथने सिर ऊपर उठाकर देखा कि पिता अब भी आँखें बन्द किये हुए हैं। उनके सिरके पास ही एक रमणी है, जो कोई अनजान नहीं, जानी-पहचानी हुई है। वह धीरे-धीरे रोगीका सिर सहला रही है। उसकी अकुण्ठित दृष्टिके सामने अमरकी नज़र नीची हो गयी। क्षण-भर ठहरकर हरनाथ-बाबूने धीरेसे पुकारा—"बेटी!"

वह रमणी उनके कानके पास मुँह ले जाकर बोली—"पिताजी!"

"मैं क्या सो गया था?"

"नहीं तो। आप तो जगे ही हुए हैं।"

एक लम्बी सांस ले, उन्होंने मृदु कण्ठसे कहा—"शायद हलकी-सी झपकी आयी थी। मुझे ऐसा मालूम पड़ा था

कि मानों कोई मेरे पैताने आकर बैठ गया। क्या श्यामाचरण आये थे? उनकासा तो नहीं मालूम होता था।"

"तो फिर किसकासा मालूम हुआ?"

"कह नहीं सकता! उन्हींकासा मालूम हुआ था—पर नहीं-नहीं, वह तो कलकत्तेमें है।"

पैरोंके पास बैठे हुए अमरका रुद्ध आवेग उसके हृदयसे जबर्दस्ती बाहर हुआ चाहता था और कण्ठतक आ पहुंचा था। अब और अपनेको न रोक सकनेके कारण वह पिताके पैरोंपर गिर पड़ा। उसके स्पर्शसे हरनाथ-बाबू चौंक पड़े और व्याकुल तथा आर्तकण्ठसे बोले—"बेटी! फिर भी वैसा ही मालूम होता है। देखो तो सही, कौन है?"

बैठी हुई स्त्रीने पीछे मुंह फेरकर अधखुले कण्ठसे कहा—"आप ही देख न लीजिये, कि कौन है! आँखें खोलिये।"

"मुझे भय होता है कि कहीं मेरा अनुमान झूठा न हो, इसीसे आँखें खोलकर नहीं देख सकता। क्या वही हैं?"

अमरनाथने रुलासी आवाजमें कहा—"पिताजी!"

मानों बिजलीकी चोट लगनेसे हरनाथ-बाबूने झटपट आंखे' खोल दीं।

"अमर!"

"पिताजी! पिताजी!" कहते-कहते अमरने उनके दोनों पैरोंको बड़े ज़ोरसे पकडकर उनके बीचमें अपना सिर छिपा-लिया।

सहसा उसके माथेसे किसीका कोमल कर स्पर्श हुआ। "देखो, देखो—ये कैसा कर रहे हैं?" यह कहते-कहते सुरमा बेहोश रोगीके पास जा, उनका सिर अपनी गोदमें ले, कातरता-भरे और रुँधे हुए गलेसे पुकारने लगी—"बाबा! बाबा!"

अमर, पिताके पैरोंको छोड़कर चुपचाप एकटक देखता रह गया। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि अब क्या करना चाहिये। सुरमा उसकी ओर अश्रुपूर्ण नेत्रोंकी व्याकुलता-भरी दृष्टिसे फेरकर झटपट बोल उठी—"इधर आओ, ज़रा हवा कर दो, कोई डरकी बात नहीं—थोड़ी बेहोशी आ गयी है। बहुत कमज़ोर हो गये हैं न? इसीलिये—"

अमरनाथ उठकर पिताके पास खड़ा होकर उनके सिरपर धीरे-धीरे पंखा झलने लगा। साथ-ही-साथ वह सुरमाको वह अथक और धीरता-भरी सेवा-शुश्रूषा भी देखने लगा। अन्तमें उसने लड़खड़ाती हुई ज़बानसे पूछा—"क्या मैं चाचाजीको बुला लाऊँ?"

रोगीका मुँह खोल, चम्मचसे थोड़ा गुनगुना दूध पिलाते-पिलाते सुरमाने कहा—"नहीं, अभी ठीक हुए जाते हैं, कोई डरनेकी बात नहीं है। बाबा! बाबा!"

एक लम्बी साँस ले हरनाथ बाबूने कहा—"बेटी!"

सहसा हृदयमें, न जाने कौनसी वेदनाके मारे, उनका निःश्वास निकलता-निकलता रुक गया था। इसीसे उनको बेहोशी आ गयी थी। सुख और दुःखके एकही साथ तीव्र आघात पहुँ-

चनेसे उनका दुर्बल अन्तःकरण थोड़ी देरके लिये थर्रा-सा गया था। बड़े कष्टसे उस निस्पन्द भावको दूरकर हरनाथ-बाबूने कहा—"बेटी!" इसके बाद पास बैठे हुए अपने पुत्रकी ओर देखते हुए उन्होंने धीरे-धीरे कहा,—"अमर!" पिताने ज्योंही उद्विग्न होकर उसकी ओर देखा, त्योंही उसने दोनो हाथोंसे अपना मुंह छिपा लिया; क्योंकि उससे पिताकी वह दृष्टि सही नहीं जाती थी।

वे पुनर्वार क्षीण स्वरमें बोले,—"अमर!"

अमरने सिर ऊपर उठाकर देखा कि पिता उसकी ओर अपना दाहिना हाथ फैलाये हुए हैं। पिताका ऐसा स्नेहमय भाव देख, तीव्र वेदनाके मारे अमरका कलेजा सौ-सौ टुकड़े होने लगा। कम्पित और व्याकुल हाथोंसे पिताका वह हाथ पकड़कर उसने मुंहपर रख लिया और शय्याके एक ओर, पाटीपर माथा रखकर बैठा रहा।

पुत्रको स्पर्श कर हरनाथ-बाबूके हृदयकी जलन मानों बहुत-कुछ ठण्ढी हो गयी। वे अपना दूसरा हाथ पुत्रके माथेपर रख, अपनी मन-ही-मन दबी हुई वेदनाको आंसूके आकारमे धारा-वाहिकरूपसे बाहर निकालते हुए, तकिया भिंगोने लगे। बूढ़े हरनाथ-बाबू बालककी तरह रोने लगे।

बहुत देरतक आँसू बहाते रहनेके बाद वे कुछ स्थिर हुए। उन्होंने मुंह फेरकर बहूको "बेटी!" कहकर बुलाया।

इस बीच वह एक कोनेमें जाकर, मुंह फेरे ही खड़ी-खड़ी

न जाने क्या कर रही थी। ससुरकी पुकार सुन, वह सिर झुकाये पास आ खड़ी हुई।

"यहीं बैठो, बेटी! ज़रा हवा करो।" वह उनकी सेजकी दूसरी ओर जाकर बैठ रही और चुपचाप पंखेसे हवा करने लगी। कुछ देरतक उसके मलिन और गम्भीर मुखड़ेकी ओर देखनेके बाद हरनाथ-बाबूने धीमी आवाज़में कहा "बेटी! तुम्हें मेरी एक बात माननी होगी।"

सुरमाने काँपते कण्ठसे कहा—"कहिये!" .

"बेटी! मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुमने अभीतक अमर-को क्षमा नहीं किया। मैं नहीं जानता कि कभी माफ़ करोगी भी या नहीं; कारण, उसने जितना मुझे दुःख नहीं दिया उससे अधिक तुम्हें दुःख दिया है। इसीलिये, बेटी! मुझसे एकाएक तुमसे यह अनुरोध करते न बन पड़ा। अच्छा, तो बेटी! मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं कि मैं जबतक जीता हूं तबतक तुम उसके साथ ऐसा ही बर्ताव करो, जिससे मुझे मालूम पड़े, कि हाँ, तुमने उसे माफ़ कर दिया।"

सुरमा चुपचाप पंखा झलने लगी। कुछ घड़ी बाद लम्बी साँस ले हरनाथ-बाबूने कहा—"अगर कभी तुम उसे माफ़ कर सको, तो कर देना।"

सुरमा धीरे-धीरे उनके पैरोंके पास आ गयी और उनके पैरों को दोनों हाथोंसे थाम, रुँधे हुए गलेसे बोली—"आप आशी-र्वाद दीजिये।"

"हाँ, लो—मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो।"

अमरनाथ चुपचाप सिर झुकाये बैठा सोच रहा था—"यह सब कारवाई तो कुछ अपमान करनेवाली नहीं है, मैं झूठमूठ रास्ते-भर बुरी बातें सोचता आया और मन-ही-मन दुःख पाता रहा। इस समय तो पिताकी क्षमापूर्ण स्नेहमयी मूर्त्ति और मधुर व्यवहारसे मुझे उनके अपरिसीम स्नेहका ही प्रमाण मिल रहा है।" अमर सुरमा या उसके व्यवहारका कुछ ख़याल न कर, उस सम्बन्धमें उदासीनभावसे ही कावा काटनेकी चेष्टा कर रहा था। केवल उसकी ओर देखते हुए उसे, न जाने क्यों, सङ्कोच-सा मा:लूम होता था। सुरमाके सामने आते हुए उसे जो सङ्कोच होता था, उसीसे वह आप-ही-आप शर्मसे दबा जाता था। पर यह लज्जा कैसी थी! जिसके साथ क्या भीतर, क्या बाहर, किसी दिन किसी तरहका सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया, उसके सामने यह लज्जा और सङ्कोच किस लिये! उसे यदि एक क्षणके लिये भी अगर स्त्रीका अधिकार देता, तो यह लज्जा उचित भी मालूम होती। पर जब ऐसा कभी हुआ ही नहीं, जब सुरमा अमरकी नज़रोंमें, सम्पूर्ण रूपसे एक परायी नारीके समान है, तब वह इस लज्जाको क्योंकर क्षमा कर सकती है!

अबोध अमरकी समझमें नहीं आया कि न्याय, धर्म्म और सामाजिक सम्बन्धका मनुष्यके ऊपर कितना बड़ा प्रभुत्व है!

उनके विचारासनके सामने अमरका मस्तक, इच्छा न होनेपर भी, आप-से-आप नीचा हो गया! हरनाथ-बाबूने अमरकी ओर देखते हुए पुकारा—"अमर! उठो, यहाँ आकर बैठो।" कठ-पुतलीकी भांति अमरनाथ उठा और उनके पास जा बैठा। अपनी नज़रोंसे उसके प्रत्येक अङ्गमें स्नेह-रस चुलाते हुए उन्होंने कहा—"तुम तो बड़े दुर्बल हो गये हो, बेटा!"

अमरकी आँखोंसे फिर झर-झर आँसू झरने लगे। हरनाथ-बाबूने उसके सिरपर हाथ रखकर कहा,—"अमर! रोओ नहीं। तुम लाख दोष करो, पर मैं क्या कभी तुमपर नाराज़ हो सकता हूं?"

अमर पछतावा प्रगट करनेके लिये एक शब्द भी न बोल सका। वह चुपचाप बैठा हुआ रोता रहा और उसके पिता धीरे-धीरे उसका सिर सहलाते रहे। रोते-रोते अमर क्रमशः शान्त हो गया।

सुरमा, एक दवा पीनेवाले गिलासमें थोड़ी दवा ढालकर हरनाथ-बाबूके पास ले आयी। उसके आते ही उन्होंने कहा—"अब मैं दवा नहीं खाऊंगा, बेटी! अच्छा होना होगा तो इतनेही-से हो जाऊँगा।"

"आप तो हर रोज़ इसी तरह नाहँ-नूहँ करते हैं।"

"नाह नूंह करनेसे तुम इस बुड्ढेको छोड़ थोड़े देती हो बेटी?"

सुरमाने तनिक मुस्कराकर कहा—"पहले दवा खा लीजिये,

पिताजी, पीछे बातें कीजियेगा ।" इसके बाद वह अमरनाथकी ओर फिर कर बोली—"वेदाना ले आये हैं कि नहीं ?"

"सन्दूकमें है ।" कहते-कहते अमरनाथको ख़याल हो आया कि ट्रङ्क तो गाड़ीमें ही रह गया था, नीचे नहीं उतारा गया था और मैं चारुको भी उसीपर बैठी छोड़ आया था ।

हरनाथ-बाबूने पुत्रकी ओर देखते हुए कहा—"क्या तुम अकेले ही आये हो ?"

अमरनाथने मृदुकण्ठसे कहा,—"नहीं ।"

"छोटी बहूको भी साथ लेते आये हो न ? वह कहां है ?"

"गाड़ीमें ।"

हरनाथ-बाबूने सहमते हुए कहा—"अभीतक तुम्हारा लड़कपन नहीं गया । बहूको गाड़ीमें ही बैठी छोड़कर चले आये और निश्चिन्त हो बैठ रहे ? बेटी !—" उनके इतना कहते-ही-कहते सुरमा उठ खड़ी हुई, पर सहसा अमरनाथपर दृष्टि पड़ते ही ठिठककर खड़ी हो गयी । अमरनाथ लाख चेष्टा करनेपर भी अपने मुखका विकृत भाव न छिपा सका । सुरमा यह समझ गयी और द्वारके पास खड़ी हुई एक आत्मीयासे इशारेसे बोली कि तुम यहाँसे चली जाओ ।

आत्मीयाने उत्तर दिया—"हमलोगोंने छोटी बहूको गाड़ीपरसे उतार लिया है । दीवानजीने कहा था ।"

हरनाथ-बाबूने व्यग्रभावसे कहा—"उसे यहां भेज दो; मैं उसे देखकर आशीर्वाद दूंगा ।"

"देखिये, मैं साथ ही लेती आयी हूं ।"

धीरे-धीरे अवगुण्ठिता चारु, कांपते चरणोंसे, कमरेके अन्दर आयी। अमरनाथ गम्भीर मुंह बनाये, सिर झुकाये, बैठा रहा और सुरमा रोगीके लिये पथ्य प्रस्तुत करनेमें लग गयी। हरनाथ-बाबू ने कहा—"आओ, बेटी!"

चारुने धीरे-धीरे ससुरके पैरोंके पास जा उन्हें प्रणाम किया। हरनाथ-बाबूने स्नेहसे भरे हुए स्वरमें पुकारा—"चली आ, बेटी! पास आ जा, यहां बैठ।"

उनके कथनानुसार चारु अपनी कांपती देहको लिये हुई किसी-किसी तरह, ससुरकी शय्याके दूसरी ओर जा खड़ी हुई।

"लजाती क्यों हो, बेटी, मैं तुम लोगोंका बाप हूं।"

घूंघटके भीतर चारु सिसक रही थी। ऐसी प्यारकी बात तो उसने आजतक कभी सुनी ही नहीं थी। तोभी इस जगह आते हुए वह अबतक एक अज्ञात भयसे थर-थर कांप रही थी! और उस भयका पात्र था—यही स्नेहमय, शान्तिमय और पिताके समान उदारहृदय मनुष्य!

चारुके पास आ बैठनेपर उसके सिरपर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए हरनाथ-बाबूने कहा—"बेटी! मैंने तुम्हें बड़ा दुःख दिया है। तुम अपने घरमें आजतक आने भी नहीं पायी। मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम सुखी रहो।"

बहुत देरतक सब-के-सब चुपचाप रहे। सुरमा, पथ्य लिये हुए, अमरनाथ जहां बैठा था उधर ही चली। यह देख अमरनाथ हटकर बैठ गया। सुरमाने धीरेसे कहा—"बाबा! खा न लो!"

"लाओ, दो, बेटी !"

सुरमा पास बैठी निपुण हाथोंसे बड़े यत्नके साथ उन्हें पथ्य खिलाने लगी। चारु पहले ही दरवाज़ेकी आड़में खड़ी-खड़ी सुरमाको पहचान गयी थी और आनन्द-भरे हृदयसे उसके प्रत्येक कार्य्यको प्रशंसाकी दृष्टिसे देख रही थी। उसका वह उदारताव्यञ्जक मुखमण्डल, अश्रुपूर्ण नेत्र, शोभामयी सुन्दर कान्ति, सबसे बढ़कर उसकी सब कामोंमें निपुणता और स्नेहपूर्ण व्यवहार देखकर भक्तिमिश्रित प्रेमसे चारुका मन मुग्ध हो रहा था। हरनाथ-बाबू और अमरके मिलनेके समय जो रोना-धोना जारी हो गया था, उसे देख सुरमा जब मुंह फेरकर खड़ी हो गयी थी और उसकी ज्योति-भरी बड़ी-बड़ी आंखोंमें आंसू छलछला आये थे, और उसके सुन्दर गालोंपरसे होकर मोतीकी तरह आंसूकी बूंदें ढलकने लगी थीं, तब दरवाज़ेकी आड़में खड़ी चारुकी यह दृश्य देखकर यही इच्छा हो रही थी कि वह भी झटपट दौड़कर उसके पास चली जाय और उसके पैर पकड़कर जी भरकर रोये। पर वह ऐसा न कर सकी, वह केवल ललचायी आँखोंसे अबतक सुरमाके सब कामोंको देख रही थी और उसकी हरएक अदाको मन-ही-मन सराहती जाती थी। जन्मसे ही उसने मांके सिवाय और किसीको नहीं जाना था। संसारका और कोई नेह-नाता वह नहीं जानती थी। इसीलिये सुरमाके साथ उसका जो जटिल सम्बन्ध है, उसे स्मरणकर उसका चित्त सुरमाके गुणोंकी ओर देखकर भी न डिगे—ऐसी शिक्षा

उसे नहीं मिली थी। इसीलिये शुरूसे ही वह सुरमाके गुणोंपर रीझ गयी। चारुकी-सी दुनियाके छल-कपटसे अनजान, सीधी-सादी स्त्रीके लिये यही उचित भी था। चारु सुरमाको अपनी आत्मीया समझकर उसे मन-ही-मन 'बहन' कह रही थी।

परन्तु उसी सुरमाके बिल्कुल पास आकर चारुने ज्योंही विश्वस्त हृदयसे उसकी ओर देखा, त्योंही भयसे कांप उठी, सुरमाकी वह उदार और स्नेहपूर्ण मुख-कान्ति मानों पलभरमें बदलकर और-की-और ही हो गयी। उसने देखा कि उसकी बड़ी-बड़ी आंखोंकी काली पुतलियोंसे एक तरहकी अस्वाभाविक ज्योति निकल रही है। उसके मुखड़ेपर मानों एक प्रकारके दारुण निष्ठुर भावने आकर अधिकार कर लिया है। भीरुस्वभावा चारु एक अज्ञातभयसे भीत हो उठी।

हरनाथ-बाबूके पथ्य खा लेनेपर सुरमा उनके पाससे उठकर खड़ी हो गयी। हरनाथ-बाबूने स्नेह-भरे स्वरमें कहा—"ज़रा ठहरो, बेटी! छोटी बहू! ज़रा इधर तो चली आओ, बेटी!" चारु उनकी आज्ञाके अनुसार उनकी शय्याके दूसरी ओर जा खड़ी हुई। उसे फिर सुरमाकी ओर देखनेका साहस नहीं हुआ। हरनाथ बाबूने फिर धीरे-धीरे हाथ फैलाकर चारुके कांपते हुए नन्हेसे हाथको अपने एक हाथमें ले, दूसरे हाथसे सुरमाका दाहिना हाथ पकड़ा और दोनोंके हाथ मिला दिये। इसके बाद आंखोंमें आंसूभरे सुरमाकी ओर देखते हुए वे गद्गद्-कण्ठसे बोले—"बेटो, मैं इसे तुम्हारे हाथमें दिये जाता हूं। यह

हरनाथ-बाबूने चारुके कांपते हुए नन्हेसे हाथको अपने एक हाथमें
ले दूसरे हाथसे सुरमाका दाहिना हाथ पकडा और दोनोंके हाथ

तुम्हारी छोटी बहन है। छोटी बहू! अपनी बड़ी बहनको प्रणाम करो। यह देवी है।"

चारु धड़कते हुए कलेजेके साथ धीरे-धीरे सुरमाको प्रणाम-कर ज्योंही उठ खड़ी हुई,त्योंही एक मुलायम हाथने चारुको हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया। चारुने विस्मत नेत्रोंसे देखा कि सचमुच ही करुणामयी, स्नेहमयी, अपूर्व देवी-मूर्ति है! इस समय वे चमकती हुई आंखें मानों चारुके डरसे सूखे हुए सरल और छोटेसे मुखड़ेपर अजस्र स्नेह-धारा वर्षण कर रही हैं! चारु यह देख, गलकर पानी हो गयी और अपने अनजानते-में ही उसने सुरमाके हृदयपर धीरे-धीरे अपना मस्तक स्थापित कर दिया और मीठे स्वरसे पुकार उठी—"जीजी!"

\+ + +

अमरनाथकी अथक चेष्टा और सुरमाके जी-तोड़ सेवा-यत्नसे भी हरनाथ-बाबू बहुत दिनोंतक अपने इस नये बसाये हुए स्नेहके संसारका आनन्द न भोग कर सके। वे जितने दिन जी रहे थे,वे ही मानों बहुत मालूम पड़ते थे, उनकी आसन्न मृत्युकी आशङ्कासे व्याकुल हुए जो कई स्नेह-कातर प्राण, अपना सब मानापमान और वैर-विरोध भूलकर निर्मल और प्रशान्त चित्तसे एक दूसरेके ऊपर निर्भर करते हुए उनकी सेवा कर रहे थे, वे लोग कहीं उनके मरनेमें देर होती देख, उनके जीते-ही-जी अपना यह मेल-जोल न बन्द कर दें, इसी डरसे वे एक-एक दिन-को पहाड़ समझ रहे थे। अमर सहज:ही सुरमासे बातें नहीं

करता। वह अगर सामने या पास दिखलाई देती, तो पहले टल जाना ही चाहता; परन्तु जब सुरमा उसके साथ बिना किसी तरहके सङ्कोचके ससुरकी दवादारू और बीमारीके बारेमें पूछ-पाछ या सलाह-बात करती, तब मानों उसकी जानमें जान आ जाती और वह अत्यन्त सहज और सरलभावसे उसकी बातोंका जवाब देता। हरनाथ-बाबू उस समय सुरमाको मन-ही-मन असंख्य आशीर्वाद देने और मीठे स्वरसे कहने लगते—"अब मैं बड़े सुखसे मरूंगा।"

अन्तिम दिन अमरने सबके सामने ही पितासे पूछा—"बाबा, आपकी मेरे लिये क्या आज्ञा है, सो कहिये।"

हरनाथ-बाबूने धीरेसे कहा—"आज्ञा कैसी!"

"आप कहनेमें सङ्कोच न करें। मुझे चाचासे मालूम हुआ है कि आपने अपनी बड़ी बहूको सारी सम्पत्ति देनेका विचार किया है।"

सुरमाका मुँह निहारते हुए हरनाथ-बाबूने स्नेह-गद्गद कण्ठसे कहा—"जबतक मैंने अपनी इस लड़कीके मनकी थाह नहीं पायी थी, तभीतक मेरा वैसा विचार था। बड़ी बहू मेरी लड़की है। उसके मनमें कष्ट या लज्जा हो, ऐसा कोई काम मैं थोड़े ही कर सकता हूं?"

दोनों हाथोंसे पिताके पैर पकड़कर अमरनाथने लड़खड़ाती हुई ज़ुबानसे पूछा—"पिताजी अब तो आपने मुझे क्षमा कर दिया न?"

"तुम्हें क्षमा ? क्या मैं तुम्हारे-ऊपर नाराज़ हुआ था, बेटा ? नहीं, नहीं, मैंने तो तुम्हें वही दण्ड दिया जो तुम्हें न्यायसे मिलना चाहिये था।"

कुछ देर बाद वे ज़रा सम्हलकर बोले—"बस, अमर! अब नहीं। अब मैं इस तरहकी बातें अधिक न करूंगा। यह कभी न सोचना कि मैं मन-ही-मन नाराज़ो छिपाये हुए भरा हूं। मैं इस समय बड़ा ही सुखी हूं। मैंने तुम्हें तुम्हारा घर-द्वार सौंप दिया। तुमने बड़ी बहूपर जो अत्याचार किया है उसीका बदला मैंने तुम्हें अपने विचारके अनुसार दिया था। लाख हो, पर तुम मेरे बच्चे हो, और सदा बच्चे ही बने रहोगे। अपनी इस लड़की—बड़ी बहूके सम्बन्धमें मैं तुमसे कुछ न कहूंगा। मुझे विश्वास है कि वह आप ही अपनी मर्यादाकी रक्षा कर लेगी। तुम अभी उसे नहीं पहचानते।"

तीसरे पहर पुत्र और पुत्रवधुओंको आशीर्वाद दे हरनाथ-बाबू, बड़ी शान्तिके साथ, सदाके लिये गहरी नींदमे सो गये। अमरनाथ बच्चेकी तरह रोने लगा। चारु, इन्हीं कई दिनोंमें, ससुरका अपार स्नेह पा, सुखी हो रही थी ; पर उन्हें खोकर फिर पहलेकी तरह बिना मां-बापकी हो गयी और एक कोनेमें बैठी फूट-फूटकर रोने लगी। श्यामाचरण राय दोनोंको ढाढ़स बंधाने और समझाने-बुझाने लगे। केवल एक व्यक्ति, धैर्यकी मूर्तिकी तरह चुपचाप श्यामाचरणके कहे अनुसार सब काम करते हुए उनकी सहायता कर रहा था। सच पूछिये, तो

उस व्यक्तिके हृदयके भीतर ऐसी यातना हो रही थी, कि उसका कलेजा फटा जाता था।—वैसी यातना और किसीको नहीं थी; परन्तु उसका संसारकी दृष्टिसे छिपा हुआ और सदासे आत्म-निर्भरशील हृदय, इस बिछोहसे कैसा शून्य हो रहा है, यह बात केवल उसीका जी जानता है। वह व्यक्ति और कोई नहीं—सुरमा ही है।

दसवां परिच्छेद
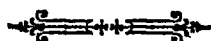
गड़बड़ाध्याय

हरनाथ बाबूको मरे कई दिन हो गये। अमर धीरे-धीरे शोक भूलने लगा। ख़ास करके चारुके लिये उसे और भी अपने चित्तको ठिकाने करना पड़ा। चारु, इस अनजान जगहमें एकदम अकेली रहती है। स्वामीके समीप भी बहुत नहीं आने पाती—चुपचाप एक कोनेमें पड़ी रहती है। हरनाथ-बाबूकी मृत्युके दूसरे ही दिनसे सुरमाने उन लोगोंका साथ छोड़ दिया है, इसलिये लाचार होकर अमरनाथको ही उसका साथी बन जाना पड़ा है।

एक दिन श्यामाचरण रायने सुरमासे कहा—"बेटी! मालिक तुम्हारे ही हाथोंमें अमरको सौंप गये हैं। वह अभी संसारका

हाल कुछ भी नहीं जानता। जानना भी नहीं चाहता। कुछ नक़द काजके तो वह पास भी नहीं फटकता। अगर तुम चाहो तो उसका ध्यान इधर फेर सकती हो।"

कुछ देर चुप रहनेके बाद सुरमाने एक सूखी हंसी हंसकर कहा—"नहीं, चाचा! अगर बाबूजी जीते रहते तो मैं आपकी बात अवश्य मान लेती; पर इस समय किसी बातमें मेरा दख़ल न देना ही ठीक है। वे आप ही दो दिन बाद समझ-बूझकर चलने लगेंगे।"

"बेटी! नाराज़ न होना। मैं देखता हूं कि आजकल तुम छोटी बहू और अमरकी कुछ भी खोज-ख़बर नहीं लेतीं। इन दिनों वे बेचारे भी शोकसे व्याकुल हैं। अपने घरमें रहते हुए भी वे यहां नये आये हुए अतिथिकी तरह हैं। बेटी! मैं आशा करता था कि तुम्हीं अकेली सब काम चलाओगी और सब कुछ बर्दाश्त करके घरकी मान-मर्यादा सुरक्षित रक्खोगी।"

"चाचा! बाबूजीका आशीर्वाद मेरे सिरपर है। मैं सब कुछ कर लूंगी, पर अभी आप मुझसे कुछ भी न कहें।"

कुछ देर चुप रहनेके बाद श्यामाचरण रायने कहा—"अगर दिलसे न हो, तो मुंहसे भी तो मुहब्बत दिखलाकर उनकी भलाईकी चेष्टा करती रहो! क्या यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है?"

"नहीं, चाचा! मुझसे ऐसा कभी न हो सकेगा। यदि मैं मनसे तुम्हें अपना सगा न समझूंगी तो बाहरसे दिखलौआ

उस व्यक्तिके साथ कपट न कर सकूँगी। मुझसे ऐसा कभी न हो सकेगा कि कलेजमें कुछ और रक्खूं तथा बाहरसे कुछ और भाव दिखलाऊं। मुझसे ऐसा करते नहीं बनता, इसीलिये मैंने कितनी बार आप लोगोंके सामने निर्लज्जकी तरह व्यवहार किया है। चाचा! मेरा मन भी सदा एकसा नहीं रहता। कभी तो मैं सोचती हूं कि जो कुछ है, वह सब मेरा ही है; पर फिर तुरत ही सोचने लगती हूं कि मैं यहांकी कोई नहीं हूं। मैं बाबूजीके जीते-जी जिस-ढंगसे रहती-बरतती थी,उसीको याद करके आपने ऐसी बात कही है; पर मैं आपसे सच कहती हूं कि उनके प्रेमके कारण मैं तनिक भी दुःख नहीं अनुभव करती थी—मेरे मनमें कभी उदासी नहीं आने पाती थी। वे जिस समय उन लोगोंको मेरे हाथमें सौंप गये, उस समय मैंने सोचा था—ओह, जाने दो उन बातोंको—मेरा मन भी कैसा ख़राब है। बाबूजीके मर जानेके बादसे मुझे उनके पास जानेकी भी,इच्छा नहीं होती। मुझे ऐसा मालूम होता है, मानों अब मेरा कोई कर्त्तव्य बाक़ी नहीं रह गया है।"

एक लम्बी सांस ले, श्यामाचरण राय चुप हो रहे।

बड़ी धूमधाम और ख़ूब ख़र्च-बर्च करके हरनाथ-बाबूका,श्राद्ध हुआ। उनके शत्रु वसु-बाबूके घरवालोंको भी यह बात मान लेनी पड़ी कि उतने बड़े आदमीका श्राद्ध जैसा होना चाहिये था, वैसा ही हुआ। बहुत ख़र्च हो जानेके कारण अमरनाथपर कुछ ऋण भी हो गया।

इतना बेहद ख़र्च करनेकी श्यामाचरण रायकी राय नहीं थी;

क्योंकि बूढ़े मालिक इतने ख़र्चीले आदमी थे कि वैसी कुछ नक़द ज़मा नहीं छोड़ गये थे। केवल अमरनाथकी इच्छा और आदेश-से ही ऐसा हुआ। प्रतिवाद करना अनुचित समझकर न तो वे ही कुछ बोले, न सुरमाने ही कुछ कहा।

कई सप्ताह बाद एक दिन दीवानजीने अमरनाथको बुलाकर ज़मींदारीका काम-काज बतलाना शुरू किया। यह सुनते ही चकित होकर अमरनाथने कहा—"चाचा! इसके क्या मानी? आपके रहते, मुझे इन सब बातोंके जानने-सुननेकी क्या ज़रूरत है?"

श्यामाचरणने कहा—"बेटा! भैया चले गये, अबकी मेरी ही बारी है। मुझे उसके लिये तैयार हो जाना भी तो ज़रूरी है, मैंने काशी जानेका विचार किया है।"

अमरनाथने मुंह बनाकर कहा—"ओह! तो क्या मुझे दूसरी दफ़े फिर पितृहीन होना पड़ेगा?"

श्यामाचरणने उसे तरह-तरहसे समझाना शुरू किया; पर अमरनाथने उनकी एक बातका भी उत्तर न दिया और चुपचाप वहांसे उठकर चला गया। लाचार श्यामाचरणने सुरमासे अपने मनकी बात कही। सुरमाने घबराकर कहा—"नहीं चाचा! आप अभी कहीं, किसी तरह, न जाने पायँगे।"

"बेटी! तुम बुद्धिमती होकर भी ऐसी बात क्यों कहती हो?"

"क्यों न कहूं? अभी उस दिन बाबूजीका स्वर्गवास हुआ, आज आप भी हमें छोड़कर चले जाना चाहते हैं। फिर तो हमारा घर ही तबाह हो जायगा।"

"यह कैसी बात कहती हो, बेटी! अमर ज़मींदारीके कामोंको नहीं जानता, यह ठीक है; पर तोभी वह बड़ा ही अच्छा लड़का है। बेटी! तुम उसे नहीं पहचानती—ख़ैर, मैं फिर कहता हूं कि तुम्हें बहुत कुछ मालूम है, तुम सब समझती-बूझती हो, इसलिये यदि आवश्यकता पड़े तो तुम्हीं उसे सलाह मशवरा दिया करना। इस तरह मुंह मोड़कर चलनेसे काम नहीं चलनेका, बेटी!"

बड़ी देरतक चुप रहनेके बाद सुरमाने कहा—"चाचा! आप बार-बार यही बात करते हैं, पर मैं मुंह नहीं मोड़ती। इस समय जो मालिक हैं उन्होंने कब किसी काममें मेरी सहायता मांगी, जो मैंने—"

"वह अभी नादान लड़का है। इसके सिवा उसने भी तो अभीतक कोई काम अपने हाथमें नहीं लिया। बेटी! तुम स्वयं ही अपना अधिकार क्यों हाथसे जाने देती हो? मैंने कल गुमाश्तेसे सुना कि तुम आजकल उसका हिसाब वग़ैरह कुछ भी नहीं देखती। भण्डारीने कहा कि मांजी तो अब किसी बातके लिये हुक्म ही नहीं देतीं और गुमाश्ता मेरी बात ही नहीं मानता। बेटी! यह सब क्या हो रहा है!"

क्षण-भर बाद सुरमाने मीठे स्वरसे कहा—"चाचा! मैंने दो दिनके लिये छुट्टी ले ली है।"

श्यामाचरण रायने लम्बी सांस ले, मलिन मुख किये, सिर हिलाते हुए कहा—"यह सब लक्षण अच्छे नहीं हैं, इसीसे तो मैं पहले ही चला जाना चाहता हूं।"

सुरमाने भी ज़रा-गम्भीर और मलिन मुंह बनाये हुए कहा—"चाचा! यह नहीं होनेका। हमलोग आपके बाल-बच्चे हैं। यदि हम कुछ भूल-चूक करके रोयें या हंसें, तो क्या आप इसके लिये हमें विपद्के मुंहमें फेंककर चले जायँगे? मुझे कुछ दिनोंके लिये माफ़ करें—आप क्यों इतने दुःखी होते हैं? जिनकी यह घर-गृहस्थी है; उन्हें तो इन सब बातोंकी चिन्ता ही नहीं है।"

बूढ़े दीवानने लम्बी सांस ले; क्षोभपूर्ण स्वरमें कहा—"बेटी तुम्हें जो अच्छा लगे, करो।"

"लेकिन चाहे जो कुछ हो, चाचा! इस समय आपका कहीं जाना नहीं हो सकता। कम-से-कम तो साल-डेढ़ सालके लिये तो आपका जाना रुका ही समझिये। मैं जो कुछ करूं, उससे उनकी कोई क्षति भले ही न हो; पर इसीलिये आप उन्हें छोड़कर नहीं जा सकते। चाचा! यदि आप ऐसा करेंगे तो पिताजीको स्वर्गमें बड़ा दुःख होगा।"

दीवानजीने चिन्तित भावसे कहा—"तुम इस नावकी डांड़-पतवार छोड़ ही चुकीं, अमर भी कुछ देखता-सुनता नहीं है। मैंने उसे काम-काज सिखलानेके लिये कचहरीमें बुलाया था; पर वह सुनी अनसुनी करके उठकर चला गया। तुम दोनोंकी एक ही हालत हो रही है। अच्छा, मान लो कि मैं नहीं गया, तोभी सब कुछ समझ-बूझ लेनेमें क्या बुराई है? मैं बूढ़ा आदमी अकेले कितने दिनोंतक इतना बड़ा बोझा उठाता रहूंगा?"

"चाचा! यदि आप यह बोझा न उठायेंगे तो दूसरे किसीसे

नहीं उठाया जायगा। ख़ैर, इस समय बड़ी देर हुई, नहाने जाइये।"

\+ × +

इसके बाद कई दिन बीत गये। एक दिन अमरनाथने दीवान-को बुलाकर बड़ी झुंझलाहटके साथ कहा—"चाचा! क्या यहां नौकर-चाकरोंके काम-काजका कोई बन्दोबस्त नहीं है? मैं देखता हूं कि सारा काम गोलमाल और बेक़ायदे हो रहा है। ख़ास करके घरके अन्दर तो बिलकुल ही गपड़चौथ है। सोनेके कमरोंमें तमाम गन्दगी फैली हुई है। बिस्तरोंका हाल तो और भी बुरा हो रहा है। घरमें न दिये जलाये जाते हैं, न झाड़-बुहार होती है। क्या इन सब बातोंकी कोइ देखभाल नहीं करता?"

दीवानने गम्भीर मुंह बनाये हुए कहा—"घरके अन्दरके यह सब काम तो दासियां करती हैं।"

"दासियोंको इस समय क्या हो गया है? आज तो यह सब देखकर मेरी तबीयत ही झल्ला उठी। मैं इन सब बातोंकी ओर ध्यान नहीं देता, तोभी आज मुझे यह बात असह्य हो गयी है।"

गुमश्ता चण्डीघोष वहीं खड़े थे। उन्होंने कहा—"दासियोंमें आपसमें झगड़ा हुआ था, इसीलिये वामा और क्षान्त काम छोड़कर चली गयी हैं। यह सब काम वे ही दोनों करती थीं। रसोई-घरकी दासियोंने तो हमारी बुद्धि ही बिगाड़ दी है। इन्हीं

सबकी आफ़तके मारे कल नारायण ठाकुरने जवाब दे दिया और यहांसे चले गये। जाती दफ़े कह गये कि मांजी :दासियोंको डांटती-डपटती ही नही हैं, अब मेरा यहां रहना नहीं हो सकता, लाचार मैं कल रातको रसोईदार ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मरा। अन्तमें किसी तरह काम चलाया गया।"

"चाचा! ऐसा गोलमाल क्यों होता है? इन सब बातोंकी देख-भाल क्यों नहीं करते?"

"अमर! मुझे इन सब बातोंको देखनेकी फ़ुरसत कहां मिलती है? घरमें एक आदमी मालिक या प्रधान अवश्य होना चाहिये। विशेषतया गृहिणीके बिना घर नहीं चलता। तुमलोग तो इन सब बातोंकी ओर ध्यान ही नहीं दोगे।"

"चाचा! तो क्या यह सब देखने-सुननेका काम मेरा ही है? मैं ही सब काम छोड़कर नौकर-दाइयोंको चराया करूं? पिताजीके समयमें कौन इन सब कामोंको देखता था?"

दीवानजीने कुछ भी नहीं कहा। चण्डीघोषने कहा—"मांजी ही देखती थीं। उनकी डांट-डपटके डरसे न कोई दासी ज़ोरसे बात करती थी, न काममें इधर-उधर करने पाती थी। कल ... हारानीने क्या किया कि—"

... काटकर अमरने कहा—"पिताजी चले गये, पर जो ... मने सब कुछ देखती-सुनती थीं, वे तो हैं? वे ही इस ... कोई नहीं इधर ध्यान देतीं?"

...चरण चुपचाप ही रहे। चण्डीघोषने सोच-विचारकर

कहा—"वे आजकल कुछ भी नहीं देखतीं। कई रुपयोंका गोलमाल हो गया था। इसपर दीवानजी मेरे ऊपर नाराज़ हुए, पर जब न वे ही देखते-सुनते हैं, न मांजी ही देखती हैं, तब तो गोलमाल हुआ ही चाहे। इसमें मेरा क्या दोष है?"

चण्डीघोषकी बात सुन, अमरनाथने तनिक मुस्कुराकर कहा, "क्यों नहीं? ख़र्च करो तुम और दोष हो चाचाका! चाचा! आप इस गड़बड़ाध्यायका कोई इन्तज़ाम कीजिये, नहीं तो यहां सही-सलामत रहना मुश्किल हो जायगा।"

"मैं क्या इन्तज़ाम करूंगा, बेटा? पहले तो बहूजी ही इन सब कामोंकी देख-भाल करती थीं।"

"फिर वे आजकल क्यों नहीं देखती-भालतीं?"

"क्योंकि तुमने शायद अभीतक उन्हें इस कामका भार नहीं दिया है।"

अमरनाथने भौं सिकोड़कर कहा—"चाचा! यह सब अन्यायकी बातें हैं। इतने दिनोंतक क्या मैंने ही भार दे रखा था?"

"उस समय जो घरके मालिक थे उन्होंने भार दे रखा था; पर इस समय तो तुम्हीं मालिक हो।"

"मालिक बननेमें बड़ी-बड़ी आफ़तें नज़र आती हैं। तो इस समय आप मुझे क्या करनेको कहते हैं? क्या उनके पास जाकर कहना होगा?"

"कहना ही उचित है। गृहिणीके बिना यह

ठीक-ठिकानेसे नहीं चल सकते। जितनी बड़ी गृहस्थी हो, उतनी ही चतुर गृहिणी भी होनी चाहिये! यह सब काम मर्दोंके नहीं हैं। छोटी बहू अभी नन्ही-नादान हैं, नहीं तो—"

अमरनाथने थोड़ी देर सोचकर सिर झुकाये हुए कहा—"वह चाहे जैसी हो, पर जो प्रधान है उसे तो यह सब देखना ही चाहिये। पिताजी तो सुर्माको घरकी मालिकिन बना गये हैं। उसके उस अधिकारमें तो कोई रोक-टोक नहीं करता, फिर वह क्यों—व्यर्थ ही ऐसा कर रही है?"

"अमर! तुम्हारा गुस्सा करना उचित नही है। जब तुम्हीं घरके मालिक हो, तब तुम्हें ज़रा सहनशील होना होगा और सावधानीके साथ उसका भ्रम दूर कर देना होगा।"

"चाचा! मैं तो मालिक होना ही नहीं चाहता, मुझे यह सब अच्छा नही लगता।"

यकायक अमरनाथको यह ख़याल हो आया कि पिताके मरनेके बादसे सुरमा चारुके पास बैठती-उठती नही है। पिताकी बीमारीके दिनोंमें सुरमाने जिस भावसे चारुको अपने साथ लगा रक्खा था, उसे देखकर अमरनाथ इस बातसे निश्चिन्त हो गया था कि चारु यहां आकर बेसङ्ग-साथकी नहीं रही। चारुका हृदय कितना सरल है, यह वह जानता था। वह समझ गया कि इस सङ्ग-साथकी वजहसे चारुको कोई तकलीफ़ नहीं होने पायेगी—सुरमाके साथ उसका जो नाता है, उसका उत्ताप उसे नहीं सहना पड़ेगा। उस समय

सुरमाने चारुको सहेलीकी भांति अपने साथ लेकर इस अनजान जगहमें उसकी जैसी सहायता की थी, उसीको देखकर अमर प्रसन्न हो गया था। फिर तो उसे सुरमाके विषयमें और कुछ सोचनेका न तो अवकाश मिला, न इच्छा ही हुई। इस समय उसके जीवनका ग्लानिकर युद्ध समाप्त हो गया है। आन्तरिक स्नेह दिखलाते हुए, उसका अपराध क्षमा करके, उसके पिता स्वर्ग चले गये हैं। चारों ओर कर्त्तव्यका जो कठिन युद्ध जारी था, वह समाप्त हो गया है। इस समय केवल विश्रामका समय है। किन्तु इस निश्चिन्त, नीरव, और आरामके जीवनके आरम्भमें ही यह कैसी विशृङ्खला आरम्भ हुई। इस समय एक बिलकुल अनजान आदमी, जिसे आजतक कभी मनोराज्यके दरवाज़ेतक भी नहीं आने दिया गया, वही कुछ छोटी-मोटी घटनाओंको लेकर वहां अत्यन्त जाग्रत होकर उठ खड़ा हुआ और समय-समयपर एक प्रकारकी अनुशोचनाकी सूक्ष्म तथा दीर्घ रेखा खींचकर अन्तराकाशको भेद कर रहा है। रह-रहकर यह भी जीमें आता है कि यह सुरमाके लिये अन्यायकी बात नहीं भी हो सकती—क्योंकि इस तरहका विद्रोह करनेका उसे अधिकार है। उस समय उसके जीमें यही आया कि चलो, चाहे कुछ भी हो, यदि मुंहसे एक बात कह देनेसे ही सब झंझट मिट जाते हैं, तो इन्हें मिटा ही डालना ठीक है। वह आजतक जिस तरह रहती आयी, वैसी ही अब भी है—मैं उसके अधिकारमें बट्टा लगाना नहीं चाहता और
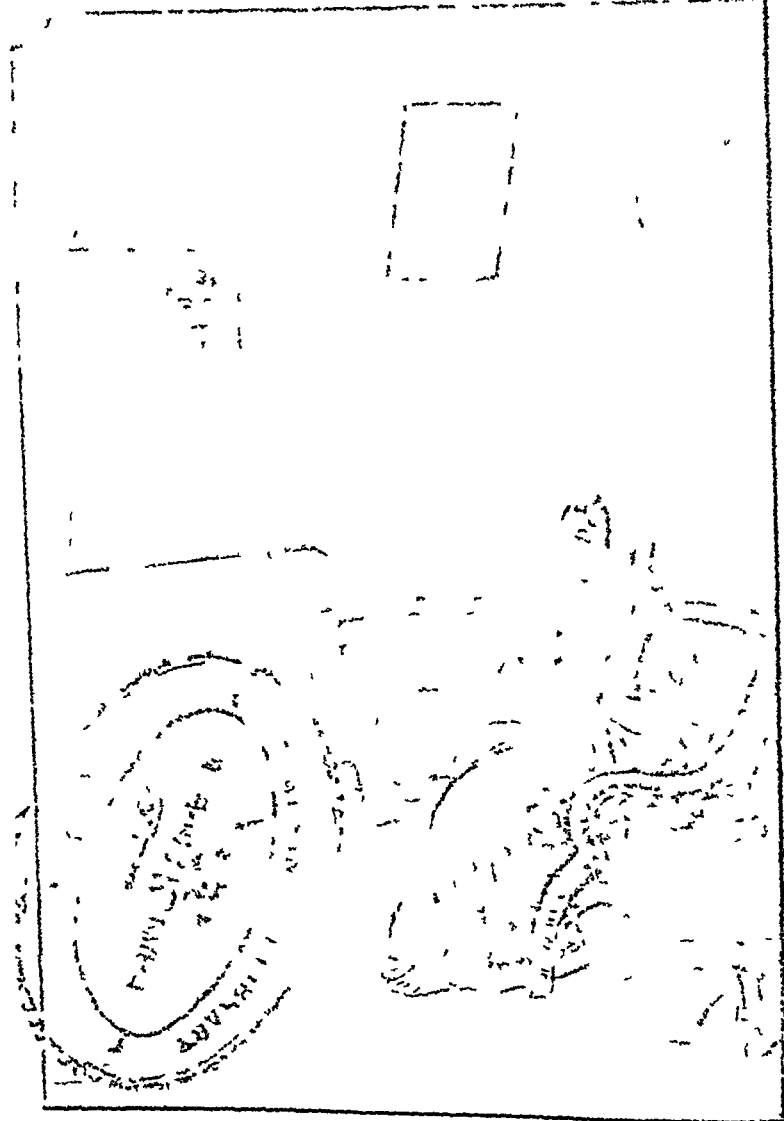
सुरमा एकान्त मनसे खिड़कीके पास बैठी हुई रेशमकी कोई चीज सी रही है। सिर ऊपर उठाके देखा कि सामने ही अमरनाथ हैं। सुरमाने कांपते हाथोंसे रेशमको लकड़ीके सन्दूकमे रख दिया।

न मैंने कभी उसके कामोंमे दख़ल ही दिया है। यदि इतनी-सी बात समझा देनेसे ही यह गोलमाल मिट जाय तो उसे समझा देना ही मेरे लिये उचित है।"

उस दिन वह सुरमाके पास जानेके लिये कमरेके बाहर निकलकर बरामदेमें ही ठिठककर खड़ा हो रहा। एक दुर्निवार सङ्कोचके हाथसे वह अपनेको किसी तरह छुड़ा नहीं सकता था। बड़ी चेष्टासे उसे दूर भी कर सका तो तुरत ही उसके मनमें यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि कैसे बात छेड़ दे?

अपने ही ऊपर थोड़ा झुंझलाकर अमरनाथने अपने मनमे सोचा—"भला मुझे इतना सङ्कोच काहेका है? मैं तो कोई बेजा काम नहीं कर रहा हूं।" ख़याल पैदा होते ही वह यथा-शक्ति स्वाभाविक रीतिसे चलता हुआ सुरमाके घरमें चलो गया। उस समय सुरमा एकान्त मनसे खिड़कीके पास बैठी हुई रेशमकी कोई चीज़ सी रही थी। पैरोंकी आहट सुन, उसने चौंककर सिर ऊपर उठाकर देखा कि सामने ही अमरनाथ है। सुरमाके जीमें यह बात पैदा हुई कि सहसा चकित होकर इस तरह मुंह देखनेसे तो थोड़ी देर इसी तरह चुपचाप बैठा रहना अच्छा था; क्योंकि चार आंखें होनेपर तो चुपचाप नहीं रहा जा सकता —कुछ-न कुछ—आओ या बैठो—न कहना बड़ा बुरा मालूम होता है। अमरनाथ निश्चय ही पहले बात नहीं छेड़ेगा, सुरमाको ही पहले-पहल कुछ कहना या करना पड़ेगा। लाचार इस फन्देमें पड़कर सुरमाने कांपते हाथोंसे रेशमको लकड़ीके सन्दूकमें रख दिया और उठनेका उद्योग किया।

सुरमाको आश्वासन देकर अमरनाथने ही पहले वात छेड़ी, वोला—"मैं तुम्हारे साथ एक वातकी आलोचना करने आया हूं।"

सुरमाने मन-ही-मन कहा—"यह तो मुझे मालूम ही है।" यद्यपि उसने यह वात कह दी, तथापि वह कुछ विस्मित हुई। उसने सोचा, न मालूम ये कौनसी वात कहने आये हैं। सुरमाने स्थिर और अकुण्ठित दृष्टि अमरनाथके चेहरेपर डालते हुए खुले कण्ठसे कहा—"शायद कोई काम-काजकी वात होगी?"

अमरनाथको और एक दिनकी वात याद आयी। इस वातके ढङ्गसे भी अमरनाथका जी जल उठा। सुरमा मानो यही समझती है कि वह हमेशा उससे कामकी ही वातें करने आता है। यह कैसी तानेज़नी है! लेकिन अपने मनकी विरक्ति मनमें ही दवाकर अमरनाथने कहा—"हां, कामकाजकी वात है। वात वड़ी लम्वी-चौड़ी है—जल्दी ख़तम नहीं होगी, इसलिये यदि हमलोग वैठ रहें तो ठीक होगा।" यह कह, उसने एक कुर्सी पास खींच ली और उसीपर वैठ रहा।

सुरमाने सोचा कि अमरनाथ अपने सङ्कोचको दूर करनेके ही लिये इतना उद्योग कर रहा है और व्यवहारको सहज वना डालनेकी चेष्टा कर रहा है। उसके वन्द होंठोंपर हलकी मुस्कराहट खेल गयी। वह भी स्वाभाविक स्वरमें ही वोल उठी, "यदि आप उसे जल्दी ख़तम कर दें तो मेरी ओरसे देरी नहीं होगी।"

क्षणभर चुप रहकर अमरनाथने कहा—"चाचा कहते हैं कि अब तुम घरगृहस्थीकी बिल्कुल देख-भाल नहीं करती—यह क्या ठीक है?"

सुरमा भी थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद अमरकी ओर देखती हुई बोली—"किसने यह बात कही? चाचाने स्वयं कही होगी, ऐसा तो मुझे विश्वास नहीं होता।"

अमरने कुछ झुंझलाहटके साथ कहा—"चाचा कहते हैं यह ठीक नहीं, मैं ही कहता हूं।"

"आप?"

"हां, क्या इसमे कुछ आश्चर्यकी बात है?"

सुरमाने तनिक उत्तेजित कण्ठसे कहा—"आश्चर्यकी बात त ज़रूर है। मैं अब क्या करती हूं और पहले क्या करती थी, यह आप क्या जानें।"

"हां,नही जानता—जाननेकी ज़रूरत भी नहीं थी; लेकिन जब हमें तुम्हारे ही आश्रयमे रहना पड़ा,तब व्यर्थ ही गोलमाल मचाये रखनेसे क्या लाभ? तुम तो जैसे पहले थी, वैसे ही अब भी हो। पिताने तुम्हें सबकी मालिकिन बना रक्खा था—मैं भी तुम्हें वही मानता हूं—मैं न तो तुम्हारी वह प्रधानता छीनने-का अधिकार रखता हूं, न इच्छा। तुम जैसे पहले थी वैसे ही आज भी घरकी मालिकिन बनी हुई घरके और और आदमियोके सुख और स्वच्छन्दताका जैसा ख़याल रखती हो, वैसा ही ख़याल हमारा भी रक्खो और हमें आनन्दसे रहने दो!"

"तो क्या मैं आपके आनन्दमें कुछ बाधा डालती हूं?"

"बाधा नहीं डालती हो सखी, पर सब कामोंपरसे अपनी हुकूमत तुमने क्यों उठा ली है? इसके क्या मानी हैं?"

सुरमा जी-ही-जीमें पेचताव खाने लगी। कोई भयङ्कर बात कह डालनेकी उसकी इच्छा हुई, तोभी उस बातको मनमें ही दबाकर उसने कहा—"क्या हर कामके मानी-मतलब हुआ करते हैं? और अगर हों भी, तो कोई किसीसे कहता थोड़े ही है?"

"ख़ैर, तुम भले ही न कहो; पर मुझे तुमको यह बात समझाकर कह देनी उचित थी, इसीलिये मैंने कह दी। चाचाने मुझसे भी कहा था कि तुम्हें बहूको समझा देना चाहिये।"

"आप मुझे क्या समझाना चाहते हैं?"

अमरनाथ चुप हो रहा। इसके बाद खांसकर गला साफ़ करता हुआ बोला—"तुमने पिताजीके जीवनमें ही इस घरकी गृहिणीका पद ले लिया था, अब तुम उसका क्यों त्याग करती हो? तुम तो जैसे पहले थी, वैसे ही अब भी हो?"

इस बार सुरमा अपनेको न सम्हाल सकी——तोभी उसने धीर कण्ठसे ही कहा—"पर, यदि मैं अपने मनमें समझती होऊं कि मेरा वह पहला पद नहीं रहा, तब?"

"कारणके बिना तो कोई कार्य नहीं होता है। तुम ऐसा क्यों सोचोगी? क्या किसीने तुम्हारा अपमान किया है?"

"नहीं।"

अमरनाथने थोड़ी देर चुप रहनेके बाद हंसते हुए सुरमा-की ओर देखते हुए कहा—"तब ? हमलोगोंने कोई अपराध नहीं किया, यह बात जब तुम स्वयं स्वीकार करती हो तब तुम्हें अपना पहला पद लेनेमें क्या आपत्ति है ? बोलो, लोगी ?"

"नहीं।"

अमरनाथ चुप हो रहा। उत्तर छोटासा होनेपर भी उसकी सुस्पष्टतासे सहसा अपनेको अपमानित समझकर अमरनाथ-के कर्णमूलपर्यन्त सुर्ख़ी छा गयी। वह क्रोध संवरण करनेकी चेष्टा भी न करके बोल उठा—"अच्छा। मेरा इसमें वैसा कुछ स्वार्थ नहीं था। केवल इतना ही स्वार्थ था कि जो जिस पदपर पहले था उसे उसीपर रखना चाहता था। मैं तुम्हें अपनी कोई ग़रज़ सुनाने नहीं आया था। मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया।"

सुरमा ज़रा तानेके साथ बोली—"यह तो मुझे मालूम है। आपके इस निःस्वार्थ कर्त्तव्यके अनुग्रहसे मैं बड़ी सुखी हुई।"

अमरनाथ क्रोधसे पैर पटकता हुआ उस कमरेसे बाहर हो, कुछ देरतक बाग़ीचेमें टहलता रहा। इसके बाद घरके हर एक कमरेमें चिराग़ जलते देख उसे एकाएक होश-सा हो गया। उसने सोचा कि चारु अकेली ही पड़ी होगी, यही सोचकर अन्तःपुरकी ओर चला गया।

ग्यारहवां परिच्छेद

जीजी

अमरनाथके चले जानेपर सुरमा कुछ देरतक वहां चुपचाप खड़ी रही। इसके बाद वह सिलाईका सन्दूक़ खोलकर फिर रेशम और कारपेट लिये हुई खिड़कीके पास इस भावसे आ बैठी, मानों कुछ हुआ ही नहीं।

ख़ूब मन लगाकर सिलाईका काम करनेकी चेष्टा करनेपर भी उसे न जाने कितनी बातें याद आ रही थीं। एक दिन और निर्जन कमरेमें जो बातें हुई थीं वे भी एक-एक करके याद आ रही थीं। उस दिन भी बातचीतके अन्तमें कलह हो हुआ था और आज भी वही हुआ। दोनो स्वामी-स्त्रीमें कुछ अजीब ढङ्गसे ही बातें हुआ करती हैं! रेशमको लेकर ख़ूब कामकाजीपन प्रकट करनेकी चेष्टाको विफल कर, उसके निर्वाक् ओष्ठपर एक प्रकारके निष्ठुर व्यंग्यकी कठिन हंसी चुपचाप खेल गयी। उसने सोचा,—"स्वामी और स्त्री—ठीक-ठीक ही तो है!"

उस दिन स्वामीने जिस तरह उपेक्षाके साथ उसके संग बातें की थीं, वह अच्छी तरह उसके मनमें जाग रही थी। उस दिन वह पहलेसे बिना कुछ जाने विश्वस्त हृदयसे स्वामीके पास जाकर खड़ी हुई थी और स्वामीने उसे उपेक्षाके साथ लौटा दिया था। वह अपमान उसे बहुत दिनोंतक याद रहा।

और आज ? आज वे ख़ुद ही उसके साथ सुलह करने आये थे। उन्हें लाचार हो यह बात माननी पड़ी कि सुरमा इतनी क्षुद्र नहीं है कि यदि कोई उसके अधिकारको न मानेगा तो उसकी कुछ लाभ-हानि न होगी। इस संसारमें सुरमाने भी बहुत कुछ जगह घेर रक्खी है

जिस स्थानको उसने अमरकी उपेक्षाके कारण त्याग दिया है आज अमर उसको स्वयं ही उस स्थानपर बिठाने आया था। यह सोचकर एक प्रकारके विजयानन्दसे सुरमाका हृदय पूर्ण हो गया। उसने अमरकी ओर उपेक्षा दिखलाते हुए उसे अपनासा मुंह लेकर लौट जानेको मजबूर कर दिया। उसने सोचा कि यदि बन पड़ा तो अमरको और भी अधिक उत्पीड़ित, वञ्चित और पराजित करनेसे उसे न जाने कितना आनन्द होगा।

थकावट और जी न लगनेके कारण सुरमाने सिलाईका काम बन्द करके रख दिया और बरामदेमें आ खड़ी हुई। बहुत दिनोंसे केवल कारपेटके ऊपर रेशमकी सिलाईका काम करते-करते उसका अश्रान्त, कर्मरत हृदय, न जाने क्यों, उकता उठा था। लाख चाहनेपर भी, वह अब उस काममें अपना मन नहीं लगा सकती थी। इसीलिये वह अनमनी-सी होकर बाहर चली आयी और बरामदेकी रेलिङ्ग पकड़कर खड़ी रही।

सामने ही उसका सम्पूर्ण अधिकार-भुक्त और मुद्दतोंसे ढर्रे-पर लाई हुई गृहस्थी फैली हुई थी। इधर कई दिनोंसे उसने उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा—न क्षणभरके लिये

इसकी चिन्ता मनमें आने दी। आज अमरके कहनेसे यह देखने-के लिये उसकी आंखें भी वेचैन हो उठीं कि उसके अभावमें उसकी वनी-वनायी गृहस्थी कैसी रद्दी हालतमें पड़ गई है।

सुरमा अंधेरेमें खड़ी-खड़ी दुःख और आनन्दके साथ देखने लगी— चारों ओर गोलमाल और गड़वड़ाध्याय फैला हुआ है। नया भण्डारी, नियमानुसार कुछ चीजें वाहर निकालकर, ताली लिये हुए, न जाने कहां, चला गया है। ईंधनशालाके सामने आंगनमें गांवसे आयी हुई मछलियोंका ढेर लगा हुआ है। दासियोंमेंसे कोई किसीपर विगड़कर कह रही है, "अरी, मछली सड़ी जाती है, उसे वनाएगी या नहीं?" दूसरी भल्ला-कर बोल उठी—"मैं अभी अपनी ही फ़िक्रसे मरी जा रही हूं—मैं मछली वनाने जाऊंगी? मछली वनाकर ही क्या होगा? नये रसोइयाको तो रसोई पकाने ही नहीं आता—उनकी रसोई तो भूत-प्रेत भी नहीं खाना चाहेंगे। वह तो आधी कच्ची और आधी जलाकर रख देंगे। और तेल ही कौन लाकर देगा? जमीन्दारीके जो सब लोग मछली लेकर आये हैं उनके लिये चावल-दाल ही कौन निकाल कर देगा? भण्डारी महाराज तो न जाने किस चूल्हेभाड़में जा पड़े।"

तीसरी दासीने कहा—"न मालूम कहां कौनसा तमाशा हो रहा है, वही देखनेके लिये रातकी तरह इस समय भी चला गया है।"

इसी समय वाहरसे साईसने आवाज़ दी—"भण्डारीजी!

कई रोज़से दाना कम मिल रहा है, और पांच सेर दाना चाहिये।"

एक दासीने चिल्लाकर कहा—"अरे, वह तो मर गया! भण्डारी यहां कहां है? जाओ, खोजो, यहां तो वह नहीं है। तुम सबको भी दाना चुरानेका मौका मिल गया है, क्यों?"

साईसने कहा—"हां, हां, हमलोग दाना चुराते हैं, तुम पूजा-पर बैठी माला फेरती हो! क्या तमाशा है! हर रोज़ ऐसा ही होता है।" यही बड़बड़ाता हुआ चला गया।

ख़ानसामा रामचरण इसी समय वहां पहुचकर गर्जनके साथ-साथ आंख-मुंह मटकाता हुआ बोला—"ये औरतें केवल गाल बजाना जानती हैं! बाहर बाबूजी और दीवानजी मेरे ऊपर कितने नाराज़ होते हैं, इन्हें इसकी कुछ फ़िक्र ही नहीं है। अरी, तुम सब ऊपरके कमरोंमे झाड़-बुहार क्यो नही करतीं?"

यह सुनते ही दासियां एक साथ ही चिल्लाकर बोल उठी-"अरे, जा, जा, बड़ा आया है कल्लेदराजी करने। यहां नीचेका ही काम करते-करते हमें दम मारनेकी फ़ुरसत नहीं मिलती। बामा और क्षान्त ही तो ऊपरका काम करती थीं।"

"उन दोनोको तो तुम्हीं लोगोंने लड़-झगड़कर निकाल बाहर कर दिया। नयी दाईको क्यों नहीं सब काम बतला देतीं। ऊपर छोटी मांजी हैं, इसीलिये तो मैं नहीं जा सकता। तुम सब काम तो कुछ करोगी नहीं, केवल झगड़ा करोगी।"

"हां, हां, तुम्हीं बड़े कामकाजी हो। बामाको मैंने निकाल बाहर किया है? झगड़ा तो वह ख़ुद करती थी और

बदनामी हमारी रही ! लो, मैं अभी चली जाती हूं। इतना नाक-भौं किसपर सिकोड़ते हो ? जिस घरमें इनसाफ़ नहीं, मालिक मालिकिन नहीं, उस घरमें भला कोई कितने दिन टिक सकता है ?"

"अरी, चल री रांड़, तेरी जैसी बावन गंडे दासियां पड़ी हैं। भण्डारी-चाचाने तो बड़ा मज़ा किया। देखता हूं कि गुमाश्ताजीको बुलवाकर ताला तुड़वाना पड़ेगा। नहीं तो सब लोग भूखों थोड़े ही मरेंगे ? बाप रे बाप ! मुझसे तो अब नहीं रहा जाता ?"

सुरमा बरामदेसे टल गयी। उसने सोचा कि अमरनाथ स्वयं अपनी आखों यह मामला देख ले, तो बड़ा मज़ा हो। जिसको कुढ़ानेके लिये इतनी तैयारी की गयी, वह यदि सामने ही खड़ा होकर यह सब न देख सका तो फिर इतनी तैयारी बेकार ही गयी। व्यर्थकी चेष्टा तो अपनेहीको जलाने लगती है !

उस समय रात हो गयी थी। अस्पष्ट अन्धकारमे बरामदे· में खड़ी-खड़ी सुरमा थोड़ी देरतक न जाने क्या सोचती रही। इसके बाद वह धीरे-धीरे वहांसे हटी। उसने देखा कि सामने ही अमरनाथके सोनेके कमरेके दरवाजेपर न जाने कौन खड़ा है। धुंधली रोशनीमें भी सुरमाने उसे पहचान लिया। वह चारु थी। उसे देखते ही चारु उसकी ओर आती हुई मालूम पड़ी। यह देखते ही सुरमा इस तरहसे लौट पड़ी मानो उसे कोई काम याद आ गया हो और अपने कमरेमें चली आयी।

उसे ऐसा मालूम पड़ा मानों चारु उसका तिरस्कार करने ही आ रही थी, इसीलिये वह पीछे फिरकर देख भी न सकी।

सामने दोतल्लेपर चढ़नेके लिये ज़ीना बना हुआ था। न जाने कौन ज़ीनापर चढ़ते-चढ़ते अंधेरेमें ठोकर खाकर विरक्ति-पूर्ण स्वरमें बोला—"ओह!" सुरमा समझ गयी कि अमरनाथ है। कांपते हुए पैरोंके साथ सुरमा एक दूसरे कमरेमे चली गयी। इसके बाद उसने सुना कि अमरनाथ लाचार होकर कुछ देर चुप रहनेके बाद ज़ोर-ज़ोरसे 'रामचरण', 'रामचरण' कह कर पुकार रहा है। बहुत देरतक आवाज़ लगानेके बाद जब नौकरने आकर रोशनी दिखायी तब अमरनाथ अपने कमरेकी ओर चला गया। उसके बाद बड़ी देरतक रामचरणका नयी दासीके साथ बकवाद करना और कहां-कौनसी रोशनी जलानी होगी, यह बतलाना सुनाई देता रहा। कुछ देर बाद जब नयी दासीने रोशनी लिये हुए आकर सुरमाके दरवाज़ेको खटखटाना शुरू किया, तब लाचार हो, सुरमाको उसे यही उत्तर देना पड़ा कि आज मुझे रोशनीकी कोई ज़रूरत नहीं है।

सवेरे जब सुरमाकी नींद टूटी, उस समय सूर्यकी उज्ज्वल किरणें शीशे लगी हुई खिड़कीकी राहसे उसके कमरेके अन्दर आकर उसकी तुरन्त ही खुली हुई आँखोंको झुलसाने लगीं। सदाकी तरह सुरमा चौंककर शय्यापर उठ बैठी और बोली—"ओह! इतना दिन चढ़ आया।" इसके बाद उसने सोचा

इस समय दिनका होना-न-होना उसके लिये बराबर ही है। उसने अपने आप ही अपनेको इस अलसताके भीतर डुबो रक्खा है और इस घरके अन्दर सेज़ार हो अपनेको आबद्ध कर रक्खा है, नहीं तो अबतक उसके दरवाज़ेपर न जाने कितनी बार खट-खटाहट होती। सुरमा कुछ देरतक चुपचाप शय्यापर बैठी रही। यह कर्महीन—कर्त्तव्यहीन प्रभात उसे बड़ा ही आनन्दहीन प्रतीत हुआ।

कमरेसे बाहर बरामदेमें आकर सुरमा अनमनी-सी होकर एक खम्भेपर नाखूनसे निशान करने लगी। वह सोच रही थी कि इस तरहकी कर्महीन अलसताके साथ तो उसका जीवन व्यतीत होगा ही नहीं—उसे कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा, पर कैसे वह इसका पुनः आरम्भ करे और कौनसा काम करे, यह उसकी समझमें नहीं आता था। नीचेकी ओर नज़र करने-पर उसने देखा कि दासियोंका अभी-अभी सवेरा हुआ है—अभीतक कोई जम्हाई ले रही है, कोई आंखें मल रही है, कोई टांग पसारे रातको मच्छड़ोंके उपद्रवके मारे नींद नहीं आनेकी शिकायत कर रही है। अभी तो उसकी नींद खुली है—तमाम काम करनेको पड़े हैं। बड़ी झुंझलाहटके साथ सुरमाने रेलिङ्गसे मुंह बाहर निकालकर ज़रा ऊंचे स्वरसे पुकारा—"बिन्दो!" यह सुनते ही दासियोंमें हलचल-सी मच गयी और सब अपने-अपने काममें लग गयीं। बिन्दोने डरके मारे ऊपर देखते हुए कहा—"क्या हुक्म है, मांजी! ऊपर आऊं क्या?"

"तुम सबको क्या हो गया है? इतना दिन चढ़ आया—" सुरमा बात पूरी भी न करने पायी थी कि पीछेसे किसीके पैरोंकी आहट सुन, चौंककर देखने लगी। उसने देखा कि अमरनाथ है। लज्जाके मारे सुरमाको दीवारमें सट जानेकी इच्छा होने लगी—राम! राम! अमरनाथने तो आज उसकी यह दुर्बलता देख ली!

अमरनाथ बिना कुछ बोलचाल किये जिस तरहसे आया था उसी तरह चुपचाप नीचे चला गया तथापि उसके आगे अपनी कमज़ोरी प्रकट हो जानेकी लज्जाके हाथोंसे अपनेको छुड़ानेके लिये वह चंचल चरणोंसे इधरसे-उधर घूमती हुई सोचने लगी कि अब कैसे अमरनाथके सामने अपनी यह लज्जा दूर कर सकूंगी।

सामने ही अमरनाथके सोनेवाले कमरेका दरवाज़ा खुला पड़ा था। उसने देखा कि न जाने कौन पलंगपर सोया हुआ है। सुरमा ठिठककर खड़ी हो गयी। उसने सोचा, चारु सोयी होगी। वह चुपचाप लौट जाना चाहती थी, इसी समय उसने देखा कि बड़ी मुश्किलसे करवट बदलते हुए चारुने लम्बी सांस लेकर कहा—"मा, आ।" सुरमाके पैर चलते-चलते एकाएक रुक गये। उसके मनने उससे धीरे-धीरे कहा—"मालूम होता है, उसकी तबीयत ख़राब है। उसे देखना क्या मेरे लिये उचित नहीं है? उसके तो स्वामी हैं ही, उनसे बढ़कर उसकी देखभाल और कौन करेगा? मैं देखकर और क्या

करूंगी ? इससे तो अच्छा है कि चलकर अपना काम देखूं । लेकिन इस समय मेरे हाथमें काम ही कौनसा है ? अभी तो स्वामी चले गये हैं— उनके चेहरेसे किसी तरहकी घबराहट नहीं मालूम पड़ी। क्या उन्हें मालूम नहीं है ? नहीं, नहीं— चलकर देख ही आऊँ ।"

सुरमा धीरे-धीरे पैर रखती हुई कमरेके अन्दर जाकर पलङ्ग-के पास खड़ी हो रही। उसने देखा कि चारु आँखें बन्द किये पड़ी है। उसका चेहरा सूखा हुआ है, उसपर उदासी बरस रही है। दुःखका चिह्न उसके छुद्र ललाटपर प्रगट हो रहा है और आँखोंके चारों ओर काला दाग़-सा पड़ गया है। उसके रूखे और बिखरे हुए बाल चारों ओर फैले हुए हैं। मुखड़ा ठीक छोटे बच्चेकी तरह मालूम पड़ता है—देखते ही माया उपजती है, प्यार करनेकी इच्छा होती है। सुरमा नीचे नज़र किये उसके मुंहकी ओर 'देखती हुई सोच रही थी—"अहा, बेचारी बीमार है ?"

अबकी फिर चारुने भौंहें सिकोड़कर कहा—"अरी मैया री, मैया री ?" साथ ही उसके ललाटपर किसीके हाथका शीतल स्पर्श हुआ। उस स्निग्ध स्पर्शसे चकित होकर चारुने आँख खोलकर देखा कि पास ही सुरमा खड़ी है। सिरके दर्दसे छटपटाती हुई चारु अबतक मन-ही-मन अपनी माँको याद कर रही थी। आँखें मलते-मलते सुरमाको देखकर पहले उसे अपनी माँका ही धोखा हुआ। इसके बाद जब उसने अच्छी तरह

सुरमा यू-डि-कलोनकी एक शीशी और थोड़ी सी रूई हाथमें लिये हुए घरके अन्दर आई और चारुके पास आकर हंसते हुए उसके गालमें धीरेसे चुटकी भरी। (पृ॰ [illegible])

आँखें मलकर देखा तो माँकी ही तरह स्नेह और करुणा-भरी दृष्टिसे देखती हुई एक स्त्री उसके सिरपर हाथ फेरती हुई नज़र आयी। "जीजी" कहकर चारु उठ बैठी और सुरमाका हाथ पकड़कर उसे पास बैठानेकी चेष्टा करने लगी। यह देखते ही सुरमा उसके पास बैठ रही। तब चारु और भी उसके निकट चली आयी और उसके कन्धेपर सिर रखकर बोली—"जीजी!"
सुरमाके जीमें न जाने कैसा होने लगा। यदि कोई आत्मसमर्पण-कारी निरुपाय शिशु करुणा-भरे नेत्रोंसे अपनी ओर देखता हुआ धीरे-धीरे पास आ जाय, तो उस समय स्नेहके आवेगके मारे उसे ज़ोरसे अपनी ओर खींचकर कलेजेसे लगा लेनेकी इच्छा होती है। चारुका यह बच्चोंका-सा व्यवहार देखकर सुरमाका हृदय भी उसी तरह आन्दोलित हो उठा। उस उच्छ्वासको मन-ही-मन दबाकर सुरमाने चारुका सिर अपनी गोदमें लेकर उसे शय्यापर सुला दिया। इसके बाद धीरे-धीरे उसके ललाटपर हाथ फेरती हुई मीठे स्वरसे बोली—"ऐं! इतने ज़ोरका बुखार है? तुम्हारा सिर दुखता है क्या?"

चारुने कातर नेत्रोंसे देखते हुए कहा—"हाँ, बड़े ज़ोरसे?"

सुरमा धीरे-धीरे उसका सिर दबाती हुई बोली,—"कुछ अच्छा मालूम होता है?"

"ओह! बड़ा अच्छा मालूम होता है, जीजी! तुम्हारा हाथ खूब ठण्डा मालूम होता है।"

कुछ देर चुप रहनेके बाद सुरमाने चारुकी ठुड्डी पकड़कर

स्नेह-भरे कण्ठसे कहा—"कबसे तुम्हारी तबीयत ख़राब है, चारु ?"

"आज ही रातको ज्वर हुआ है । कल दोपहरसे ही सिरमें बड़े ज़ोरका दर्द था ।"

"दर्द था, तो मेरे पास क्यों नही चली आयी ? मुझे पुकारा क्यों नहीं ?"

"शामको जब तुम दालानमें खड़ी थीं, तब मैं तुम्हारे ही पास आ रही थी । तुमने मुझे नहीं देखा और तुरत ही चली गयी ।"

अनुतापके आवेगसे सुरमाने कहा—"मैंने तुम्हें देखा क्यों नहीं ? देखकर भी चली गयी थी । मैं उस समय एकबारगी—" कहते-कहते सुरमा यकायक रुक गयी ।

"तुम्हें क्या मालूम था कि मैं बीमार हूं ? नहीं तो बिना मुझे देखे कैसे चली जातीं ? हरगिज़ नहीं जा सकती थीं ।"

सुरमाने मन-ही-मन सोचा—"इसका तो मुझे वैसा विश्वास नहीं है । बड़े भाग्यसे उस समय,—गुस्सेमें—चारु पास नहीं आयी, नहीं तो मैं न जाने क्या कह बैठती !"

सुरमाका हाथ अपने सिरपर ले जाकर चारुने कहा—"ओह ! बड़ा ठण्डा मालूम होता है ।"

"चारु ! क्या अभीतक तुम्हारे सिरमें दर्द है ?"

"हां, जीजी !"

"थोड़ा-सा यू-डि-कलोन लगानेसे अच्छा होगा—" यह

कहती हुई वह उठकर, खड़ी हो गयी। मेज़ और आलमारीपर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अन्तमे ग्लास-केसपर नज़र डालती हुई विरक्ति-भरे स्वरमें बोली—"एं! शीशी क्या हुई? आलमारीमें और मेज़पर भी ३।४ शीशियां पड़ी रहती थीं।"

चारुने थोड़ा-सा सिर ऊपर उठाकर धीमी आवाज़में कहा—"बीच-बीचमे सिरमे दर्द हुआ करता है, इसीसे मालूम होता है कि कुछ शीशियां ख़र्च हो गयीं।"

"बीच-बीचमें किसके सिरमें दर्द हुआ करता है?"

सेजमें मुँह छिपाये हुए चारु धीरेसे बोली—"उन्हीके।"

"ख़र्च हो गयीं तो क्या हुआ? और मंगवा लेते। क्या फिर कभी ज़रूरत नहीं पड़ती? बड़े होशियार आदमी मालूम पड़ते हैं! ख़ैर, दवा चुक गयी, तो क्या शीशियां भी उड़ गयीं?"

"कहीं सन्दूकके आसपास पड़ी होगी।"

"अच्छा, इस समय तो यू—डि—कलोन चाहिये-ही। बिन्दी-को बुलाकर कहती हूं।"

"नहीं, जीजी! तुम मत जाओ। तुम्हारे ठण्डे हाथोंके सह-लानेसे ही दर्द छूट जायगा। तुम मत जाओ।"

"पागल हो गयी हो क्या! उठो मत। मैं अभी आती हूं।" यह कह, सुरमा चली गयी। थोड़ी ही देरमें यू-डि-कलोनकी एक शीशी और थोड़ी-सी रूई हाथमें लिये हुए वह घरके अन्दर आयी। उसने देखा, कि आशा-भरे नेत्रोंसे चारु दरवा-ज़ेकी ओर देख रही है। सुरमाने उसके पास आकर प्यारके साथ

उसके गालमें धीरेसे चुटकी भरी। मारे आनन्दके हंसती हुई चारु बोली—"मुझे तो डर हो रहा था कि तुम आओगी ही नहीं।"

इसका कोई जवाब दिये बिना ही सुरमाने कहा—"कांचका कोई गिलास या कटोरी तो कहीं दिखाई ही नहीं देती। पहले जिस तरहसे सब चीज़ें यथा-स्थान रखी रहती थीं,इस समय वैसी ही उलट-पुलट हो रही हैं। आलमारीकी ताली कहा है?"

"ताली! मुझे नही मालूम, जीजी! शायद बिछावनके नीचे—"

"अच्छा, तुम उसकी फ़िक्र छोड़ दो, मैं ख़ुद खोज लूंगी।"

सुरमाने शय्याके चारों ओर ढूंढ़ा-खोजा; पर ताली नहीं मिली। इससे वह बहुत झुंझला उठी। उसकी सारी झुंझलाहट अमरनाथपर ही थी। उसने सोचा,—"मनुष्यमें इतनी लापरवाही कैसे आ जाती है?" सहसा अपनी बात भी उसे याद नहीं आयी हो, ऐसा नहीं है। उसने तुरत-ही सोचा कि मनुष्यका मन विक्षिप्त होनेपर वह चाहे कैसा ही कार्य्य-कुशल क्यों न हो, ऐसा ही निकम्मा हो जाता है।

सिरमें यू-डि-कलोन लगाना ख़तम होनेपर चारुका सिर तकियेपर रखकर, धीरे-धीरे हवा करते हुए सुरमाने कहा—"अच्छा, अब थोड़ी देर सो रहो, मैं डाक्टरको बुलवाती हूं। वह दवा दे देगा। बस, तुरत ही बुख़ार उतर जायेगा।"

"लेकिन, दीदी! मुझसे कड़वी दवा नहीं पी जायेगी। नरेश डाक्टरकी दवाएं बड़ी कड़वी होती हैं।"

"यह नरेश डाक्टर शायद कलकत्तेका है। यहांके कालीपद डाक्टर होम्योपैथिक दवा करते हैं। यह दवा खानेमें ठीक पानीसी मालूम पड़ती है। अच्छा, तुम ज़रा सो रहो।"

जीजीके कहे अनुसार चारुने सोनेकी चेष्टा की। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद बोली—"नहीं, जीजी! मुझे नींद नहीं आती। इससे तो यही अच्छा है कि हमलोग बातें करें।"

"इस समय बातें करना ठीक नहीं। ख़ैर, यह तो बतलाओ, उन्हें यह मालूम है या नहीं कि तुम्हें ज्वर लगा है?"

"शायद वे नहीं जानते; क्योंकि बड़ी रात बीतनेपर ज्वर हुआ था।"

"सवेरे उठनेके समय भी उन्होने नहीं जाना?"

"उस समय मैं सो रही थी।"

"सिरमें दर्द तो कल दोपहरसे ही था। क्या इसकी भी ख़बर नहीं है?"

"शायद दर्दकी बात वे जानते हैं। हां, हां, कल तीसरे पहर मैंने ही उनके पूछनेपर दर्दकी बात कही थी।"

"इसपर भी उन्होंने कुछ खोज-ख़बर नहीं ली! क्या कलकत्तेमें भी तुम दोनों इसी तरह दिन काट रहे थे? वहां बीमार पड़नेपर कौन देख-भाल करता था?"

"तारिणी-भैया थे। वे ही बीमारी बढ़नेपर देखते-भालते थे।"

"ख़ैर, ज्यादा बक-बक करनेका काम नहीं है। तुम थोड़ी देर सो रहो।"

चारु चुप हो रही और धीरे-धीरे सो गयी। कुछ देर बाद बरामदेमे किसीके पैरोंकी आहट सुनाई दी। सुरमा समझ गयी कि अमरनाथ आ रहा है। वह घबरायी हुई पलंगसे उठी और बग़लका दरवाज़ा खोलकर दूसरे कमरेमें चली गयी। अमरनाथ न जाने किस कामके लिये घरमें आया था। उसने आते ही देखा कि चारु पलंगपर सोयी हुई है। इस तरह उसे बेवक़् सोयी हुई देखकर अमरनाथने धीरे-धीरे आकर उसके सिरपर हाथ रक्खा। इसी समय एक दासीने आकर ख़बर दी कि डाक्टर साहब आये हैं। अमरनाथ बड़ी सावधानीसे पैर रखता हुआ जल्दीसे बाहर आया और डाक्टरको अपने साथ लिवा लाया। डाक्टरने चारुकी नाड़ी देख, मुलायम स्वरसे पूछा—"कब बुख़ार हुआ था ?"

अमरनाथ बग़लमें झांकने लगा। थोड़ी देर बाद बोला—"ठीक नहीं कह सकता—शायद कल हुआ है। क्या पुकारकर पूछूं ?"

"नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं है। मामूली ही बुख़ार है; पर ज़रा तेज़ है। घबरानेकी कोई बात नहीं है। मैं इस समय चलता हूं। दो-चार ख़ुराक दवा खाते ही बुख़ार उतर जायेगा; किन्तु देखिये, दवा नियम-पूर्वक खिलानी होगी।"

डाक्टरसाहब चले गये। थोड़ी ही देरमें चारुकी भी नींद टूट गयी। उसने आंख खोलते ही पुकारा—"जीजी !"

अमरनाथने बड़े प्यारसे उसके ललाटपर हाथ फेरते हुए कहा—"इतना ज्वर तुम्हें कब हो आया ?"

"ऐं! आप हैं? आप कब आये? जीजी कहां गयीं?"

"जीजी!"

अमरनाथने अकबकाकर पूछा—"किसे पुकार रही हो? फिर सो जाओ। तुम्हें इतना ज्वर हो आया है, यह तो तुमने मुझसे सवेरे नहीं कहा?"

"उस समय मैं सोयी हुई थी। मुझे कल रातको बुख़ार हो आया था। आपसे किसने कहा?"

"मैंने तुम्हें इस तरह असमयमें ही सोते देखकर तुम्हारी देहपर हाथ रक्खा तो उसे बहुत ही गरम पाया। इतनेमें डाक्टर साहब आये। चारु! तुमने डाक्टरको बुलवाते समय भी मुझे क्यों नहीं ख़बर दी?"

चारुने विस्मित भावसे कहा—"वाह! मैंने कब डाक्टरको बुलवाया?"

"तुमने नहीं बुलवाया? तब किसने बुलवाया? शायद किसी दासीने ही इतनी अक़्ल ख़र्च करके डाक्टरको बुलवाया है। चारु! तुम्हें मुझसे सवेरे ही ज्वरकी बात कह देनी चाहिये थी।"

चारुने झुंझलाकर कहा—"मैं किससे कहकर आपको बुलवाती? जीजी बार-बार मुझे सोनेको कहती रहीं—"

बात काटकर अमरने कहा—"कौन जीजी? तुम बार-बार किसे बुला रही थी?"

चारुने अचम्भेमें आकर कहा—"जीजी और कौन? मेरी जीजी। वे अभी तो यहीं थीं।"

अबकी अमरनाथ समझ गया। उसने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—"कहां? यहां तो कोई नहीं था—तुम तो अकेली ही सो रही थी!"

"तब शायद आपके आनेके पहले ही वे चली गयीं।"

"तुमने सपना देखा होगा। सिरमें दर्द भी है? शायद यू-डि-कलोन लगाये हुई हो?"

"अब तो दर्द बहुत कम हो गया है—नहींके बराबर है। आप कहते हैं कि यहां जीजी नही थीं, मैंने सपना देखा है। यह देखिये, उन्होंने तो यह दवा लगा दी है, कितनी देरतक पङ्खा झलती रही हैं। तब कहीं जाकर दर्द कम हुआ है। नहीं, तो ऐसा दर्द था—ओह!"

उधर दूसरे कमरेमें सुरमा चारुके ऊपर बेतरह नाराज़ हो रही थी। वह सोचती थी—"चारु तो बड़ी अजीब तरहकी औरत है! पगली है क्या? ओह! मैं ही उसे मना करना भूल गयी!"

अमरनाथने कहा—"ख़ैर होगा। तुम थोड़ी देर और सो रहो।"

बारहवां परिच्छेद
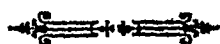
चारुका अल्हड़पन

उस दिन सुरमा फिर चारुके पास नहीं आयी। तीसरे पहर चारुने घबड़ाकर स्वामीसे कहा—"क्यों, दिन-भर जीजी यहां नहीं आयीं ? आप एक बार उन्हें बुलवाइये तो सही ?"

"क्यों चारु ? क्या तुम्हें कुछ तकलीफ़ मालूम होती है ? मैं तो आज सारे दिन बाहर नहीं गया—यहीं पड़ा रहा। क्या चाहिये, कहो न ?"

चारुने झेंपकर कहा—"नहीं, वह बात नहीं है। मुझे किसी चीज़की ज़रूरत नहीं है।"

"क्या कोई किताब पढ़नेको चाहिये ?"

"नहीं, आप योंही बैठे-बैठे बातें करते रहिये।"

रातको चारुका ज्वर उतर गया। सारी रात वह बड़े आरामसे सोती रही। सवेरे ही अमरनाथने कहा,—"अब और तो किसी तरहकी तकलीफ़ नहीं है ? पड़ी-पड़ी यही किताब पढ़ती रहो। मैं बाहर जाता हूं। दश बजे आकर और एक गोली दूंगा। कुछ तकलीफ़ हो तो मुझे बुलवा लेना।"

चारुने अभिमानके साथ कहा—"मैंने क्या आपको कल दिनभर पकड़ रक्खा था ? बाहर जाते क्यों नहीं ? मैंने तो बुलाया भी नहीं था।"

चारुके अभिमानसे फड़कते हुए गालपर मीठी चुटकी भरकर अमरनाथ चला गया। चारुसे जबतक पड़े-पड़े किताब पढ़ते बना, तबतक वह पढ़ती रही। रह-रहकर वह चौंकी हुई दृष्टिसे दरवाज़ेकी ओर भी देख लेती थी कि कहीं कोई आता तो नहीं है।

बड़ी देरतक किताब पढ़ते-पढ़ते उसका सिर दुखने लगा। तब किताब नीचे रखकर वह चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगी। पासमें कोई नहीं है,यह देख उसने ऊंचे स्वरसे एक बार पुकारा- "जीजी!" लेकिन कोई नहीं आया। अभिमानके मारे चारुकी आंखोंमें आंसू भर आये।

दासी बिन्दीने कमरेमें प्रवेशकर कहा—"क्यों छोटी बहू! क्या तुमने पुकारा है? क्या थाली ले आऊं?" चारुको इस बातपर ज़रा अचम्भा हुआ; क्योंकि इतने दिनोंतक दासियोंकी कर्त्तव्य-बुद्धिको उसने कभी इस तरह जगते नहीं देखा था। वह बोली—"मैं थाली नहीं खाऊंगी।"

"नहीं खाओगी? यह क्यों? नहीं कैसे खाओगी? मैं लेने जाती हूं।"

"नही, मैं नहीं खाऊंगी। तुम जाओ, मेरे पास किसीके आनेका काम नहीं है।"

लज्जित और क्रोधित-सी होकर दासी चली गयी। चारुने फिर किताब पढ़नेको उठा ली; पर पढ़ न सकी, क्योंकि सिरमें दर्द पैदा हो रहा था। एक हाथसे सिर थामे, दूसरे हाथमें

किताब लिये हुए वह उसे पढ़नेकी चेष्टा करने लगी, क्योंकि उससे अकेले नहीं रहा जाता था। "सिरमें दर्द है, तोभी किताबकी पढ़ाई जारी है?" एकाएक उपर्युक्त शब्द उसके कानोंमें पड़े। उसने चौंककर सिर ऊपर उठाकर देखा कि घरके बीचोबीच, हाथमें बार्लीका डिब्बा लिये, प्रसन्नता-भरी हंसी हंसती हुई सुन्दरी सुरमा खड़ी है। उसे देखते ही चारुका अभिमान मानों बेतरह बढ़ गया। उसने किताबको दोनों हाथोंसे पकड़कर उसीकी आड़में अपना मुंह छिपा-सा लिया।

"फिर भी किताब पढ़ रही हो? उसे रख दो। इसीसे और भी सिरमें दर्द हो रहा है।"

चारु पहले-हीकी तरह मुंह छिपाये रही। सुरमा मामला समझ गयी और उसके पास आ, किताब छीनकर बोली—"क्यों? क्या नाराज़ हो? थोड़ी-सी बार्ली खा लो।"

"नहीं—मैं नहीं खाऊंगी।"

"जाने दो, अब क्रोधका कुछ काम नहीं है। उठो, बार्ली ठण्डी हो जायेगी। उठो—"

चारु उठ बैठी और अच्छी-भली लड़कीकी तरह सुरमाकी आज्ञाका पालन करने लगी। उसके मुंहका पानी पोंछते हुए सुरमाने उसकी ओर और प्यारसे मुस्कुराते हुए कहा—"तुम इतनी नाराज़ क्यों थी? मामला क्या है?" चारु मुंह फुलाये रही।

"न बतलाओगी?"

"कल दिन-भर तुम क्यों नहीं आयीं ?"

"ओह, इसीलिये ? मैं तो समझती थी कि कुछ और बात है।"

सुरमाको उपेक्षाकी हंसी हंसते देखकर चारुका अभिमान और भी बढ़ गया। देखते-देखते उसकी बड़ी-बड़ी आंखोंमें आंसू छलछला आये और झर-झर करके टपकने लगे। सुरमाने दोनों हाथोंसे उसका मुंह ऊपर उठाये हुए विस्मित और व्यथित कण्ठसे कहा—"ऐं! चारु! तुम क्या सचमुच रो रही हो ?"

चारु मुंह फेरकर आंखें पोंछने लगी। विस्मयमें ही कई मुहूर्त्त बीत जानेपर सुरमा बड़े ज़ोरसे सांस खींचकर पलङ्गपर ही चारुके बग़लमें जा बैठी। वह अनमनी-सी बैठी, अपनी बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखोंसे खिड़कीको ओर देखती हुई, न जाने क्या-क्या सोचती रही, यह तो वही बतला-सकती है। एक बार उसने धीरेसे कहा—"लेकिन ऐसा न तो कभी देखा है, न सोचती थी।"

इसी तरह बड़ी देर हो गयी कोई किसीसे नहीं बोली। चारुने कई बार आंखें फेरकर देखा कि सुरमा गम्भीर और मलिन मुंह बनाये खिड़कीके बाहर नज़र दौड़ा रही है। उसने सोचा कि जीजी अवश्य ही नाराज़ हो गयी हैं। उसने धीरे-धीरे पास आकर मृदुकण्ठसे कहा—" जीजी !"

अन्यमनस्क भावसे लम्बी सांस लेकर सुरमाने उत्तर दिया-"क्यों ? क्या है ?"

"क्यों जीजी ! क्या तुम ग़ुस्सा हो गयीं ?"

सुरमाने मुंह फेर, उसकी ओर अपनी सलोनी आंखोंसे देखते हुए कहा—"क्यों नहीं गुस्सा हूंगी ? क्या तुम्हें मेरा इस तरह अपमान करना चाहिये ? क्या तुम्हें कुछ समझना-बूझना नहीं चाहिये। तुम्हारा यह कैसा लड़कपन है ?—यह कैसा खिल-वाड़ है ? मैं तुम्हारा कौन हूं, यह क्या तुम नहीं जानती ? मुझे—"

एकाएक सुरमाकी जोशीली आवाज़ धीमी पड़ गयी। उसने देखा कि चारुकी मलिन मुखश्री एकदम पीली पड़ गयी है। भीत और दुर्बल चारु एक हाथसे खाटकी पाटी पकड़े, दूसरे हाथसे सुरमाके कन्धेपर टेक दिये, उसका मुंह देखती हुई थर-थर कांप रही है। मुहूर्त्त-भरमें सुरमाने उसे पकड़कर सुला दिया। हाथमें पङ्खा ले हवा करती हुई डरती-डरती बोली—"चारु ! मेरी प्यारी बहन !"

चारुने धीरे-धीरे अपनेको सम्हाल लिया। आंखें बन्द किये ही बोली —"जीजी !"

"मैं बड़ी बदज़ात हूं। जाने दो,अब मैं न बोलूंगी—तुम्हें एक बात भी न कहूंगी।"

नन्हीं-सी लड़कीकी तरह रोती हुई चारु बोली—"तुम क्यों गुस्सा हो गयीं, जीजी ? मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।"

चारुकी आंखें पोंछती हुई सुरमा रुंधे - गलेसे बोली—"चुप रहो, चुप रहो मेरी बहन ! तुम्हारा अपराध कैसा ? अपराध

तो तुम्हारे पास भी नही फटकने पाता। अपराध मेरा ही है—और किसको दोष दूं? नहीं तो तुम्हारे साथ मेरा ऐसा सम्बन्ध क्यों हुआ?"

"कैसा सम्बन्ध, जीजी?"

"कुछ भी नही—तुम थोड़ी देर सो रहो।"

"सो रहनेपर तुम भाग तो न जाओगी?"

"नही। मैं देखती हूं, कि मुझे तुम्हारे साथ कुछ दिन रहनेकी ज़रूरत है। तुम्हारे पास रहते-रहते मेरे मनकी यह कालौंछ भी शायद धुल जायेगी। जबतक ऐसा नहीं होता तबतक मैं तुमसे एक बात कहती हूं, उसे मानकर चलो, तो मैं सदा तुम्हारे ही पास रहा करूंगी। बोलो, मानोगी?"

"हां, मानूंगी?"

"ज़रूर?"

"हां, ज़रूर।"

सुरमा ज़रा ठहरकर अपनेको सम्हालती हुई बोली—"तुम कभी स्वामी—अपने स्वामीसे मेरे बारेमें कोई बात नहीं कर सकोगी।"

"तुम्हारे बारेमे कौन-कौनसी बात नहीं कर सकूंगी?"

"चाहे कोई बात हो, जिससे मेरा लगाव हो, उस बातको उनसे न कहना। जैसे,मैं तुम्हारे साथ क्या-क्या बातें करती हूं, कैसा व्यवहार करती हू, कब तुम्हारे पास आती हूं अथवा तुम्ही कब मेरे पास आतो हो—ऐसी-ऐसी बातें उन्हें हरगिज़ न बतलाना।"

चारु बड़े अचम्भेके साथ बोली, "क्यों जीजी ?"

"चाहे किसी कारणसे हो; पर बोलो, तुम मेरी यह बात मानोगी या नहीं ।"

बड़ी लाचारीके साथ चारुने धीरेसे कहा—"अच्छा ।" इसके बाद ज़रा सोचकर बोली—"यदि वे स्वयं ही पूछें तब ?"

सुरमाने कहा—"क्या उन्होंने कभी इस तरहका सवाल किया है ?" कहते-कहते उसकी आंखोंमे न जाने कैसी चमक पैदा हो गयी ।

चारुने भीत भावसे कहा—" नहीं ।"

"तब वे हरगिज़ न पूछेंगे । यदि किसी दिन पूछेंगे, तो उस समय जैसा उचित मालूम होगा, किया जायेगा । जाओ, अब सो रहो, मैं इस समय चलती हूं ।"

चारुने घबड़ाकर कहा—"नहीं, जीजी ! तुम बैठती क्यों नही ?"

"तुम्हारे स्वामी अभी आया ही चाहते हैं ।"

"आयेंगे ही तो क्या होगा ?"

"मेरे इतनी देरतक समझाने-बुझानेका क्या यही फल हुआ । देखो, वे शायद आ ही गये ।"

चारुने घबराहटके साथ पूछा—"यदि वे पूछें कि तुम्हारे पास कौन था तो क्या कहूंगी ?"

सुरमा दूसरे कमरेका दरवाज़ा खोलती हुई मृदु स्वरमें बोली—"कह देना कि बिन्दी थी । नहीं तो तुम चुप रह जाना, फिर वे कुछ भी न पूछेंगे ।"

"यदि पूछें ही ?—ऐ जीजी ! बतलाती जाओ—जीजी !—"

लेकिन तबतक तो जीजी उस कमरेसे बाहर हो गयी थी। अमरनाथने कमरेमें आते ही पूछा—"तुम किससे बातें कर रही थीं ?"

चारु चुप हो रही। मन-ही-मन डरी कि कहीं स्वामी फिर न पूछ बैठें।

"कैसी हो ? फिर तो सिरमें दर्द नहीं हुआ ? कहते-कहते अमरनाथने उसके शीतल ललाटको स्पर्श करके देखा। बोला—"नहीं—ख़ूब ठण्डा है।" इसके बाद एक गोली चारुको और खिलाकर बोला—"मैं अब नहाने जाता हूं। बिन्दीको बुला दूं क्या ?"

अमरनाथने बहुत पूंछ-ताछ नहीं की, यह देख चारुने एक चैनकी सांस ली और बोली,"बिन्दीको ? अच्छा,बुलवा दीजिये।"

अमरनाथके जानेके थोड़ी ही देर बाद बिन्दी उर्फ़ वृन्दावली आकर पास ही खड़ी हो गयी और बोली—"बहूजी ! क्या पङ्खा झलूं ?"

"नहीं, तू बैठ जा—मैं तुझसे बातें करूंगी। जीजी किधर गयीं ?"

"शायद रसोईघरकी तरफ़ गयी हैं।"

"कबतक आयेंगी ?—वे जबतक नहीं आतीं, तबतक तू मेरे साथ बैठी बातें कर।"

"कहांकी बातें करूं ? शिवलोककी ?"

"नहीं, अपने देशकी बातें सुना।"

"हमारे देशकी कौनसी बात सुनने लायक़ है, बहूजी? इससे तो अच्छा है कि तुम्हीं कलकत्तेकी बातें कह सुनाओ। तुम कलकत्तेकी रहनेवाली हो—यहां कैसे मन लगता होगा? कुछ भी अच्छा नहीं लगता होगा!"

"नहीं बिन्दी! वहांसे तो यहीं मेरा मन ख़ूब लगता है। वहां और कौन था? वहां मन बहलानेलायक़ कुछ भी नहीं था।"

"ऐं! यह क्या कहती हो? लोग कहते हैं कि कलकत्ता बड़ा भारी शहर है, फिर वहां कोई आदमी नहीं मिलता था क्यों? यहां हमारे यहां तो बड़ी बहूजीके पास दोपहरके समय कितनी ही स्त्रियां ताश खेलने और गपशप करने आती हैं।"

"कहां आती हैं? मैंने तो यहां आनेपर कुछ भी नहीं देखा। अब क्या वे सब नहीं आतीं?"

"अब किसके पास आयें? पहले वे सब जिनके पास आती थीं, अब वे इन सब खेल-तमाशोंमें शरीक़ ही नहीं होतीं, इसीलिये नहीं आतीं।"

"क्यों नहीं शरीक होतीं? तू उन लोगोंसे आनेको कह दे। मैं भी जीजीके साथ-ही-साथ उन लोगोंके सङ्ग बैठकर खेलूंगी। क्या वे अब नहीं आयेंगी?"

बिन्दीने गर्दन हिलाकर कहा—"आयेंगी क्यों नहीं? ज़रा सी ज़बान हिलाते ही चली आयेंगी।"

"तुम सब जीजीको ख़ूब मानती हो न ? वे मुझे बहुत प्यार करती हैं। वे बड़ी भलीमानस हैं। क्यों बिन्दी ?"

तब बिन्दीने बड़ी भूमिका बांधकर कहना शुरू किया—"छोटी बहू! बड़ी बहूकी क्या बात है! तुम उनका क्या हाल जानो ? हमलोग तो उन्हें विवाहकी ही रातसे देखती आती हैं। उसी दिनसे उनकी बुद्धि, विवेचना और दयाकी इतनी बातें देखी हैं कि एक मुंहसे उनका कहांतक बखान करूं ? मालिकके तो प्राण ही उनमें बसते थे। वे रात-दिन "बेटी-बेटी" पुकारते हुए गलकर पानी हो जाते थे। वे भी मालिकपर कितनी श्रद्धा-भक्ति रखती थीं। ठीक बच्चेकी तरह उनकी सम्हाल करती थीं। ऐसा और किसीसे नहीं बन सकता।"

बड़ी देरतक इसी तरहकी बातें होती रहीं। चारु भी बड़े शौक़से खूब मन लगाकर उसकी वक्तृता सुनते हुए आनन्द अनुभव करती रही। चारुका कभी शान्त, स्निग्ध और स्नेहपूर्ण तथा कभी तेज-पूर्ण एवं नितान्त निःस्पृहका-सा व्यवहार रह-रहकर चारुको अभिभूत करने लगा। कभी तो उसका उदार अथवा एकान्त सहानुभूतिमय व्यवहार तथा करुणाके झरनेकी भांति उसके मुखड़े और स्नेह बरसानेवाली बड़ी-बड़ी आंखोंको देखनेपर चारु उसे एकदम अपना आत्मीय और जीवनका सर्वश्रेष्ठ सुहृद समझकर उसके गले लग जाना चाहती और कभी उसकी गम्भीर तथा अस्वाभाविक ज्योतिसे चमकती हुई आंखें देखनेपर बिना कारणके भी डर जाती थी। यह पहेली चारुके

लिये एकदम नयी थी। एक ही आदमी क्षण-भरमें ऐसा बदल जा सकता है, यह समझना उसके संस्कारके बाहरकी बात थी। वह इतना ही जानती थी, कि असन्तुष्ट होनेपर मनुष्य बहुत करेगा तो मुंह फुलाकर पीठ फेर लेगा। क्रोध न होनेपर भी कोई कैसे इतना गम्भीर हो सकता है अथवा गम्भीर ही क्यों होता है, यह उसकी बुद्धिमें ही नहीं समाता था। अमरनाथके बाद वह सुरमाको ही इस पृथ्वीमें अपना आत्मीय समझने लगी है। उसकी-सी सरला और सांसारिक बुद्धिका लेश-मात्र भी नहीं रखनेवालीके लिये यही धारणा स्वाभाविक भी थी। सुरमाको अपनी बड़ी बहन समझकर उसका स्नेही मन यहां आनेके बाद-सेही तरस रहा था। इसके बाद जब ससुरने स्नेहपूर्वक आशी-र्वाद देकर उसे सुरमाके ही हाथोंमें सौंप दिया तब वह भी एकान्त विश्वस्त चित्तसे सुरमापर ही आत्मसमर्पण कर बैठी। चारु और अमरके वहां आनेके बादसे ही सुरमाने उनके और ससुरके प्रति जैसी क्लान्तिशून्य आन्तरिकता दिखलायी, उससे चारु उसे देवी ही समझने लगी। ससुरने भी जब सुरमाके प्रति श्रद्धा-सूचक बातें कहीं, तब चारुकी वह भक्ति और भी बढ़ गयी। वह कार्यकुशला, स्नेहमयी, प्रेममयी, करुणामयी उसकी आत्मीया है, यह सोचकर उसे बड़ा आनन्द होता। इसीलिये वह समय-असमय, कामसे या बिना कामके, कारणसे या अकारण ही, बड़े आनन्दके साथ जीजी-जीजी पुकारा करती थी।

लेकिन ससुरके मरते ही सुरमा ऐसी बदल गयी कि चारु तो

उसका व्यवहार देखकर अचम्भेमें पड़ गयी। यह क्या ? कल जो ऐसा स्नेहमय व्यवहार करती थी, वह आज कैसे पलट गयी ! क्योंकर ऐसा हो गया, यह सोचकर चारु व्याकुल होने लगी। वह बीच-बीचमें स्वामीसे इसका कारण पूछती; पर स्वामी गम्भीर मुंह बनाये चुप रह जाते थे। लाचार, चारु भी चुप हो रहती और सुरमाकी गरमीके दिनोंके बादलोंकी-सी मुखकान्ति देखकर उसे इसके पास जानेका भी साहस नहीं होता था।

आज इसीलिये चारु अपनी जीजीको भलीभांति पहचान लेनेको व्याकुल हो रही थी। सुरमाका आजका व्यवहार भी मानों एकबारगी नया था। उसमे इतना स्नेह भरा हुआ है, शायद उसकी आशा चारुको भी नहीं थी। इसीलिये उसकी राई-रत्ती आलोचना करनेमें भी उसे बड़ी तृप्ति हो रही थी। विन्दोके मुंहसे इस परिवारकी अपने ससुरके ज़मानेकी बातें सुनते-सुनते उसके मानस-नेत्रोंके सम्मुख जो सुन्दर चित्र नाच उठता था, वह केवल सुखमय, शान्तिपूर्ण और स्नेहसे लबालब भरा हुआ था। चारुने होश सम्हालनेपर अपने पिताको नहीं देखा और पिता कन्याको या कन्या पिताको कितना प्यार करती है, यह भी वह नहीं जानती; इसीलिये यह चित्र उसे बड़ा सुन्दर मालूम होता था और इस चित्रमें सुरमा ही मानों प्रधान दर्शनीय व्यक्ति थी ! चारु गर्व और आनन्दसे खिल उठी— बोली—"जीजी मुझे भी बहुत प्यार करती है, बिन्दी !"

इसी समय कमरेमें अमरनाथके चले आनेसे चारुने सिरका

घूंघट काढ़ लिया। लाचार, विन्दी भी बातें बन्दकर, पङ्खा नीचे रखकर उठ खड़ी हुई। अमरनाथने मुस्कुराते हुए कहा—"इतनी गप्पें कहांकी उड़ रही हैं? देखता हूं कि तुमने विन्दीसे बडी गहरी दोस्ती कर रक्खी है।"

चारुने हंसते हुए चेहरेसे बड़े आग्रहके साथ कहा—"हम दोनों जीजीकी ही बातें करनेमें लगी हुई थीं।"

अमरनाथ पहले तो चुप हो रहा। लेकिन बार-बार किसीकी बात छिड़नेपर सब समय उदासीन हो रहना ठीक नहीं, इसीलिये इच्छा न होनेपर भी अमरनाथने कहा—"गप्प करने लायक़ शायद इससे अच्छी और कोई बात नहीं थी।"

"गप्प नहीं, योंही हम दोनों कितनी ही बातें कर रही थीं। जीजी, बड़ी भलीमानस हैं। हैं या नहीं?"

अमरनाथने हलकी मुस्कुराहटके साथ कहा—"मैं यह बात कैसे जानूं?"

"सब जानते हैं, केवल आप ही नहीं जानते? जीजीको सब लोग बहुत मानते हैं। पिताजी भी बहुत मानते थे, वे उन्हें रात-दिन बेटी-बेटी कहकर पुकारा करते थे।"

कुछ देर चुप रहनेके बाद अमरनाथने मृदु स्वरसे कहा—"यह तो मुझे मालूम है।"

"जीजीके पिता न जाने कितनी बार उन्हें लिवा ले जानेके लिये यहा आये; पर यहां पिताजीको कष्ट होगा और घरकी व्यवस्था बिगड़ जायेगी, यही सोचकर वे दो दिनके लिये भी कही नहीं जाती थीं।"

अनिच्छा होनेपर भी मुंहपर हंसी लाकर अमरनाथने कहा,—"मैं तो समझता था कि तुम कितने ही निरीह दैत्य-दानवोंके कन्धेपर बड़ी-बड़ी अद्भुत घटनाओंका दायित्व लादकर कुछ नयी-नयी घटनाएं सुन रही हो—"

इस बातको अनसुनी करके चारु पहलेकी ही तरह कहती गयी—"जीजी नौकर-दासियोंको भी बहुत प्यार करती हैं। बिन्दी अभी न जाने कितनी बातें सुना रही थी। और उनकी तरह घर-गृहस्थीका हिसाब-किताब रखना, सबका मान-सम्मान करना, सब काम-धन्धे करना भी दूसरा कोई नहीं जानता।"

अमरनाथने तनिक मुस्कुराकर कहा—"तब तो तुम मुझसे भी अधिक जानती हो। अरे, मैं तो इसका उलटा ही देख रहा हूं। ख़ैर! यह तो कहो, इस समय तुम कैसी हो? कुछ तकलीफ़ तो नहीं है?"

"नहीं। मैं अच्छी-भली हूं। हां, आपने उलटा क्या देखा, सो कहिये?"

"जाने दो, इस समय उन सब बातोंका कोई काम नहीं है। बोलो तो, तुम क्या पढ़ रही थी?"

"नहीं, सो नहीं होगा। आप बतलाइये कि आपने क्या उलटा देखा?"

"यही, जो तुम अभी अपनी जीजीकी बात कह रही थी, उसीका उलटा देख रहा हूं। शायद पहले वे ऐसी ही थीं।

ऐसा ही सबके मुंहसे सुनता हूं, लेकिन आंखों जो कुछ देखता हूं, उससे तो सारा मामला ही उलटा नज़र आता है।”

“अपनी आंखों आप क्या देख रहे हैं? बोलिये न, आपको बतलाना ही पड़ेगा, नहीं तो मैं किताब छीन लूंगी।”

अमरनाथ किताबमें मन लगानेकी चेष्टा कर रहा था। वह उसीकी ओर नज़र गड़ाये हुए बोला—“इस समय तो वे कुछ भी देखती-भालती नहीं हैं—एक बार ही दुनियासे नाता तोड़े बैठी हैं। इसीसे घरमें इतनी गड़बड़ मच रही है। चाचाने उस दिन कहा कि उन्हें समझा-बुझा दो, इसीलिये मैं उस दिन उनसे कहने भी गया था—इसपर—”

“इसपर क्या? जीजीने क्या कहा?”

“तुम अभी नन्ही नादान हो, वह सब तुम्हारी समझमें नहीं आयेगा। असल बात यह है कि वे इस समय यही समझती हैं कि उनका इस दुनियामें किसीके साथ कोई सरोकार नहीं है। वे सरोकार रखना भी नहीं चाहतीं।”

चारु भौंचक-सी देखती रह गयी। अबकी फिर उसको सुरमा बड़ी भारी पहेली-सी मालूम पड़ने लगी। ज़बरदस्ती उस भावको दबाकर चारुने कहा—“ख़ैर, यह सब चाहे जो कुछ हो, पर मुझे तो वे बहुत प्यार करती हैं।”

अमरनाथ घड़ी-भर हक्का-बक्का-सा हो रहा। नितान्त असङ्गत स्थानपर बेमेल बात सुनकर जैसे आदमी चौंक उठता है, उसी तरह कुछ देर चुप रहनेके बाद उसने तावेज़नीके साथ कहा—“करती होंगी।”

चारु इस तानेको न समझी—उमङ्गके साथ कहने लगी—"मेरे सिरमें दर्द था, इसलिये वे न जाने कितनी देरतक मेरा सिर दाबती रही—ओह, उनका हाथ कैसा मुलायम और कितना ठण्डा था। उनकी गोदमें सिर रखकर सोते ही मेरे सिरका दर्द मानों तुरत ही जाता रहा। मैं भी अपनी जीजीको बहुत प्यार करती हूं।"

अमरनाथ सचमुच मन-ही-मन बड़ा अचम्भा मान रहा था। उसने सोचा कि अब मैं यह कैसी पेचीली बात सामने देख रहा हूं। यह तो ठीक अलिफ़ललाकी कहानी-सी मालूम पड़ती है। अमरनाथने बड़े ज़ोरसे हंसकर कहा—"तुम तो मुझे भी अपनेको बहुत प्यार करता हुआ पाती हो। तुम जैसी अल्हड़के लिये प्रेमकी थाह लगाना कितना कठिन है, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है।"

"क्यों? क्या मैं कुछ भी नहीं समझती? क्या मैं ऐसी मूर्ख हूं? अच्छा, तो क्या आप सचमुच मुझे जीसे नहीं प्यार करते? सच-सच कह दीजिये।"

अमरनाथ ज़रा गम्भीर हो रहा। इसके बाद प्रेमसे हंसते हुए चारुके दोनों गालोंमें चुटकी भरकर बोला—"अब तो देखता हूं, कि तुम्हें बड़ी बुद्धि हो आयी है। तुम्हें बातें करनेका ढङ्ग ख़ूब आ गया है।"

"मैं प्यार और मुहब्बतकी बात भी नहीं समझ सकती, आप

मुझे ऐसी बेवकूफ़ समझते हैं ! मैं निश्चय ही कह सकती हूं कि जीजी भी मुझे बहुत प्यार करती हैं।"

"चारु ! तुम्हारे ही जैसा आदमी सुखी है। तुम कभी दुःख नहीं पाओगी।"

"क्यों ?"

"तुम बड़ी आसानीसे सबको अपना बना ले सकती हो।"

"फिर भी वैसी बात कहेंगे ? ठहरिये मैं आपको बतलाती हूं कि मैं समझ सकती हूं या नहीं। लीजिये सुनिये—जीजी आपके ही ऊपर नाराज़ हैं।"

अमरनाथने ज़ोरसे कहा—"ऐं ! सचमुच ? चाहे जो हो, यह तो तुमने बड़ा नया आविष्कार किया ! नहीं, अब तो यह बात नहीं अस्वीकार की जा सकती कि तुम्हें बड़ी बुद्धि हो गयी है।"

"आपको तो केवल दिल्लगी ही सूझती है ! यदि यह बात नहीं है, तो जीजीने आपके बारेमें ऐसा क्यों कहा ? बतलाइये।" कहते-ही-कहते चारुको एकाएक याद आया कि सुरमाने उसे इन बातोंको कहनेसे कितना मना किया था। वह एक दिन भी अपनी जीजीकी बातपर नहीं रही, यह सोचकर चारु सहसा बड़ी उदास हुई और डर गयी।

अमरनाथने क्षण-भर ठहरकर कहा—"कौन-सी बात ?"

चारुने डरी हुई आवाज़में कहा—"मैं और कुछ भी नहीं कहूंगी, नहीं तो जीजी मेरे ऊपर बहुत ही नाराज़ हो जायंगी।"

"ज़रूर ही होंगी। यदि उन्होंने मेरे बारेमें कुछ कहा हो तो-भी इस समय उसे सुननेकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं थी; लेकिन तुम आज इन सब बातोंके सिवा और भी कुछ कहोगी, इसकी भी तो मैं कोई सम्भावना नहीं देखता।"

चारुने बाधा देकर कहा—"नहीं, यह बात नहीं है। जीजीने आपको कुछ भी नहीं कहा। वे अपनी ही बात—"

अमरनाथने झुंझलाहटके साथ कहा—"बस, चारु! अब मैं एकबारगी सुनते-सुनते ऊब गया। यदि और कुछ कहना हो तो भले ही कहो, नहीं तो मैं हारमोनियम बजाता हूं—तुम सुनो।"

तेरहवां परिच्छेद

विचित्र परिवर्तन

अमरनाथसे अपने घरका इन्तज़ाम करते नहीं बना, कुछ तो इसीलिये और कुछ-कुछ सुरमापर अभिमान करके भी उसने तारिणीचरणको बुलवाकर घरका इन्तज़ाम उसीको सौंप दिया। तारिणीचरणकी कारगुज़ारीपर उसे बहुत बड़ा विश्वास था। वह आते ही मालिकके सालेकी उच्च पदवीपर बैठकर पूरा दबदबा दिखाते हुए सब काम करने लगा। इसका नतीजा यह हुआ कि थोड़े ही दिनोंके अन्दर घरके नौकर-चाकर, दास-दासी और आत्मीय-स्वजनोंका नाकोदम हो

गया; क्योंकि तारिणीचरण बड़ा ही रोबीला, कर्त्तव्यपरायण और ज़बरदस्त आदमी था।

ज़नानख़ानेमें भी वैसा ही गोलमाल जारी था। सहसा एक दिन सुरमाके कानोंमें भनक पड़ी कि बूढ़े श्यामाचरण राय अपना हिसाब-किताब समझा-बुझाकर अमरसे बिदाई लेकर काशी चले गये। जाते समय उन्होंने सुरमासे भेंटतक नहीं की। इससे अकबकाकर सुरमा सोचने लगी कि अब यह बेमांझीकी नाव बहुत दिन नहीं चलेगी—शीघ्र ही डूब जायेगी।

अमरकी समझमें नहीं आया कि क्या करूं, इसीलिये उसने तारिणीकी मदद मांगी। उसकी बात सुनकर तारिणीने कहा—"डरनेका कुछ काम नहीं है। मैं यह सब काम भली-भांति कर सकता हूं। सबसे पहले यही काम करना चाहिये कि यहां जितने पुराने-पुराने आदमी हैं, उन सभीको निकालकर बाहर कर दिया जाये। वे बहुत दिनोंसे हाथमे अधिकार पाये हुए हैं, इसलिये उनके मिज़ाज बहुत बढ़ गये हैं।"

सन्दिग्धचित्तसे ही अमरने कहा—"ठीक कहते हो।" लेकिन सवेरे ही तारिणीने आकर उससे कहा-"मैंने आज सवेरे ही अपनी नयी व्यवस्था जारी करनी चाही थी; पर जहां गया, वहीं देखा कि सब मामलोंमें बड़ी बहूजी दख़ल दिये बैठी हैं, हर जगह उन्हींके नामकी पताका फहरा रही है; क्योंकि आज बड़ी बहूने एकाएक घरका सारा इन्तज़ाम अपने हाथमें ले लिया है। तब फिर मेरी यहां ज़रूरत ही क्या रही?"

लेकिन इस नालिशका नतीजा उलटा ही हुआ। अमरने बड़े आग्रहके साथ पूछा—"क्या सचमुच ऐसी बात है? उन्होंने क्या सचमुच सब काम देखना शुरू कर दिया? चलो, बहुत ही अच्छा हुआ। जान बची। भैया! गृहस्थीका इन्तज़ाम मर्दोंसे थोड़े ही हो सकता है! इसके सिवा तुम भी तो निरे नये ही आदमी थे।"

अभिमानके मारे भीतर-ही-भीतर फूलकर कुप्पा होते हुए तारिणीने कहा—"जमीदारी वग़ैरहके कामोंमे भी तो मैं नया ही आदमी हूं?"

इसी समय एकाएक सुरमाको उस कमरेमें आते देख, वह सङ्कुचित हो गया। सुरमाने विना सङ्कोचके उसके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—"तुम नये आदमी हो, यहांका हाल तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं है, यह बात विलकुल ठीक है; लेकिन चाहे जो कुछ हो, तुम अपने आदमी हो, इसलिये मज़ेसे यहांके दीवानका पद ले सकते हो। जब कभी किसी मामलेमे तुम्हें सहायताकी दरकार हो, तब मुझसे आकर पूछ लेना। पिता और चाचाजी मुझे ज़मीदारीके कुल काम बतलाते रहते थे, इसीलिये मैं बहुत-कुछ जानती-बूझती हूं।"

तारिणीने मन-ही-मन कुढ़कर अमरकी ओर देखा। उसने सोचा—"हुं:! मैं एक स्त्रीके इशारेपर नाचनेके लिये दीवान बनने जाऊंगा!" इधर अमरने सुरमाकी बातसे बहुत ही विस्मित, आनन्दित और कुछ-कुछ लज्जितसा होकर कहा—"क्यों तारिणी अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है?"

सुरमाने तारिणीसे कहा—"इसमें तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

तारिणीने सिर झुकाये हुए धीमे स्वरमें कहा—"नहीं।" किन्तु मन-ही-मन कहने लगा—"तुम्हारा रोब-दाब कुछ कम करना होगा।"

सुरमा चली गयी। तारिणी भी दूसरे काममें जा लगा। सुरमाका यह आकस्मिक परिवर्त्तन देखकर अमरनाथ अचम्भेमें पड़ गया था। उसने सोचा—"इसका क्या मतलब है ?"

घरके कुल काम-धन्धे ठीक-ठिकानेसे चलने लगे। ज़मींदारी कामोंमें तारिणी सुरमाकी सलाह नहीं लेता था, तोभी सुरमा उसे मौक़े-मौक़ेसे सलाह-मशवरा दिया करती थी। लाचार, तारिणीको उसकी यह प्रभुता सहन कर लेनेके सिवा और कोई उपाय नहीं दिखाई दिया।

आजकल चारु मानों और-की-और ही हो गयी है। उसके बनाव-सिंगारसे लेकर घरकी सजावटतक सभी बातें मानों नयी ही रुचिका परिचय देती हैं। नये-नये शिल्प सीखना, लिखने-पढ़नेका अभ्यास करना आदि बिलकुल नये ढंगके कामोंमें वह जी-जानसे लगी हुई रहती है। अपनी पढ़ी हुई विद्याको मुफ़्तमें लोगोंकी चिकित्सा करके सार्थक करते हुए और बीच-बीचमें इधर-उधर बन्दूक़ लेकर शिकार खेल आनेके बाद जब अमरनाथ घर आकर चारुको उसके कामसे छुड़ा देता है, तभी मानों उसको थोड़ा-सा विश्राम मिल जाता है। सुरमा अब

अमरके साथ भी पहलेकी तरह निःसम्पर्कका-सा व्यवहार नहीं करती, तोभी वह चारुके सामने जैसी अकुण्ठित होकर अपने दिलका परदा हटा देती है, वैसा अमरके सामने नहीं करती। जब कभी ज़मींदारी आदिके कामोंमें कुछ गोलमाल होता है, कहीं कुछ विशृङ्खला उपस्थित हो जाती है, अथवा किसी ज़रूरी मामलेमें उसकी राय लेनी होती है, तभी सुरमा निस्सङ्कोच भावसे अमरके पास उस विषयकी आलोचना करती है। नहीं तो घर-गृहस्थीकी सम्हाल करने और चारुके साथ मन बहलानेमें ही उसका सारा समय कटता रहता है। सम्पत्ति भी क्रमशः बढ़ ही रही है। जो क्षण-भर स्नेहभरी दृष्टिसे देखकर ही इतनी बड़ी गृहस्थीकी उलटी गतिको चतुर माँझीकी तरह सीधे रास्तेपर ला सकती है, उसकी शक्तिको भला कौन अन्धा नहीं स्वीकार करेगा?" ख़ासकर अमर तो इन सब मामलोंमें बिलकुल कोशही ठहरा, इसीलिये वह इस समय मन-ही-मन और ऊपरसे भी उसकी क़द्र करता है और उसीके बतलाये हुए रास्तेपर चलता है। कुछ दिन पहले अमरके मनमें सुरमाके प्रति जैसे भाव भरे हुए थे, उन्हें याद करके वह इस समय शर्मिन्दा हो जाता है। इस समय सुरमाका नाम ही सुनकर वह सम्मानके साथ सिर झुका देता है। जहा आत्मग्लानि उत्पन्न हो जाती है वहा अच्छाई भी उसीके हिसाबसे बढ़ जाती है।

दोपहरको आराम करनेके समय चारु और सुरमा दोनों जनी बैठी हुई बड़ी निपुणताके साथ शिल्प-कार्य कर रही थीं।

सामने ही पालनेपर फूले हुए गुलाबका-सा बच्चा सो रहा था। आज चार महीने हुए चारुको एक पुत्र पैदा हुआ है।

सुरमाने कहा—"चारु! अब तो मुझसे नहीं पार लगता, तू ही इसे पूरा कर दे।"

"नहीं, जीजी! मुझसे बिगड़ जायेगा।"

"नहीं बिगड़ेगा—अच्छा उतरेगा। बच्चा जग पड़ा है, मैं उसे गोदमें लेने जाती हूं।"

"जगने दो, जीजी! यही न, कि थोड़ी देर रोता रहेगा। अब थोड़ा-साही काम बाक़ी रह गया है। इतनेके लिये आलस्य क्यों करती हो?"

सुरमा बच्चेको गोदमें लेकर बैठ रही। चारुने अभिमानके साथ कहा—"जाओ, तो अब मैं भी इसे पूरा नहीं करूंगी।"

"अच्छा, रहने दे, कल हो जायेगा। बच्चेको ज़रा दूध पिला दे।"

"बस, तुम तो केवल मेरे ऊपर फ़र्माइशें ही करती रहती हो।"

"अच्छा, ले, अब नहीं कहूंगी—जा, अपने कमरेमें चली जा।"

चारु हंस पड़ी, बोली—"इसीलिये कह रही हो! वे तो शिकार खेलने गये हैं।"

सुरमाने भी धीरेसे मुस्कुराकर कहा—"एक बार शिकार खेलने गये, तो यह चंचल हिरन पकड़ लाये, अबकी बार क्या ले आयेंगे?"

चारु और सुरमा दोनों शिल्प कार्य्य कर रही हैं। सामने ही पालनेपर फूले हुए गुलाबका-सा बच्चा सो रहा है।

(पृ० १७५)

सामने ही पालनेपर फूले हुए गुलाबका-सा बच्चा सो रहा था। आज चार महीने हुए चारुको एक पुत्र पैदा हुआ है।

सुरमाने कहा—"चारु! अब तो मुझसे नहीं पार लगता, तू ही इसे पूरा कर दे।"

"नहीं, जीजी! मुझसे बिगड़ जायेगा।"

"नहीं बिगड़ेगा—अच्छा उतरेगा। बच्चा जग पड़ा है, मैं उसे गोदमें लेने जाती हूं।"

"जगने दो, जीजी! यही न, कि थोड़ी देर रोता रहेगा। अब थोड़ा-साही काम बाक़ी रह गया है। इतनेके लिये आलस्य क्यों करती हो?"

सुरमा बच्चेको गोदमें लेकर बैठ रही। चारुने अभिमानके साथ कहा—"जाओ, तो अब मैं भी इसे पूरा नहीं करूंगी।"

"अच्छा, रहने दे, कल हो जायेगा। बच्चेको ज़रा दूध पिला दे।"

"बस, तुम तो केवल मेरे ऊपर फ़र्माइशें ही करती रहती हो।"

"अच्छा, ले, अब नहीं कहूंगी—जा, अपने कमरेमें चली जा।"

चारु हंस पड़ी, बोली—"इसीलिये कह रही हो! वे तो शिकार खेलने गये हैं।"

सुरमाने भी धीरेसे मुस्कुराकर कहा—"एक बार शिकार खेलने गये, तो यह चंचल हिरन पकड़ लाये, अबकी बार क्या ले आयेंगे?"

"मैं क्या हिरन हूं ! ख़ैर, तो अबकी वार एक शेर पकड़ लायेंगे।" यह कहकर वह अपनी बातपर आपही हंसने लगी। सुरमाने तनिक गम्भीर भावसे कहा—"शेर तो घरमें ही है—एक भेड़िया आ जाये तो ठीक हो।"

चारुकी समझमें कुछ न आया। बोली—"क्या कहा? वह भी शेर ही है क्या? शायद वह चिड़ियाख़ानेका शेर है। उसे लाकर क्या होगा? वह तो किसीसे कुछ छेड़छाड़ भी नहीं करता। शायद मनुष्यों और जन्तुओंको सतर्क करनेके लिये ही भगवान्‌ने उसे सिरजा है।"

"अरे, उसे लोगोंने पिंजड़ेमें बन्द कर रक्खा है, नहीं तो वह बड़े-बड़े शिकारियोंकी गर्दन मरोड़ देता।"

"उसे हमारे शिकारी नहीं पकड़ते—वह तो मोल ख़रीदा हुआ है।"

"सो तो ठीक है।" कहकर सुरमा बच्चेको प्यार करने लगी। चारु अलसायी हुई सो रही और बोली—"कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जीजी! सवेरेके गये अबतक उनका शिकार ही पूरा नहीं हुआ!"

निद्रित शिशुको फिर शय्यापर सुलाते हुए सुरमाने कहा—"अभी क्या हुआ है? शाम हो जायेगी, बिना खाये-पीये जान निकलने लगेगी, चेहरेका रंग बिगड़ जायेगा, तब न आयेंगे!"

"यह कैसी बुरी बात है, जीजी! तुम उन्हें मना नहीं करतीं?"

"बस, अब तुमने पतेकी बात कही है। मेरे मना करनेसे तो वह तुरन्त मान जायेंगे!" यह कह, सुरमा फिर कपड़ा सीने लगी। इस बार सुरमाकी तानेज़नीका मतलब समझकर चारु मन-ही-मन बड़ी दुःखित हुई, पर इसका कोई जवाब नही सूझा; इसलिये चुप हो रही। चारुको चुप देख, सुरमाने उसकी ओर देखते हुए मुस्कुराहटके साथ कहा—

"क्या तू रंज हो गयी?"

"तुम बीच-बीचमे ऐसी दुःख-भरी बात क्यों कह देती हो, जीजी?"

"न जाने क्यों चारु! मेरी ऐसी आदत-सी हो गयी है। मैं सदासे झगड़ालू हूं।"

"मैंने तुम्हें झगड़ालू कब कहा?"

"मुंहसे भले ही न कह, पर देखती नहीं है? अभी तेरे ही साथ एक चोट हो गयी। मैं लड़कपनमें पिताके साथ कैसे झगड़ा किया करती थी, सो सुन।"

"अपने पिताकी बात कहती हो? जीजी! अपने पिताके घर जानेके लिये तुम्हारा जी कभी अकुलाता है या नहीं?"

"नहीं।"

"लेकिन यदि मेरे मायकेमें मेरा कोई अपना सगा होता, तो मेरा जी ज़रूर अकुलाता।"

"मैं तो कही चुकी हूं कि मेरा स्वभाव ही कुछ विलक्षण है। ख़ैर, अब मेरी लड़ाई-झगड़ेकी बात सुन।" चारुको

उसने दुःखी कर दिया था, इसीलिये सुरमा उसके दुःखी मनको हरा करनेके लिये तरह-तरहकी कथाएं सुनाने लगी। उसके वर्णन करनेका ढंग देख, चारु हंसते-हंसते लोटपोट हो गयी।

"अरे, मामला क्या है, जो इतनी हंसी फैल रही है?" यह बात सुनते ही दोनोंने हंसी रोककर देखा कि सामने ही अमरनाथ है। चारु चकित होकर उठ बैठी और बोली—"कब आये?"

"थोड़ी ही देर पहले आया हूं। इतनी हंसी क्यों हो रही है? ज़ीनेके नीचेसे ही सुनाई दे रही है। मामला क्या है?"

"योंही एक हंसीकी बात सुनकर हंसी आ गयी थी। जीजी! तुम उठीं क्यों?"

"तो क्या आज खाने-पीनेकी भी ज़रूरत नहीं है?"

बात काटकर अमरनाथने कहा—"खाना-पीना हो चुका है। अब मैं नहीं खाऊंगा।"

"तब फिर क्या है? बैठो, जीजी!"

अमर और चारुके बातचीत करते समय सुरमा उनके पास कभी बैठती नहीं थी। वे लोग भी उससे इसके लिये अनुरोध करनेका साहस नहीं करते थे। आज थोड़ी ही देर पहले सुरमाने अनजानतेमें ही एक बात कहकर चारुके चित्तको चोट पहुचायी थी, अबकी उसका यह अनुरोध टालकर उसे फिर दुःखित करनेकी उसे इच्छा नहीं हुई। उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि अबसे मैं कभी ऐसी असावधान न हूंगी। चारुने अमरको खड़ी देखकर कहा—"बैठ जाइये।"

सुरमाके असमञ्जसको अमरनाथने ताड़ लिया था, इसीसे वह भी इधर-उधर कर रहा था। अबकी चारुकी बात सुन, दूसरा कोई उपाय न देख, वह लाचार होकर बैठ रहा। सुरमाने सोये हुए बच्चेको अपनी गोदमें ले लिया।

"कौनसा शिकार ले आये! जीजी कह रही थी कि आप भेड़िया पकड़ लायेंगे!"

"भेड़िया!" तनिक मुस्कुराकर अमरने कहा —"सो कैसे! भेड़िया किस लिये लाऊंगा?"

"मैं तो हिरन हूं न! पिंजड़ेमे पड़ा हुआ शेर किसीको पकड़ न ले, इसीलिये भेड़िया आकर हमलोगोको सावधान कर देगा।"

"तुम हिरन हो और मैं? बनेला सूअर तो नही हूं?"

"नहीं आप तो शिकारी हैं।"

"पिंजड़ेमें पड़े हुए शेरसे इतना भय किस लिये?"

मामला बेरङ्ग देख, सुरमाने घबराकर कहा—"नहीं, नहीं, यह बात नहीं है। चारुकी समझमें ही कुछ-का-कुछ आ गया। ख़ैर, यह तो कहिये, शिकारमें क्या-क्या मिला?"

अमरने ज़रा ख़ुश होकर एकटक सुरमाकी ओर देखते हुए कहा—"दो-चार हंस और बटेरें हाथ लगी हैं। देखोगी?"

अमरकी इस सङ्कोच-हीन दृष्टिको देखकर सुरमाने सिर नीचा कर लिया। चारु बोली—"नहीं, नहीं, यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। ओह! आप इन बेचारोंको क्यों बेक़सूर मारते हैं?"

अमरने कहा—"मछली भी तो मार कर ही खायी जाती है ?"

सुरमा बच्चेको सुलाकर उठ खड़ी हुई। चारुने कहा—"जाती क्यों हो, जीजी ! आओ न, इसे सीकर पूरा कर दूं।"

सुरमा बोली—"तुम्हीं सी लेना; मुझे और भी काम है।—"

सुरमाकी बात पूरी होते-न-होते अमर उठ खड़ा हुआ और बोला—"चलूं, ज़रा सुस्तालूं। देहमें बड़ा दर्द हो रहा है।"

सुरमा समझ गयी कि अमर यहा हम दोनोंके बीचमें बैठना नहीं चाहता; इसीसे उठकर चला गया है।

चारु बोली—"तुम तो दोनों ही चले, फिर मैं क्या यहा अकेली ही बैठी रहूं ?"

सुरमा—"नहीं, नहीं, लाओ, इसे सी डालूं।"

चारु—" लो, सीयो।"

दोनों काम करने लगीं। थोड़ी देर बाद बच्चा रो पड़ा, इस लिये सिलाईका काम चारुके हाथसे लेकर सुरमाने कहा—"तुम बच्चेको गोदमें ले लो, मैं इसे अभी पूरा करके लिये आती हूं।'

चारु—"तो मैं क्या अकेली ही रहूं ?"

सुरमा—"अकेली क्यों रहोगी ? उधर चली जाओ न !"

चारु—"तब तो मैं और भी न जाऊंगी।"

सुरमा—"मैं दिल्लगी नहीं करती, सच-मुच कहती हूं, जाओ, चली जाओ, शायद उन्हें किसी चीज़की दरकार हो। खानेके लिये भी पूछना।"

"अच्छा" कहकर चारु उठकर चली गयी।

सुरमा सिलाईका काम हाथमें लिये सोचने लगी—"मैं क्यों इस तरहका व्यवहार करके उन्हे खिझाया करती हूं? क्या इस सङ्कोचके द्वारा मैं उनके मनमें इस बातकी स्मृति नहीं उगा देती कि मेरे साथ उनका क्या सम्बन्ध है? उन्होने तो अपनी ओरसे सम्बन्ध तोड़ हो दिया है; फिर इस बातको याद उन्हें दिलाना कितनी लज्जाकी बात है! इस संसारमें मेरे लिये इससे बढ़कर लज्जाकी बात और कोई नहीं है। गोली मारो इस बातको। वे चारुके स्वामी हैं। चारुके स्वामीके मनमें इस तरहकी ग्लानि उत्पन्न करना क्या मेरे लिये उचित है? जो सरला मुझे अपने स्वामीके साथ आत्मीय भावसे बातें करते देखकर मारे आनन्दके अधीर हो उठती है, उस चारुके जो सर्वस्व हैं; उनके मनमें घड़ी-भरके लिये भी लज्जा या अनुतापका भाव आने देना मेरे लिये अक्षम्य अपराध है। यद्यपि उन्होंने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है, उस अपराधका यही दण्ड है, तथापि चारुके स्वामीसे उस अपराधका बदला लेना कदापि उचित नही है। मुझसे बदला लेना हो भी नहीं सकता। नही तो मैं फिर अपनी कर्त्तव्य-बुद्धिको चारुका घर सम्हालनेमें क्यों लगाती? बदला तो मैं लूंगी ही नहीं; फिर मनमें भी इतना-सा कपट रखना क्या मेरे लिये उचित है? क्यों नहीं मैं ठीक-ठीक उसकी जीजी बन जाती—उसकी बहनका-सा काम करती? दिलकी यह कमज़ोरी कबतक दूर होगी?"

यही सोचते-सोचते सुरमाने सीना वन्द कर दिया। दूसरे कमरेमें जाकर थालमें खानेकी चीज़ें सजा लायी और चारुके सोनेवाले कमरेके दरवाज़ेपर आ खड़ी हुई। खुले द्वारसे घरके अन्दरके आदमी दिखाई दे रहे थे। चारु गोदमें वच्चेको लिये हुए अपने स्वामीकी छातीपर झुकी पड़ी थी। अमरनाथ शय्यापर अधलेटा हुआ कभी वच्चेको और कभी उसकी मांको चूम लिया करता था।

सुरमा चुपचाप उलटे पावों लौट चली। उसने निःसङ्कोच आत्मीयका-सा व्यवहार करनेकी प्रतिज्ञा की थी और इसीलिये भोजनकी सामग्री लिये यहां आयी थी—क्या इसीलिये भगवान्ने उसकी इस तरह परीक्षा ली? उसके पेर ज़मीनमें गड़ गये। उससे एक पग भी आगे न वढ़ा गया।

परन्तु क्या उसके हृदयमें इतनी भी शक्ति नहीं आयी? जीवनके प्रथम यौवनकी आकुल वासनाओंके फूलोंको निःस्वार्थताकी जलती हुई होम-शिखामें भस्मीभूत कर देनेपर भी क्या उसके हृदयमें इतना वल नहीं आया। जीवनके स्नेह, प्रेम, आशा और तृष्णा आदिको इकट्ठे ही पीकर उसके जो कठिन प्राण एकवारगी मृत्युञ्जय हो गये, वे क्या अव भी इतने दुर्वल हैं? नही, नहीं, इन प्राणोंको तो पूर्णरूपसे सवल वनाना ही पड़ेगा।

अपने रुंधे हुए गलेको साफ़कर सुरमाने पुकारा—"चारु!" चारु घवरायी हुई उठ वैठी और खड़ी होकर वोली—"कौन है, जीजी?" उसने झटपट वच्चेको पलंगपर सुला दिया।

हाथमें थाली लिये इस तरह अप्रत्याशित रूपसे सुरमाको असमयमे आते देख अमरनाथ भी सकपका गया। वह भी झट उठ खड़ा हुआ। नन्हा-सा बालक ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा।

सुरमा भी बड़ी उलझनमे पड़ी। एक तो वह आप ही अपनेको सम्हालनेकी चेष्टा कर रही थी, दूसरे, इन दोनोंके विस्मयने उसे और भी विचलित कर दिया। तथापि अपनी चञ्चलताको दबाते हुए बड़े कष्टसे थालीको ज़मीनपर रख, मलिन मुखसे मुस्कुराते हुए उसने कहा,—"खिलानेकी बात भूल ही गयो क्या ?"

चारुने कहा—"नही, याद तो थी; पर ये खाना ही नहीं चाहते तो मैं क्या करूं ?"

रोते हुए बच्चेको पलंगसे उठाकर गोदमें लेती हुई सुरमा मृदु स्वरसे बोली—"क्यों, क्या भूख नहीं है ?"

चारु—"तुम्हीं पूछ देखो।"

अमरनाथ तुरत आप ही बोल उठा—"खाये लेता हूं। भूख ही नही थी, इसीसे कह रहा था कि नहीं खाऊंगा।"

सुरमाने देखा कि अमरनाथ उसको दुःखी करना नहीं चाहता। अपनी अयोग्यताको धिक्कार देती और अमरनाथकी ओर थोड़ी कृतज्ञता-भरी दृष्टिसे देखती हुई सुरमा बोल उठी—"खानेके लिये बैठिये तो भूख तुरन्त लग आयेगी।"

विना और कुछ कहे-सुने अमरनाथ आसनपर बैठ गया। चारुने हवा करनेके लिये पंखा हाथमें लिया। यह देखते ही

उसने कहा—"नहीं, नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। "सुरमा-का इशारा पाकर चारुने इस निषेधकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। कुछ देर बाद चारु बोली—"ओह! आप तो कह रहे थे कि भूख ही नहीं है ?"

"अब देखता हूं कि सामने थाली देखकर सोयी हुई भूख जग गयी है।"

अबतक सुरमा अच्छी तरह दिल खोलकर बातें नहीं कर सकती थी। वह बच्चेको गोदमें लिये अनमनी-सी होकर उसे खिला रही थी। चारुने कहा—"बस! और कुछ न लेंगे ?"

"नहीं, अब नहीं खाया जाता।"

सुरमाने कहा—"कह चुके थे कि भूख नहीं है, इसीलिये अब अधिक खाते लज्जा मालूम होती है।"

अमरनाथको हंसी आ गयी। उसने सुरमाकी ओर देखते हुए कहा—"यह तो बेवकूफ़ीकी निशानी है।"

चारु बीचमें ही बोल उठी—"तो आप कौनसी पण्डिताई दिखला रहे हैं ?"

"पण्डिताई नहीं दिखायी ? नहीं-नहीं करते हुए भी इतना खा गया !"

सुरमा फिर बोल उठी—"खानेका सामान बैठे-बैठे सामने आ गया, इसीसे। नहीं तो—"

चारु—"नहीं तो आलस्यमें पड़े-पड़े योंही टापते रह जाते। यही तो पण्डिताई है !"

अमर—"पण्डिताई ज़रूर है। जो चीज़ सामने नहीं है, उसके पीछे कौन दौड़ने जाये ? पर जो चीज़ सामने आ गयी, उसका जो अनादर करे, वही मूर्ख है।"

इस बार नितान्त सहज भावसे अमरनाथकी ओर देखते हुए सुरमाने मुस्कुराते हुए कहा—"कम-से-कम आधी थाली साफ़ कर डालते तो यह बात मानी भी जा सकती थी।"

"अच्छा, लो" कहकर अमरनाथने फिर डटकर भोजन करना शुरू किया और थोड़ी ही देरमें थाली साफ़ कर दी। दरवाज़ेके पास ही दासी खड़ी थी—वह जूठे बर्त्तन उठा ले गयी। अमरनाथ पान चबाता हुआ एक कुर्सी खींचकर उसीपर बैठ रहा। चारु मेज़परका सामान दुरुस्त करने लगी। सुरमा वहांसे खिसक जानेका बहाना ढूंढ़ने लगी, सोचते सोचते बोली—"चारु! बच्चेको दूध पिलाया या नहीं?"

"जीजी! अभी समय नहीं हुआ।"

"तुमको तो बड़ा समयका ज्ञान रहता है। मालूम होता है इसको भूख लगी है।"

सुरमा बच्चेको लेकर चली गयी। चारु बोली—"जीजीको एक-न-एक बहाना मिल ही जाता है। बच्चा अभी दूध नहीं पीयेगा, तोभी उसे लेकर चली गयीं!"

अमरनाथ चुपचाप रहा। थोड़ी देर बाद चारुने पूछा—"क्या सोच रहे हैं?"

अमरनाथने जड़ित कण्ठसे कहा—"योंही, और कुछ नहीं,

यही सोच रहा था कि आजकल तुम्हारी जीजी बड़ी मिलनसार हो गयी हैं। यह एकाएक परिवर्त्तन कैसे हो गया? ऐसा तो पहले कभी नहीं देखा था।"

चारु—"मिलनसार वे कब नहीं थीं?" हां, आपके साथ नहीं मिलती-जुलती। न मालूम, एकाएक उनके जीमें क्या आया कि तुमसे भी मिलने लगीं। शायद मनकी गति कुछ अच्छी हो गयी हो।"

अमर—"यही तो मालूम पड़ता है। अच्छा, चारु! देखो, तुम्हारी जीजी भी एक अजीब पहेली हैं। क्यों? वे कब किस ढंगसे रहती-चलती हैं, यह समझमें नहीं आता।"

चारु—"समझमें क्यों नहीं आवेगा। मैं तो उन्हें सदासे ऐसी ही देख रही हूं। हां, पहले कभी-कभी कुछ ऐसा व्यवहार कर बैठती थीं, जिससे अलगाव मालूम पड़ता था; पर अब तो बात ही बदल गयी है। पहले मैं भी नयी-नयी आयी थी। और आप तो उनके लिये मेरी अपेक्षा भी अधिक पराये आदमी थे।"

अमर बीचमें ही बोल उठा—"मैं भी तो उनके लिये नया ही था? मेरे साथ उनका कब कोई सम्बन्ध था?"

चारु गम्भीर मुख बनाये न जाने क्या सोचती रही। इसके बाद मृदु स्वरसे बोली—"इसमें अन्याय उनका थोड़े ही है? उनकी समालोचना करनेके बदले अपने अन्यायकी—"

अमरने झटपट चारुको अपने कलेजेसे लगाते हुए कहा—

"बस! बस! गुरुआनीजी! माफ़ कीजिये। बहुत डांट-डपट न कीजिये। अगर उक्त अन्यायका फल यही है, तो मुझे उसका कोई पछतावा नहीं है।"

चारुने अपनेको अमरनाथके पञ्जे से छुड़ाकर हंसते हुए कहा—"जाइये, आप बड़े वैसे हैं।"

अमरने मुंह खोलकर नही कहा, लेकिन क्या सचमुच वह बात उसको कभी याद नहीं आती? सुरमाको सबके साथ सच्चे स्नेहका व्यवहार करते देख क्या अमरनाथको कभी इस बातका सोच नहीं होता कि उसने ऐसे कर्त्तव्य-पालनमे दृढ़ और स्नेहमें कोमल उदार हृदयके ऊपर कितना बड़ा अत्याचार किया है? चारुके प्रति सुरमाका निश्छल प्रेम देखकर क्या अमरको अचम्भा नहीं होता? क्या रह-रहकर उसके मनमें श्रद्धा, भक्ति और विस्मयके साथ-ही-साथ एक अत्यन्त सूक्ष्म—पर साथ ही तीव्र-अनुतापकी व्यथा नहीं उत्पन्न हो आती? अवश्य होती थी; परन्तु उस भावको अमरनाथ साहस करके देरतक अपने हृदयमें नहीं टिकने देता था। उस भावका प्रवाह बाढ़के पानीकी तरह प्रबल वेगवाला होता था। इसीसे उसके आभास-मात्रसे अमर कांप उठता था। उसको ज़बरदस्ती रोक देनेके लिये वह सोचता कि केवल चारु ही मेरी स्त्री है, एक-मात्र वही मेरा सब कुछ है। सुरमाका कभी किसीके साथ ब्याह नहीं हुआ—हो भी नहीं सकता; वह भला इस दुनियाकी कोई स्त्री थोड़े ही है? अरे, वह तो देवी है। केवल संसारको प्रेमका दान देनेके ही लिये

किसीके मनमें न आवे, इसके लिये वह सुरमा सदा हंसी और आनन्दमें डूबी रहती थी। इसीसे उसे देखकर सहज ही यह मालूम पड़ता था कि सारे ब्रह्माण्डकी तृप्तिने उसके हृदयको आच्छन्न कर रखा है। इस काममें वह सफल भी हुई। चारुने तो बहुत दिनोंसे अपना सरल हृदय विश्वस्तभावसे सुरमाको सौंप दिया है। इसीसे इस समय अमर भी उसके अद्भुत व्यवहारोंसे सन्तुष्ट हो, नितान्त स्नेहशील आत्मीयकी भांति धीरे-धीरे सुरमाके सभी कामोंपर आन्तरिक श्रद्धा और विश्वास प्रकट करने लगा है। सुरमाको सदा अन्तरङ्ग बन्धुकी भांति घरके सभी छोटे-बड़े कामोंमें, बातचीतमें, अवकाशके समय हास्य-परिहास करनेमें सच्चे दिलसे भाग लेते देखकर अमरने उसे बहुत दिनोंसे देवी मान रखा है। पहले सुरमाकी स्वाभाविक गम्भीरता और समझमें न आनेवाला रहन-सहन देखकर अमर-को बीच-बीचमें अनिष्टकी आशङ्का होने लगती और वह घबरा उठता था। उस समय सुरमा जो टेढ़ी भौंह किये दिलकी गहराईतक पहुंचनेवाली भेद-भरी दृष्टि उसपर डालती, उससे विचलित होकर वह अकसर सोचने लगता कि इसके क्या मानी हैं? पहले अमरके मनमें यह धारणा जम-सी गयी थी कि सुरमाकी जब जो इच्छा होगी, तब उस कामको बिना पूरा किये न रहेगी; लेकिन इस समय वह बात याद करनेसे भी अमर अपने सामने आप ही लज्जित हो जाता है। इस समय स्नेहमय आत्मीयकी भांति सुरमाकी चिन्ता मनमें केवल आनन्द और

तृप्तिका ही सञ्चार करती है। इसी प्रकार सुरमा अपने सम्बन्धमे होनेवाली ग्लानिको भी धीरे-धीरे प्रतिक्षण अमरके मनसे दूर करती जाती थी।

उस दिन सन्ध्याके समय सुरमा अपने कमरेमें बैठी थी। कई दिनसे उसका जी उदास हो रहा था। उसको अपने सौतेले भाईके मरनेका समाचार मिला था। वही उसके पिताका एकमात्र पुत्र था। उसीसे बाप-दादोंका नाम बना रहनेकी आशा थी। अपने पिताकी अवस्थाकी कल्पना कर वह बहुत ही दु.खित हो रही थी। इससे कुछ ही पहले सुरमाकी सौतेली मा स्वर्ग सिधार गयी थीं।

चारुने कमरेमें आकर पुकारा—"जीजी!" कोई जवाब न मिलनेपर वह पास चली आयी और सुरमाके कन्धेपर हाथ रखकर खड़ी हो रही।

सुरमा,—"क्यों? चारु! अकेली क्यों हो? बच्चा कहा है?"

चारु,—"सो रहा है। चलो, जीजी! थोड़ी देर छतपर बैठें।"

सुरमा,—"ज़रा उनको भी बुलवा लो। वे क्या बाहर गये हुए हैं?"

चारु—"जीजी! तुम अकेली न रहा करो, इससे जी और भी घबराता है। चलो न, मैं उनको पुकार लाऊं।"

सुरमा—"तुम्हीं जाओ, जाकर बुला लाओ। मै थोड़ी देर बाद आऊंगी।"

चारु—"तब तो मैं भी यहीं बैठकर तुमसे बातें करूंगी।"

अमर आकर द्वारके पास खड़ा हुआ। सुरमाने हंसकर कहा—"यह लो, दूसरा प्यादा भी आ पहुंचा।"

सुरमाको उठते देख, चारु उसके पीछे-पीछे चली। तीनों ऊपर छतपर जा बैठे। नीचे चांदनीमें फुलवारी हंस रही थी। हवा चारों ओर मीठी-मीठी खुशबू फैला रही थी। सुरमाने चारों ओर देखकर कहा—"अभीसे इतनी चांदनी खिल आयी? आज कौनसी तिथि है?"

उसके उदासी-भरे स्वरको सुनकर अमर और चारु दोनो-ही-को दुःख हुआ। अमरने मृदु स्वरसे कहा—"त्रयोदशी।"

चारु बोली—"जीजी! इधर तुम कई दिनोंसे छतपर आयीं ही नहीं,इसीसे तुम्हें चांदनी अधिक फैलती देखकर अचम्भा हुआ।"

सुरमाने कहा—"हो सकता है।" इसके बाद अमरकी ओर फिरकर बोली—"अबतक कहां थे, सरकार? चारु तो भूतके डरसे भागकर यहां चली आयी थी।"

अमरने हंसकर कहा—"भूतसे ऐसी चिढ़ कबसे हुई?"

बात काटकर चारुने कहा—"वाह! जीजी! वाह! तुमको भी तो खूब बातें बनाने आता है। मैं भला भूतसे कब डरी थी?"

अमरने हंसते-हंसते कहा—"ठीक है। तुम्हारा डरना एक अचम्भेकी ही बात होती। तुम्हारी और भूतकी तो पुरानी जान-पहचान है। ख़ैर, जाने दो इन बातोंको। मैं तो आज तारिणीके ही फेरमें पड़ा हुआ था।"

सुरमा—"तारिणीके फेरमें ? क्या कोई नया झगड़ा पैदा हुआ है ?"

अमर—"नयी बात तो कुछ भी नहीं है। उसने दक्खिनके महालका जो बन्दोबस्त करना चाहा था, उसमें शायद तुमने ही बाधा डाल दी है—वहांकी प्रजा बिगड़ी हुई है।"

सुरमा—"सचमुच ?" इसके बाद ज़रा हंसकर बोली—"इस तरह अब अधिक दिन नहीं चलनेका।"

अमर—"किस तरह ?"

सुरमा—"यही औरतके इशारेपर इन्तज़ाम ! अगर आप कहें तो मैं अब उसको कोई सलाह-मशवरा न दूं। बस, ठीक-ठिकानेसे सब काम चला करेगा। इस इन्तज़ाममें तो उसको अपनी बेइज्ज़ती मालूम होती है।"

अमर—"नहीं, यह कैसे हो सकता है ? उसकी जो इच्छा हो करे।"

सुरमा—"लेकिन आप तो अब खेल और शिकार कुछ कम करें और इधर मन लगावें, तो मुझे झञ्झटसे छुटकारा मिल जाये।"

अमरने निरुद्विग्न भावसे कहा,—"अपनेको झञ्झटमें डाल कौन दूसरेको झञ्झटसे छुटकारा देना चाहेगा ?"

चारु बीचमें ही बोल उठी—"अच्छा, तो जीजी क्या कोई परायी हैं ?"

अमर—"अपनी जानको छोड़कर इस संसारमें और सभी पराये हैं।"

सुरमाने विस्मित भावसे कहा—"आपपर क्यों अपराधका टोकरा लदेगा ? आपने कोई अपराध थोड़े ही किया है ?"

अमर—"शायद कोई अपराध बन ही पड़ा हो।"

सुरमाने हंसकर कहा—"तब उसके लिये चारुसे माफ़ी मांगिये। मेरी तो आपने तारीफ़ ही की है।"

अमर कुछ देर चुपचाप रहा। इसके बाद मृदुस्वरमें बोला—"मैंने जान-बूझकर तो कोई अपराध किया नहीं, अनजानमें—बातों-बातोंमें शायद कुछ हो गया हो।"

सुरमाकी कनपटी लाल हो गयी। बड़े कष्टसे अपने आपको सम्हालकर अपने स्वभावके विपरीत ज़ोरसे हंसकर उसने कहा—"क्या खूब! क्या किसीको अच्छी बात कहनेसे भी अपराध लगता है ?"

चारु भी हंसती हुई बोली—"तुम दोनो ही अजीब ढङ्गके आदमी हो।"

सुरमाने आंखें उठाकर देखा कि अमर कुछ अन्यमनस्क हो रहा है। वह समझ गयी कि अमर उसकी पहेलीमें भूला नहीं। जीवनमें आज पहली ही बार अपनी पराजय स्वीकार कर उसने लज्जा और क्षोभके मारे सिर झुका लिया।

दूसरे दिन तीसरे पहर सबने सुना कि सुरमाके पिता उसे लिवा ले जानेके लिये आये हैं। बड़ी देरतक सुरमासे बातचीत कर जब उसके पिता बाहर बैठकख़ानेमें चले गये, तब चारुने उद्विग्न चित्तसे सुरमाके कमरेमें आकर देखा कि वह सिर नीचा

किये न जाने क्या सोच रही है। उसने पुकारा—"जीजी !"

चारुके स्वरमें उद्वेगका आभास पाकर सुरमाने स्नेहके साथ मुस्कुराते हुए कहा—"क्या है चारु ?"

"तुमने क्या निश्चय किया ? पिताजीने क्या कहा ?"

"चारु ! इस समय नहीं जानेके लिये कैसे कहती ? क्या यह उचित होता ?"

चारुने मुंह उदास किये हुए कहा—"उचित नहीं है, यह तो समझ रही हूं; पर क्या तुमसे ललाको छोड़कर जाया जायेगा ?"

"मुझसे क्या नहीं हो सकता, चारु ? तुम्हीं तो कहती हो कि मैं विचित्र जीव हूं।"

उसकी बात बीचसे ही काटकर चारुने कातर कण्ठसे कहा—"इस समय वह सब हंसी-दिल्लगीकी बातें किस कलेजे-से कहती हो, जीजी ! क्या सचमुच मैं तुम्हें वैसा ही जानती हूं ?"

लाख रोकनेपर भी सुरमाकी आंखोंमें आंसू आ ही गये। चारुके कन्धेपर हाथ डालकर वह मृदुस्वरसे बोली—"फिर चली आऊंगी।"

अमर कमरेमें चला आया और उन दोनोंको खिड़कीके पास उस अवस्थामें देख चुपचाप खड़ा हो रहा। सुरमा झटपट मुंह फेरकर खड़ी हो गयी और बोली—"यह क्या ? जासूसी कर रहे हो ?" चारुने भी अपनी आंखें झटपट पोंछ डालीं।

अमर—"जासूस बेचारा जासूसी तो करने चला; पर कोई संवाद न जान सका।"

सुरमा—"यह क्या? तब जासूसीका मोल ही क्या रहा?"

अमर—"कुछ भी नहीं। ख़ैर, जाने दो, कहो, तुमने क्या निश्चय किया?"

सुरमा—"मैं तो जाऊंगी।"

अमर चुप हो रहा। क्षण-भर बाद बोला—"वे तो आज ही जायेंगे।"

सुरमा—"आज ही? तब तो मुझे भी आज ही जाना होगा।"

अमर—"कितने दिनोंके लिये?"

सुरमाने सहसा उज्ज्वल नेत्रोंसे अमरकी ओर देखा और मृदु-गम्भीर स्वरसे बोली—"सो अभी कैसे कह सकती हूं। अगर सदाके लिये चली जाऊं तोभी क्या हर्ज है?"

दोनों हाथोंसे सुरमाके गलेमें गलबांही डालकर चारुने कहा—"जीजी! तुम्हारे मुंहसे यह कैसी बात सुनती हूं!"

उस समयतक सुरमा अपने आपेमें नहीं आयी थी। पिताकी स्नेहसे भरी और उसके लिये मर्मभेदी—आत्म-सम्मानका नाश करनेवाली बातें उस समय भी उसके मनमें उथल-पुथल कर रही थीं। ठीक ही तो है। मैं कौन हूं? किसलिये मैं यहां पड़ी रहूं किस सुखके मोहमें पड़कर मैं पिताकी स्नेह-भरी गोद छोड़कर यहां रहना चाहती हूं? सौतके प्रेमके मारे? अन्यायी पतिकी

घर-गृहस्थी सम्हालनेके लिये? छिः! दुनिया तो उपहासकी हंसी हंस-हंसकर निहाल हो गयी। मैं जो यह दिन-रात अपनी आत्माके साथ युद्ध कर रही हूं—अपने आपको भूले बैठी हूँ, उसका पुरस्कार क्या यही उपहास है? संसारसे परे होकर भी उसके किनारे बैठकर थोडी बहुत ठण्डी हवासे मैं जो अपने जीवनकी अनन्त ज्वालाको ठण्डा करना चाहती हूं, वह क्या इतना उपहासास्पद है?

सुरमाने देखा कि चारु चुपचाप उसके कलेजेमें मुंह छिपाये रो रही है। अमर सिर झुकाये चुपचाप खडा है। न मालूम उसके मनमें क्या-क्या भावनाएं उठ रही हैं। दासी सुन्दर स्नेहके पुतलेके समान अतुलको लिये हुए उसे देनेके लिये चली आ रही है। बालक प्यारसे व्याकुल हो दोनों हाथ फैलाये उसकी गोदमें चला आनेके लिये छटपटा रहा है। हाय! इस अबोध बच्चेका क्या यह कम पुरस्कार है?

सुरमाने हाथ बढ़ाकर बच्चेको गोदमें ले लिया और चारुका सिर ऊपर उठाकर झटपट उसका मुंह चूम लिया। अमर भी यहीं खड़ा है, यह बात मानों वह भूल ही गयी थी। परन्तु अबकी अमरपर नज़र पड़ते ही वह अपनी उत्तेजनाका स्मरणकर आप ही लज्जित हो रही। अमर चुपचाप खडा रहा।

सुरमाने मृदु कण्ठसे कहा—"चारु! तुम रोती क्यों हो? मैं तो कह रही हूं कि फिर चली आऊंगी। बहुत जल्द आनेकी चेष्टा करूंगी। क्या तुम्हें विश्वास होता है कि मैं अतुलको छोड़कर रह सकूंगी?"

आंखें पोंछते-पोंछते चारु भग्न-कण्ठसे बोली—"फिर तुमने सदाके लिये चले जानेकी बात क्यों कही?"

"तुमसे तो नहीं कही?"

"मुझसे नहीं—उन्हींसे कही; पर क्यों कही?"

"चारु! मैंने तो दिल्लगी की थी।"

"ऐसी मनहूस बात कहीं दिल्लगीमें कही जाती है?"

"मुझे तो जानती ही हो।" इसके बाद अमरकी ओर फिर-कर कुण्ठित मुखसे बोली—"जाते-जाते मैंने बड़ी अनुचित बात कह डाली, माफ़ करें।"

अमर अब भी चुप रहा। चारु बीचमें ही बोल उठी—"माफ़ी कैसी? जल्दी आ जाना, बस, सब माफ़-ही-माफ़ है, नहीं तो फिर माफ़ी नहीं मिलेगी—यह याद रखना।"

सुरमा मुस्कुरायी। इसके बाद बोली—"तुमको मध्यस्थ कौन बनाने जाता है?"

"क्या कह रही हो? तुमने जिनसे माफ़ी मांगी है, उन्हींकी ओरसे मैंने यह बात कही है।"

सुरमाने हंसते हुए अमरकी ओर देखा और पूछा—"क्यों? क्या इसी शर्त्तपर माफ़ी मिलेगी?"

अमरको विचलित कर देनेके बाद लज्जिता सुरमाको यही नहीं मालूम पड़ता था कि किस तरह वह अपनी भूलका सुधार करे। अमर कुछ चारु तो था नहीं कि एक ही बातमें मान जाये। तोभी सुरमा उसे पहलेकी तरह हंसा देनेकी चेष्टा करने लगी।

अमर किसी तरह प्रसन्न नहीं हो सका, तोभी कुछ भी न कहना बड़ा बुरा लगता है, यही सोचकर उसने कहा—"जब मेरे बोलनेसे ही ऐसा अनर्थ हो जाता है, तब मेरा चुप रहना ही ठीक है।" सुरमा फिर झेंप गयी और चुप हो रही।

चारुने कहा—"यह तुम्हारा बड़ा भारी अन्याय है। वे जा रही हैं, इसीलिये माफ़ी मांग रही हैं। ऐसी अवस्थामे भला कौन क्षमा नहीं प्रदान करेगा?"

अमर—"जब जाना ही है, तब क्षमाकी क्या आवश्यकता?"

चारु—"यह जाना क्या सदाके लिये है? तुम दोनों ही एकसे हो। अरे, यह तो दो दिनका आना-जाना है।"

अमरने फिर सुरमाकी ओर देखा। सुरमा ताड़ गयी कि अमर कुछ पूछना चाहता है, इसीसे उसकी ओर देखती और हंसती हुई बोली—"हां, पर दो दिनकी जगह चार दिन लग जायें, तो कोई आश्चर्य नहीं। मैं अभी इसका निश्चय नहीं कर सकती।"

चारुने कहा—"यह कोई बात नहीं है। असल मतलब यह है कि जहांतक हो सकेगा जल्दी ही चली आओगी।"

सुरमा—"हां।"

अमरने खुश होकर कहा—"फिर तो क्षमा मांगनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।"

सुरमाने भी हंसकर कहा—"देखिये, फिर दोषकी बात मत छेड़ियेगा।"

फिर पहलेकी तरह हंसी-दिल्लगी होने लगी। अपराधिनी सुरमा यथाशक्ति उन दोनोंके मनसे मलिनताकी अन्तिम रेखाको भी मिटा देनेकी चेष्टा कर रही थी। अन्तमें वह इस कार्यमें सफल हुई।

उसी दिन रातको अतुलको सौ-सौ बार चूमकर और चारुको तरह-तरहसे समझा-बुझाकर, अमरको तारिणीकी ओरसे हमेशा होशियार रहनेकी सलाह देकर और उससे इस बातका अनेक प्रकारसे अनुरोध करके कि वह अपनी ज़मींदारी-का काम ख़ुद देखा करे, सुरमा अपने पिताके साथ चली गयी।

कुछ दिन चारुने बड़े कष्टसे बिताये। अमरका शिकार खेलना या ख़ैराती अस्पतालमें जाना बन्द हो गया। अतुलको वह लाख पुचकारता-फुसलाता; पर वह उसके मानका नहीं था। इस समय वह बड़ा उपद्रवी हो गया है। वह दूध एकबारगी नहीं पीता, कोई दासी या चारु उसको वशमें नहीं कर पाती। वह सुरमाके सिवा और किसीकी बात सुनने-वाला नहीं था। चारुकी विपद देखकर अमर उसे बहुत तरहसे सहायता देता है। तोभी जब रातको अतुल 'मां-मां' कहकर रोने-चिल्लाने लगता है,तब लाख दुलारने-पुचकारनेपर भी चुप होनेका नाम नहीं लेता। लाचार, अमर जाकर छतपर बैठ रहता है। चारु झुंझलाकर कह उठती, "जीजी क्या अब नहीं आवेंगी? इस शैतानने तो मेरी जान आफ़तमें कर दी।" अमर हंसकर

कहता —"यह बात तो तुम जानो या तुम्हारी जीजी जानें, मैं क्या जानूं ?"

"मुझसे तो अब नहीं रहा जाता। आप जाकर जीजीको लिवा लावें।"

"इससे तो यही अच्छा है कि मैं यहां अतुलको लेकर रहूं और तुम्हीं जाकर उनको बुला लाओ।"

चारु क्रोधके साथ बोली—"वाह, हर बातमें आपको दिल्लगी ही सूझती है।"

अमरने हँसकर कहा—"और जो कुछ करनेकी आज्ञा हो वह कर सकता हूं—केवल यही नहीं कर सकूंगा। बोलो क्या करूं ?"

चारु —"और क्या कीजियेगा ?"

अमर—"क्या कहा ? मैं क्या ऐसा निकम्मा हो गया कि कुछ कर नहीं सकता ? देखो, चारु ! इतना अन्याय न करो—पाप लगेगा। पुराने मित्रको ज़रा भी तो मनमें जगह दो।"

चारु—"जाइये, क्या बक-बक करते हैं ? मैं जीजीको चिट्ठी लिखती हूं।"

अमर—"अच्छी बात है। तबतक मैं ज़रा टहल आता हूं।"

चारु पत्र लिखने बैठी—"जीजी ! अब और कितनी देर करोगी ? एक महीनेसे ऊपर तो हो गया। अब तो तुम्हारा अतुल मुझे बहुत हैरान कर रहा है। मेरे सम्हाले नहीं सम्हलता। वह

बड़ा शरारती हो गया है। तुम शीघ्र: चली आओ। अब और देर न करो।"

कई दिन बाद इस पत्रका उत्तर आया—"मेरी प्यारी बहन ! कुछ दिन और अतुलको सम्हालो। पिताजी बड़े दुःखित हो रहे हैं। अभीतक मुझे उनसे जानेकी बात कहनेका साहस नहीं होता

कुछ दिन बाद फिर पत्र आया—"मैंने पिताजीसे कहा कि अब मैं जाऊं, बस, वे रोने लगे। क्या करूं बहन ! मैं तो उभय-सङ्कटमें पड़ गयी हूं ।".

चारुने चिन्तित चित्तसे अमरको वह पत्र दिखलाया। अमरने उसे पढ़कर कहा—"ठीक ही है। इस समय तो आनेमें सचमुच ही सङ्कट है।"

चारु बीचमें ही बोल उठी—"तो क्या इसीलिये वह अब आयेंगी ही नहीं ?"

अमर—"सो मैं क्योंकर कह सकता हूं ? नहीं आयें तो उपाय ही क्या है ? क्यों, चारु ! यदि वह नहीं ही आयें, तो क्या तुम मेरे पास अकेली नहीं रह सकती ? कलकत्तेमें और कौन था ?"

चारु—"ऐसी बात न कहिये,इससे मुझे बड़ा दुःख होता है।"

अमरने कुछ देरतक गम्भीर मुख बनाये हुए न जाने क्या सोचा। मुंहसे आप-ही-आप यह बात धीरेसे निकल पड़ी—"आश्चर्य है !"

चारु—"कैसा आश्चर्य !"

अमर—"आश्चर्यकी तो कोई बात नहीं है। हां, यदि तुम्हारा जी ऐसा ही उदास हो रहा है तो चलो, हमलोग कहींकी सैर कर आयें।"

चारु—"नहीं, जीजी जल्दी ही आयेंगी। मैं उनके आनेपर ही कहीं जाऊंगी।"

दूसरे दिन सुरमाकी चिट्ठी आयी, "पिताजी बीमार हैं, जबतक वे अच्छे न हो जायेंगे तबतक मैं नहीं आ सकती। चारु! देखना, नाराज़ न होना।"

चारुने जबाबमें लिखा—"जीजी! मैं भला नाराज क्यों होने लगी? केवल यही विनती करती हूं कि हमें भूल मत जाना। पिताजीके नीरोग होते ही चली आना।"

धीरे-धीरे चार महीने कट गये। सुरमाके पत्रोंसे उसके पिताकी बीमारी दूर होनेका सम्वाद नहीं आया। इसीलिये वह भी नहीं आ सकी। एक दिन इन्हीं बातोंको लेकर चारु और अमरमें बातें चल रही थीं। अमरने कहा—"मुझ तो ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने जो ससुरजीकी बीमारीकी बात लिखी थी, वह कोरी बहानेबाज़ी थी।"

चारुने आश्चर्यमें पड़कर कहा—"नहीं, नहीं, यह तो कभी होनेका ही नहीं।"

अमर—"क्यों नहीं हो सकता? यही होना अधिकतर सम्भव है।"

चारु—"क्यों? कैसे सम्भव है?"

अमरने चुप्पी साध ली। थोड़ी देर बाद बोला—"क्या तुम्हारी समझमें कुछ भी नहीं आता? अच्छा, यह तो कहो, मेरे सुखसे उसको क्या प्रयोजन है? उसके जीवनकी कौन-सी सार्थकता है?"

चारु उदास हो चुप्पी साध रही। इसके बाद बोली—"जो हो, पर हमलोगोंको सुखी देखकर जीजी सच्चे जीसे सुखी होती हैं। आप चाहे जो कहें; पर मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है।"

अमरने तनिक मुस्कुराकर कहा—"चारु! अकेले तुम्हारा ही यह विश्वास नहीं है। मैं भी उसको ऐसा ही समझता हूं। पर क्या वह इस बातको कभी नहीं सोचती? और यदि नहीं ही सोचती हो, तोभी क्या उसके विषयमें हमारे कुण्ठित होनेका यथेष्ट कारण नहीं है? वह यदि अपने मनसे नहीं आना चाहती, तो हमारा उसपर क्या जोर है?" Oh dear, wh

चारु—"ज़ोर नहीं है। मैं तो जीजीको जबर्दस्ती ले आऊंगी"।

अमरने हंसकर कहा—"अच्छा, तो जाओ, ले आओ, ज़रा तुम्हारी भी ताक़त देखी जाये।"

पन्द्रहवां परिच्छेद

पश्चिमकी यात्रा

और भी दो महीने बीत गये। बड़े ही विरक्त चित्तसे अमर जिस दिन पच्छिम जानेकी तैयारी करनेके लिये चारुको कहनेवाला था, उसी दिन चारु हंसती हुई जाकर उससे बोली—"ज़रा एक वार मेरी करतून भी तो चलकर देख लें।"

"कैसी करतून ?"

"जीजीको बुला लानेकी।"

अमरने आश्चर्यके साथ पूछा—"अच्छा! आख़िर तुमने बुलवा ही लिया ?"

"चालये देख लीजिये न।" यह कह चारु दौड़ पड़ी। अच-रजमें डूबे हुए अमरनाथने उसके पीछे-पीछे जाकर देखा कि बात ठीक है। सचमुच सुरमा आ गयी है और अभिमानी बालक अतुलको तरह-तरहसे समझा-बुझा रही है। बहुत दिनों बाद माको देखकर अतुल मुंह फुलाये एक कोनेमें जा बैठा है। उसके दुबले-पतले शरीरपर हाथ फेरती हुई सुरमा उसको दुलार-पुचकार रही है। साथ ही उसकी आंखोंसे झर-झर आंसू बह रहे हैं।

अमर चुपचाप एक ओर खड़ा हो रहा, उसे इच्छा होती थी कि सुरमाको वाक्-बाणसे बेध डाले; परन्तु मुंहसे कोई बात ही नहीं निकली, चारुने हंसते-हंसते कहा—"जीजी! यहां केवल

रूठे हुए अतुलको ही नहीं मनाना है, और भी कितने ही रूठे वैंकेको
। मेरा गुस्सा तो तुम अब इस जन्ममें दूर ही न कर सकोगी

सुरमाने अपनी आंखें पोंछते हुए मुस्कुराकर कहा—"तुम नहीं गुस्सेके डरसे तो मैं चींटीके बिलमें जा छिपूंगी।"

चारु—"अच्छा, मुझे जाने दो, मेरी तो कोई गिनती लोगोंने नहीं है; पर और एक आदमी हैं, उनको कैसे मनाओगी?"

रूठे हुए लड़केको मनाकर, उसे अपनी गोदमें लेकर सु सकता, कहा—"उसके लिये भी मुझे चिन्ता नहीं है। वह गुस्स
अमरको देखते ही उसकी बात बीचमें ही रुक गयी। इस वहां
बाद उसने हंसकर कहा—"जाने दो, इकट्ठो ही सब गुस्सा-नाराज़।
ख़तम हो जाना अच्छा है।"

स्वामीकी ओर देखकर चारुने कहा—"ऐसे आदमीके साथ कभी बातें न करना।"

परन्तु स्वामीने उसकी बात नहीं मानी, बोल ही उठा—
"अरे, गुस्सा कैसा?"

सुरमा—"बाप रे बाप! चारुने तो मुझे ऐसा डरवा दिया रमा था कि मेरे प्राण सूख गये थे। बोली कि कोई मुझे क्षमा न गो। अतुल तो जैसे-तैसे मान गया।"

अमर—"तुम अपना कर्त्तव्य-पालन करने गयी थी, इसमें की राज़ होनेकी तो कोई बात ही नहीं है। जो ऐसे मौक़ेपर यह राज़ हो, वह पूरा पागल है।"

सुरमा—"ओह! चारुने तो मेरे होश-हवास ही

सुरमा—"परन्तु क्या ?"

अमर—"परन्तु, कहनेका मतलब यह कि इस संसारमें सभी स्वार्थी हैं। हम यदि अपने स्वार्थके लिये तुम्हें यहां रोक रक्खें तो शायद संसारके सामने किसी अद्भुत दोषके दोषी नहीं माने जायंगे।"

चारु बीचमें ही बोल उठी—"जीजी! अब उन बातोंको छोड़ो, चलो, हाथ-पैर धोओ।"

जाते-जाते सुरमा बोली—"अरे! मैं क्या भागी जाती हूं ? मेरा भी तो कुछ स्वार्थ है ?"

इसके बाद फिर पहलेकी ही तरह दिन कटने लगे। इसी बीचमें नायिबोंने मौक़ा पाकर चारों ओर मुक़द्दमेबाज़ोंकी धूम मचा रक्खी थी। सुरमा समझ गयी कि इसका कारण अमरनाथकी लापरवाही है। जब सुरमाने बहुत कहा-सुना तब शर्मके मारे अमरनाथने काम-काजकी ओर ध्यान देना शुरू किया। अमरका बहुत-सा समय मामलों-मुक़द्दमोंका निपटारा करनेमें ही जाने लगा। एक दिन बहुत ही दुःखित होकर चारुने कहा—"आजकल तो पहलेकी तरह गपशप भी नहीं होती। समय ही नहीं मिलता।" सुरमाने उसे डांटकर कहा—"गपशपके लिये क्या सारी सम्पत्ति पानीमें फेंक दी जायेगी ?"

परन्तु अब इस समय ज़मींदारीके कामकी ओर ध्यान देनेसे भी कोई नतीजा नहीं निकला। ऐसा बढ़िया मौक़ा पाकर [illegible] इलाक़ोंमें भीतर-ही-भीतर नायिबोंको अपनी

मुट्ठीमें कर लिया और उसे ख़ूब हत्थे चढ़ा लिया। इधर-मुक़द्दमे-पर-मुक़द्दमे दायर होने लगे। बड़े-बड़े महालोंमें प्रजाने तारिणीके अत्याचारसे ऊबकर सत्याग्रह कर दिया। कई ख़ून हो गये, कहीं-कहीं मार-पीट हो गयी। जमींदार और रैयतमें बमचख मच गयी। अमर और सुरमा तो यह हाल देख आसमानसे गिर पड़े। वकील, बैरिस्टर और गवाहोंके पीछे धन पानीकी तरह बहाया जाने लगा। इधर मालगुज़ारी दाख़िल करनेका समय आ पहुंचा। मालगुज़ारी दाख़िल नहीं होनेसे जमींदारी ही नीलाम हो जायेगी। लाचार सुरमाने अमरसे कहा—“ तुम तार भेजकर काशीसे चाचाको बुलवा लो।”

कई दिन बाद दीवान श्यामाचरण राय आ पहुंचे। आते ही बोले—“तुम लोग इस बुड्ढेको मरनेपर भी चैन न लेने दोगे?”

“नहीं, फिर हमारी जान कैसे बचेगी?”

विपद्-पर-विपद् आ पड़ी। एकाएक अतुलको टाइफ़ायड ज्वर होनेसे सबकी परेशानी सौगुनी बढ़ गयी। श्यामाचरण रायने सुरमासे कहा—“ बेटी! जगह-ज़मीनका काम मैं देखता हूं, बच्चेकी तीमारदारी तुम करो।”

सुरमा सब कामधन्धा छोड़कर रोगी बालकको लिये बैठी रहने लगी। उसे न नींदका ध्यान रहा, न भूखका। सुरमाकी अश्रान्त शुश्रूषा और बड़े-बड़े नामी-गरामी डाक्टरोंकी चिकित्सा-से भी अतुलकी बीमारी राहपर नहीं आयी। अब तो उस बालक-को ओरसे लोगोंको निराशा होने लगी। चारुकी समझमें तो कुछ

आता था नहीं, केवल सबके ढाढ़स-दिलासा दिलानेसे मन-ही-मन विश्वास करती हुई मलिन मुंह बनाये पुत्रकी ओर टकटकी लगाये रहती थी। उसे सुरमाके आश्वासनपर पूरा विश्वास था, तोभी बीच-बीचमें पूछा करती—"जीजी! मेरा बच्चा अच्छा होगा न ?"

सुरमा आशा दिलाती हुई कहती—"अरी! अभी बिगड़ा ही क्या है ? कोई डरकी बात नहीं है।"

सुरमा अमरनाथको बुलाकर कहती कि तुम चारुका जी बहलाते रहो। अमर उदास मुंह बनाये कहता—"तुम्हीं कहो न, अब मैं उसे कहांतक ढाढ़स बंधाऊं ? उसे क्या आंखें नहीं हैं ?"

रातको बीमारी बहुत बिगड़ गयी। बालक ज़ोर-ज़ोरसे हांपने लगा और लक्षण भी बिगड़ने लगे।

सुरमाने पासवाले कमरेमें बैठे हुए अमरको बुलाकर बालककी अवस्था दिखलाते हुए कहा—"चारुको बुला लाइये।"

भराये हुए गलेसे अमरने कहा—"उसे बुलाकर क्या होगा, सुरमा ! वह भली सोयी है, सोने दो।"

सुरमा—"मैं इसी मारे उसे बुलवा रही हूं कि कहीं मैं उसका अनमोल हीरा गंवा न दूं। उसने विश्वास करके यह थाती मुझे सौंपी है, उसको बुला लाइये। मैं उसकी थाती उसको सौंपकर निश्चिन्त हो जाऊंगी। शायद अब इस धनको मैं अपने हाथमें न रख सकूंगी। यह मेरे बचाये बचनेवाला नहीं दीखता।"

अमर—"इतना क्यों घबराती हो ? यदि इसे कोई

बचा सकता है तो तुम्हीं बचा सकती हो। भगवान्पर भरोसा किये मनको स्थिर करके बैठी रहो। देखो तो, वे क्या करते हैं! मेरे लिये नहीं, शायद तुम्हारे ही लिये वे दया करके इस बच्चेको बचा दें।"

पगलीकी तरह लपककर अमरका हाथ पकड़कर सुरमा बोली—"क्या मेरा बच्चा जी जायेगा? बोलिये, बोलिये, आपकी बातोंसे मुझे बड़ी आशा बंध रही है। मेरे स्नेहके इस एकमात्र आधारको तो कोई नहीं न छीन लेगा?"

अमर—"नहीं। मुझे इस बातका दृढ़ विश्वास है। भगवान् कभी तुम्हारे प्राणोंपर ऐसा वज्र न गिरायेंगे। वे हमें दुःख दे सकते हैं; पर तुम्हें नहीं।"

सुरमा कुछ सम्हलकर बैठ रही। बड़े प्यारसे बालकको अपनी छातीसे लगाकर बोली—"अतुल! बेटा!" परन्तु बालकने कोई उत्तर नहीं दिया। रात प्रायः बीत गयी—सबेरा हो चला। दोनों एकटक बच्चेकी ओर देख रहे थे। सबेरा होते-न-होते बालकको ज़रा चैन पड़ा—वह सो रहा। अमरने थर्मामीटर लगाकर देखा कि दो डिग्री ज्वर कम हुआ है। आश्वस्त होकर सुरमाने बड़े आग्रहसे कहा—"हे भगवन्! तुमने अतुलको इतनी भी शान्ति दी, यह तुम्हारी बड़ी भारी दया है।"

अमरने कहा—"अब तुम थोड़ी देर सो रहो, मैं बैठता हूं।"

सुरमाने हंसकर कहा—"मैं सो रहूं, यह नहीं होनेका। इस समय मुझे इतना विश्वास नहीं है कि इसे किसीके हाथमें

सौंपूं। चारु क्या करती रहती है? वह अभीतक नादान ही बनी फिरती है।"

अमरने कहा—"इसीसे तो उसे कोई कष्ट नहीं है। दूसरेपर निर्भर रहना ही मनुष्यके सुखका मूल है।"

लम्बी सांस लेकर सुरमाने कहा—"ठीक है। अब आप भी जाकर सो रहें।"

कुछ ही देर बाद अमर उठकर चला गया। सुरमा चुपचाप एक टक उस बालकका मुंह देखती बैठी रही। नींद मानों उसकी आंखोंको एकबारगी छोड़कर चली गयी थी। वह मन-ही-मन यही मना रही थी कि किसी तरह यह क़त्लकी रात कटे। सुबह अमरने आकर कहा—"देखो, अब तो मुझे डाक्टरकी चिकित्सापर विश्वास नहीं रहा। महीना-भर हो गया, कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। तुम कहो तो ज़रा मैं ही अपनी दवा-दारू शुरू करूं।"

सुरमाने कुछ सोचकर कहा—"ख़ैर, भगवान्का नाम लेकर आप दवा देना शुरू करें, अब तो मेरा भी विश्वास डाक्टरपरसे उठ गया।"

अमरने जब अपनी समझसे दवा देनी शुरू की, तब सब लोग "सर्वनाश! सर्वनाश!"की रट लगाने लगे, पर अमरने किसीकी न सुनी। लोगोंकी बातें सुन-सुनकर घबरायी हुई चारुने आकर सुरमासे कहा—"जीजी! सब लोग कहते हैं कि घरके डाक्टर-वैद्यकी दवा काम नहीं करती। यह क्या अच्छा काम हो रहा है?"

सुरमाने उसे ढाढ़स देते हुए कहा—"डाक्टरोंने ही इतने दिनोंमें क्या कर दिखाया! भगवान् चाहेगा तो इन्हींकी दवासे अच्छा हो जायेगा।"

धीरे-धीरे बालक अच्छा होने लगा। अमर और सुरमाके मनमें आशा बंधी, चारुके मुखड़ेपर हंसी दिखाई दी। ज्वर कम होते-होते एकदम जाता रहा; पर बच्चा बेतरह कमज़ोर हो गया। सुरमाको रातभर वैसे ही जगकर लिये रहना पड़ता है। घड़ी-घड़ी बेदाना-अनारका रस और अन्यान्य पथ्य उसके मुंहमें डालने पड़ते हैं, नहीं तो इस बातका डर रहता है कि कहीं गला सूखनेसे बालक बेहोश और निर्जीव न हो जाये। चारु बीच-बीचमें सुरमासे आकर कहती—"जीजी! तुम ज़रा अतुलको मेरी गोदमें दे दो और थोड़ी देर सो रहो। ज़रा देखो तो सही, दिन-रात जगती रहनेसे तुम्हारी क्या हालत हो गयी है! अबकी क्या तुम बीमार पड़ोगी! फिर तो भली विधि बनेगी।"

सुरमा—"विधि क्या बनेगी, चारु? अच्छा ही तो है। क्या तुम लोग मेरी तनिक भी सेवा न कर सकोगे?"

चारु—"तुम्हारी तरह सेवा तो मरनेपर भी हमलोग नहीं कर सकते।"

सुरमा—"अच्छा, जाओ, जाओ, बड़ा ज्ञान बघार रही हो। मैं कदापि बीमार न पड़ूंगी। मुझे कुछ भी न होगा।"

और दो-एक बार अनुरोध करके चारु वहीं लेट गयी, और लेटते ही सो गयी। बालक जग पड़ा और "मां, मां!" कहकर

पुकारने लगा। सुरमाने गरदन झुकाकर उसके मुंहके पास मुंह ले जाकर कहा—"बेटा!" मुंहके भीतर अनारका रस टपकाते ही बच्चेकी प्यास जाती रही। अपनी पतली दुर्बल भुजाको सुरमाके कन्धेपर डालकर उसने बड़े प्यारसे पुकारा—"मां!"

सुरमाने कहा—"क्या है, बेटा? मेरे लाल! क्या कहते हो? और दूं?"

"नहीं।"

"तब सो रहो।"

दोनों हाथोंसे सुरमाका हाथ पकड़े बालक निश्चिन्त मनसे सो रहा। लगातार डेढ़ महीनेतक रातको जगती रहनेके कारण सुरमाकी देह टूट गयी, आंखों और दिमाग़में कमज़ोरी आ गयी। चित्तकी उद्विग्नताके कारण अबतक आलस्य और अवसन्नता पास नहीं आने पाती थी; पर अब वे दोनों शरीरपर आक्रमण किये बिना न रह सके। इसीसे इच्छा न होते हुए भी, सुरमा दीवारसे लगकर ज्योंही बैठी, त्योंही उसकी आंखें बन्द हो गयीं। उसे यह नहीं मालूम कि वह कितनी देरतक इस तरह सोती रही; परन्तु एकाएक उसे ऐसा जान पड़ा, मानों कोई बच्चेको उसकी गोदसे छीनकर लिये जा रहा है। बस, सुरमा चौंक पड़ी और बोली—"कौन है?" उसने आंखें खोलकर देखा कि अमर है।

अमर—"लाओ, बच्चेको सुला दूं। ख़ूब आरामसे सो रहा है।"

सुरमा—" नहीं,नहीं, अभी जग पड़ेगा। इसका गला रह-रह कर सूख रहा है। इसे मेरी गोदमें ही पड़ा रहने दीजिये।"

अमर—" अच्छा, लाओ, मेरी ही गोदमें दे दो। तुम ज़रा सो रहो।"

सुरमा—"नहीं, नहीं, आप रातको मत जागिये, बीमार पड़ जायंगे। तिसपर यह बीमारी छुआछूतकी है।"

अमर—"रहने दो,इसका भय तो मेरी अपेक्षा तुम्हींको बहुत है। देखो,बहुत अनर्थ मत करो। सारी रात जागनेसे क्या लाभ है? सो रहो, तुम्हारी तन्दुरुस्ती बहुत ख़राब हुई जा रही है।"

उस दिन सुरमाको अधिक आपत्ति करनेकी शक्ति नहीं थी। अमरने ज्योंही बच्चेको अपनी गोदमें लिया, त्योंही नींदके मारे अलसाकर लुढ़क गयी। सिर ज़मीनमे ही पड़ रहा,उसे ऊपर उठानेकी भी शक्ति नहीं रही। उसे सोये-ही-सोये ऐसा मालूम पड़ा, मानों किसीने उसका सिर उठाकर उसके नीचे एक तकिया रख दिया। उस समय सुरमासे आँखें खोलते नहीं बनता था। अत्यन्त अधिक परिश्रम करनेके कारण वह मुर्देकी तरह बेहोश होकर पड़ रही।

सवेरे बहुत दिन चढ़ आनेपर जब चारुने आकर सुरमाको जगाया, तब उसने उठकर देखा कि चारु बच्चेको गोदमें लिये बैठी है। वह कह रही है—"जीजी! उठो न, स्नान-पूजा करके कुछ खा-पी लो।"

सुरमा लज्जित होकर उठ बैठी और बोली—"ओह! आज इतना दिन चढ़ आया! मैं तो ख़ूब सोयी!"

चारुने हंसकर कहा—"जाओ, अब उठकर नहाओ-खाओ। नींद बेचारीने कुछ अत्याचार तो किया ही नहीं।"

सुरमा—"जाती हूं। अब अतुल कैसा है?"

चारु—"अच्छा है। बोलता है। दो-तीन बार मेलिन्स-फूड खा चुका है।"

सुरमाने बालकके पास जाकर पुकारा। उसने भी झटपट जवाब दे दिया।

सुरमाने पूछा—"भूख लगी है?"

बालक बोला—"नहीं।"

चारुने कहा—"जीजी! तुम जाकर नहाती क्यों नहीं हो?"

सुरमा—"जाती हूं। एक-एक घण्टेपर दवा देती रही हो न? मैंने तो आज कुम्भकर्णको भी मात कर दिया। कल क्या तुम्हींने मेरी गोदसे अतुलको ले लिया था?"

चारु—"नहीं, शायद उन्होंने लिया हो। सवेरे आकर मैंने देखा कि वे बैठे हैं, तुम सोयी हो। उन्होंने मुझे तुमको जगानेसे मना किया।"

सुरमा कुछ लज्जित हुई कि मैं बालकके इतने निकट होकर भी इस प्रकार सोयी रह गयी और वे भी पास ही बैठे रहे! इस लज्जाको जबरदस्ती मनसे दूर कर सुरमा उठ खड़ी हुई।

धीरे-धीरे बालक एकदम चङ्गा होने लगा। शय्यापर उठकर बैठने लगा। इधर श्यामाचरण रायने ज़मींदारीके भी सारे झगड़े निपटा डाले। चारों ओर तारिणीकी कारस्तानी प्रकट

होने लगी। श्यामाचरणने कहा—“ मैं इस ससुरेको जेलमें दिये बिना न मानूंगा।”

सुरमा भी उसपर जी-जानसे जली हुई थी, इसलिये उसने इसमें बाधा नहीं दी। चारुसे भी साहस करके कुछ कहते न बना। केवल अमरने रोक-टोक की। वह बोला—“ नहीं, नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिये। जो कुछ उसको करना था, वह तो कर ही चुका। अब उसे छोड़ देना चाहिये।” कुछ देर बहस-मुबाहसा होनेपर अन्तमें अमरकी ही बात पक्की रही। तारिणी दूर कर दिया गया।

सुरमाने देखा कि धीरे-धीरे अमर और-का-और ही हुआ जा रहा है। अब उसका मन किसी काममें नहीं लगता, चिकित्सा-लयमे या शिकार खेलनेके लिये जानेकी अब उसे इच्छा ही नहीं होती। आज-कल वह पहलेकी तरह चारुके साथ हंसी-दिल्लगीमें भी दिन नहीं बिताता। उसने सुरमासे बातचीत करना या उससे घनिष्ठता रखना धीरे-धीरे छोड ही दिया है। कभी-कभी तो वह सुरमाको सामने खड़ी देखकर भी उससे बातें नहीं करता। पुकारकर कोई बात कहनेपर भी अनसुनी कर देता है और चुपचाप खिसक पड़ता है। सुरमा बड़ी चिन्तामें पड़ी कि इसके क्या मानी? यह शरीरका भावान्तर है या मनका विपर्यय? शायद मनका विपर्यय ही है। पर मनमें भी ऐसी कौनसी बात हुई जो अब चारुके साथ हंसी-दिल्लगी नहीं होती। और कोई बात-अटकलसे भी स्थिर कर ली जाती; पर अमरके बारेमें तो उस

तरहके भ्रमको भूलसे भी हृदयमें स्थान नहीं दिया जा सकता; क्योंकि वह जानती थी कि चारुपर उसका घनिष्ठ प्रेम है। फिर इस परिवर्त्तनका क्या अर्थ है?

इसका अर्थ चाहे जो कुछ भी हो, पर अमरके रङ्ग-ढङ्ग दिन-दिन बदलते ही चले गये। क्रमसे यह बात चारु भी ताड़ गयी। उसने एक दिन सुरमासे पूछा—"जीजी! आजकल उनकी मति गति ऐसी क्यों हो गयी है?" सुरमाने मौक़ा पाकर कहा—"सो क्या?" चारुने कहा—"वाह! तुम देखतीं नहीं कि अब वे शामको गपशप करने नहीं आते, पर पहले सौ काम छोड़कर गप-शप करनेके लिये सांझकी बैठक ज़रूर होती थी। लेकिन आजकल तो खाने आते हैं, तोभी दो-दो बातें हंसकर नहीं करते। शरीरका भी हाल वैसा ही है; पूछनेपर भी ठीक-ठिकानेसे जवाब नहीं देते।"

सुरमा—"मालूम होता है कि उनकी तबीयत भीतरसे कुछ ख़राब है। ज़रा पूछना तो सही।"

चारु—"तुम क्या नहीं पूछ सकतीं?" सुरमा न जाने क्या कहना चाहती थी, पर कहते-कहते रुक गयी। थोड़ी देर बाद बोली—"तुम्हारे पूछनेमें क्या हानि है?"

चारु—"अच्छा, पूछूंगी।"

सांझको छतपर बैठी हुई सुरमा और चारुमें ये ही बातें हो रही थीं। अतुल दासीके पास था।

बिन्दीने आकर कहा—"छोटी बहू! बाबू बुला रहे हैं।"

चारुने कहा—"यहीं भेज दे।"

थोड़ी देरमें अमरके आनेपर बोली—"अहा! बड़े भाग्य। न मालूम आज इस छतके ही भाग्य जग पड़े या हमारे?"

अमर सुरमाको देखकर ठिठक गया। आ तो चुका ही था, इसलिये उलटे पावों लौट जाना अच्छा नहीं मालूम पड़ा। लाचार, अपने लिये निर्दिष्ट स्थानपर आकर बैठ रहा। सुरमाने हंसकर कहा—"क्यों? आज क्या पुरानी बातें फिर याद हो आयी?"

अमरने कहा—"सो कैसे?"

सुरमा—"आज इस समय योंही गप-शप करके दिल बहलाने आये हैं या कोई कामकी बात है?"

अमरने लड़खड़ाते हुए स्वरमें कहा—"एक मतलबकी बात है?"

सुरमा—"अच्छा, तो मैं जाती हूं। ज़रा चलकर देखूं कि अतुल क्या कर रहा है।"

उसे रोककर चारुने कहा—"यह क्या, जीजी! आज तो तुम दोनों एक नया ही नाटक दिखला रहे हो। तुम्हारे जानेपर ही बातें होंगी? (अमरसे) बोलिये न, आपको क्या कहना है? क्या जीजीको जानेके लिये कह दूं?"

अमर चुप रहा। सुरमा समझ गयी; परन्तु बात क्या है यह जाननेकी प्रबल इच्छा हो आनेके कारण वह नहीं उठी।

चारुने कहा—"बोलिये न, कौनसी बात है? आप आजकल ऐसे क्यों हो गये हैं? क्या आपको कोई बीमारी है?"

बड़ी मुश्किलोंसे सङ्कोचको दिलसे दूरकर अमरने कहा—"हां, मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं कुछ दिनोंके लिये पश्चिम जाकर जलवायुका परिवर्तन करना चाहता हूं। बहुत दिनोंसे इसी सोचमें हूं। तुम भी चलोगी?"

चारुने आश्चर्य्यके साथ पूछा—"क्या अकेली मैं ही चलूंगी? जीजी नहीं जायंगी?"

अमरने दबी ज़ुबानसे कहा—"चाचा कहते हैं कि सबके चले जानेसे यहांका काम नहीं चलेगा।"

चारुने उदास होकर कहा—"तब मैं भी नहीं जाऊंगी।"

सुरमा उसकी बात काटकर बोली—"नहीं,नहीं, तुम ज़रूर जाओ। हवा-पानी बदल जानेसे अतुलका शरीर भी अच्छा हो जायेगा।"

चारु—"तुम यहां अकेली रहोगी?"

सुरमा—"अकेली क्यों रहूंगी? चाचाजी रहेंगे न।"

चारु—"नहीं, जीजी! तुम भी चलो। तुम्हारे नहीं जानेसे मैं बच्चेको कैसे सम्हालूंगी? इनके शरीरका हाल भी तो देख ही रही हो। सबसे पहले तुम्हारे सेवायत्नकी ही आवश्यकता होगी।"

सुरमा उठ खड़ी हुई, बोली—"तुम पगली हो गयी हो क्या? तुम इन दोनों बाप-बेटेकी ख़बरदारी करो। मैं तो घर-गृहस्थीको सम्हालती ही हूं। एक आदमी इस कामपर भी तो चाहिये?" यह कह सुरमा चली गयी। चारुने उदासीभरे स्वरसे कहा—"आप,जीजीसे अनुरोध क्यों नहीं करते?"

अमरने कहा—"मैं अधिक झंझट पसन्द नहीं करता। क्या अकेले मैं और तुम कहीं नहीं रह सकते ? जैसे कलकत्तेमें मैं तुम्हारे सिवा और किसीको नहीं जानता था, वैसे ही मैं फिर अकेले तुमको ही लेकर रहना चाहता हूं। चारु ! चलो, हम दोनों यहांसे भाग चलें।"

चारु चकित हो रही। उसने सोचा,शायद इनका सिर फिर गया है। अमरकी लाल-लाल आंखें देखकर उसका यह विश्वास और भी पक्का हो गया। उसने डरते-डरते कहा—"चलिये, जहां आप-का जी लगे, जहां आप अच्छे रहें, वहीं ले चलें।"

दूसरे ही दिन एक दासी और एक नौकरको साथ लेकर अमर और चारुने पश्चिमकी यात्रा की। जाते समय चारुने सुर-माको प्रणामकर रोते-रोते कहा—"जीजी ! मालूम नहीं, मेरे-भाग्यमें क्या लिखा है। आशीर्वाद दो कि मेरे अतुल और इनका मङ्गल हो।"

सुरमाने बड़े प्यारसे अतुल और चारुका मुंह चूमा। इसके बाद मन-ही मन बोली—"भगवान् क्या करेंगे, यह तो मैं नहीं जानती; पर मेरे हाथसे तेरी कदापि बुराई नहीं हो सकती। इसीसे मैं यह बिछोह भी सहे लेती हूं।" रोते हुए और जानेकी तनिक भी इच्छा न रखनेवाले अतुलका मुखड़ा जब उसकी आंखोंके ओझल हो गया, तब सुरमाने भी अपने कमरेमें जाकर भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये।

जब द्वार खोला तब देखा कि रात हो गयी है—चारों ओर

अन्धेरा छाया है। हृदयके भीतर भी केवल अन्धकार ही अन्धकार था। आज उसे बाहर-भीतर कहीं कोई ऐसी चीज़ नहीं दिखाई दी, जिसे कलेजेसे लगाकर वह आरामसे पड़ी रहे। कहीं कुछ सहारा नहीं दिखाई दिया। उसके जीवनमें केवल खर्च-ही-खर्चका हिसाब है—जमाकी ओर एक पाई भी नहीं।

सोलहवां परिच्छेद

ज़हरका घूंट
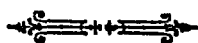
मुंगेर पहुंचकर अमरने एक खूबसूरत बंगला किरायेपर लिया और उसीमें डेरा-डण्डा जमाया। नीचे उत्तरवाहिनी गङ्गा और सामने ही सुन्दर फुलवाड़ी है। चैनकी सांस लेकर अमरने सोचा कि जीवनको उस नरागार चिन्ताको बङ्गालकी किसी देहातके एक अंधेरे कमरेमें ही फेंक आकर वह इस समय पिंजड़ेसे छूटे हुए पक्षीकी तरह स्वाधीन हो गया है—इस समय कोई उसके रास्तेमें रोड़े अटकानेवाला नहीं है। मौजमें आकर अमरनाथ सवेरे गङ्गामें घण्टों तैरा करता। तीसरे पहर चारु और अतुलको साथ लेकर पीरपहाड़, सोनाकुण्ड, कर्णचौरा, क़िला वग़ैरह स्थानोंको देखने जाता और टहल आता। नयी जगहमें आकर और स्वामीको फिर पहलेहीकी तरह हंसमुख देखकर चारु भी बड़ी खुशी हुई। उससे अतुलकी

वैसी कुछ सेवा नहीं बन पड़ती थी,तोभी स्थानके प्रभावसे अतुल-का शरीर भी दिन-दिन अच्छा होता चला गया। चारुने यह सब बातें पत्रमें सुरमाके पास लिख भेजीं। साथ ही उसने यह भी लिखा कि वहांका काम-काज निबटाकर तुम शीघ्र ही किसीको साथ लेकर यहां चली आओ, नहीं तो मुझे बड़ा दुःख होगा। सुरमाने लिखा—

"अभी काम-काजका झंझट मिटा नहीं है; इसलिये मैं अभी नहीं आ सकती। देखना, अतुलकी पूरी-पूरी ख़बरदारी रखना। क्रमसे मुङ्गेरकी सैरका शौक़ पूरा हो गया। एक दिन चारुने अमरसे पूछा—"अब घर कब चलियेगा?"

"बस, इतने ही दिनोंमें ऊब उठी?"

"तो फिर कब चलियेगा?"

"जब मेरी इच्छा होगी।"

"नहीं, मेरा मन तो अब नहीं लगता। चलिये,घर चलें।"

"और कुछ दिन ठहर जाओ। ज़रा मेरे सिरपर हाथ रखकर तो देखो।"

चारुने स्वामीका ललाट स्पर्श करके कहा—"अरे! यह क्या? आपको तो ज्वर हो आया है? आप इतनी देरतक गङ्गामें क्यों नहाया करते हैं?"

"वाह! मैं क्या जानता था कि मुझे ज्वर हो आयेगा? सिरमें बड़े ज़ोरका दर्द है। आज रातको मैं कुछ भी न खाऊंगा। तुम अतुलको ख़ूब सावधानीसे रखना।"

दूसरे दिन सवेरे थर्मामीटर लगाकर अमरने देखा कि १०४ डिग्रीका बुखार हो आया है। उसके सारे शरीर और छातीमें वेदना थी। सिर-दर्द भी बड़े ज़ोरका था। अमरने चारुसे कहा-"यह रंग-ढंग तो ठीक नहीं है। चारु! तुम डाकृरको बुलवाओ। घर भी तार भेजो कि चाचा जल्द चले आवें। परदेशका मामला है। अकेली तुम घबरा जाओगी।"

चारुको रुलाई आ गयी। वह रोती हुई बोली—"क्या होगा? आप जीजीको क्यों नहीं सङ्ग ले आये! अतुलकी देह भी गरम मालूम होती है।"

"एं! अतुलकी देह भी गरम है! यह तो बड़ी आफ़त आयी। तुम अकेली कैसे क्या करोगी?"

"जल्दीसे तार भेजकर जीजीको बुलवा लेना चाहिये।"

अमरने बड़े ज़ोरसे गरजकर कहा—"नहीं, हरगिज़ नहीं।"

चारुने स्वामीके सुर्ख़ चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—"आपको क्या हो गया है? बिना जीजीके आये हम इस विपत्तिसे कैसे उद्धार पायेंगे? मैं तो अभी उन्हें तार देती हूं।"

"नहीं, चारु! ऐसा मत करो। क्या तुम मेरी सेवा नहीं कर सकोगी? अच्छी तरह कर सकोगी। जीको कड़ा कर लो। चाचाजीको ख़बर भेज दो कि चले आयें।"

"अच्छा, ऐसा ही होगा। आप बहुत बोलिये मत।"

"मुझसे बोला नहीं जाता। सिर घुमा जाता है।"

डाकृरने आकर परीक्षा करके कहा—"टाइफ़ाइड-ज्वरके

विष शरीरमें थे—अत्याचारके कारण उन्हें आक्रमण करनेका मौक़ा मिल गया है। ऐसी कोई चिन्ताकी बात तो नहीं है, पर ख़ूब सावधानी रखनी होगी।"

उस समय अमरको होश नहीं था। रात बीत गयी। सारा दिन और सारी रात चारु अमरके पास बैठी रही और सिरपर यू-डी-कलोन और बर्फ़ मलती रही। अतुलकी तबीयत अलग ही ख़राब थी, इसीलिये वह दासीकी गोदमें पड़ा-पड़ा रो रहा था। चारु बीच-बीचमें उसे भी अपनी गोदमें ले लेती थी। एक तो परदेश, दूसरे घरका और कोई आदमी पास नहीं—चारु मारे घबराहटके भगवान्‌को गुहराने लगी।

वह रात भी बीत गयी। दो-ही दिनकी दुश्चिन्तासे चारु महीनोंकी बीमार-सी मालूम पड़ने लगी। सुबहके ८ बजे दर-वाज़ेपर एक गाड़ी आ खड़ी हुई। चारु दौड़ी हुई उस गाड़ीके पास आयी और "जीजी!" कहकर पुकार उठी; पर श्यामाचरण रायको देख घूंघट काढ़कर अलग हट गयी। श्यामाचरण रायके पीछे-पीछे गाड़ीसे उतरकर सुरमा उसके पास चली आयी। चारुने भर्राये हुए गलेसे पुकारा—"जीजी!" सुरमाने उसे आगे कुछ भी कहनेका मौक़ा न दिया। बोली—"तुम उन्हें अकेले सोते छोड़कर क्यों चली आयी?"

"अकेले नहीं हैं। दासी बैठी है।"

"अतुलका क्या हाल है?"

"अच्छा है।"

श्यामाचरण राय रोगीके कमरेमें चले आये। चारुने सुरमा-को छातीसे लगाकर रुद्धकण्ठसे कहा—"क्या होगा, जीजी?"

"चारु! भय न करो। डरनेकी कोई वात नहीं है। चलो देखूं तो कि इस समय उनका क्या हाल है?"

दोनों उसी कमरेमें आ पहुंचीं। श्यामाचरण रायने अमरके पास वेठकर पुकारा—"अमर!"

सवेरेसे अमरकी तवीयत कुछ-कुछ सम्हल गयी थी। श्यामाचरणकी बोली सुनकर उसने आखें खोल दीं। धीरे-धीरे वोल उठा—"चाचाजी! आप आ गये? चारुने तार भेजा होगा?"

"हां, अव तुम्हारा जी कैसा है?"

"सिरमें वडा दर्द है। वातें करते हुए भी कष्ट होता है। अभीतक तवीयत अच्छी नहीं है।"

अमरके आंख मूंद लेनेपर श्यामाचरणने नौकरसे डाक्टरको वुला लानेके लिये कहा और आप वाहर चले आये। अमरने पानी मांगा तो सुरमाने पास जाकर पानी पिलाया और माथेपर हाथ रखकर देखा कि ज्वरकी गरमी अव कितनी है। इसके वाद उसने धीरेसे चारुसे कहा, "तुम जाकर कुछ खा-पी लो और थोड़ी देर सो रहो। मैं यहां वैठती हूं।"

"तुम वैठोगी? जीजी! अभी तुमने नहाया भी नहीं, मुंहमे पानी भी नहीं डाला!"

"मैं अपना समय देखकर सव कुछ कर लूंगी। विन्दी आयी है। उससे कह दो कि चाचाजीके नहलानेका इन्तज़ाम करे—

उनको समयपर खिला-पिला दो। तुम्हारी आंखों और चेहरेके देखनेसे मालूम होता है कि यदि तुम थोड़ी देर न सो रहोगी तो तुमसे फिर खड़ा नहीं हुआ जायेगा। जाओ, तुम थोड़ र सो रहो।"

चारु चली गयी। अमर रह-रहकर दर्दके मारे छटपटाने लगता था। सुरमाने पूछा—"क्या सिर दबा दूं?"

चौंककर अमरने पूछा—"कौन है?" उसने आंखें खोल दीं, देखा कि सुरमा बैठी है। विस्मयके साथ पूछा—"अच्छा! तुम कब आयी?"

"अभी चाचाजीके साथ चली आ रही हूं।"

"चाचाजीके साथ? वे किधर गये? मैंने तो उन्हें देखा ही नहीं।"

सुरमाने कोई जवाब नहीं दिया। उत्तेजनाका आकस्मिक आघात जब जाता रहा, तब निश्चिन्तताकी एक शान्त छाया अमरके, रोगसे पीले पड़े मुखड़ेपर झलकने लगी। क्षण-भर बाद अमरने कहा—"मैंने सोचा था कि शायद तुम न आ सकोगी।"

"क्यों?"

अमरने इसका कोई जवाब नहीं दिया, परन्तु सुरमाको देखकर उसके प्राणोंके भीतर जिस मुर्त्तिमती आशाका उदय हुआ— जो भरोसा बंध गया—उसे वह दबा न सका। बोला—"चारुने तुमको देखा है?"

"हां"

"तुम कितनी देरसे यहां बैठी हो ?"

"थोड़ी ही देरसे।"

अमरने आंखें बन्द किये मानों मन-ही-मन कहा—"मालूम होता है कि अब मैं जल्द ही आराम हो जाऊंगा।" सुरमाने कुछ भी नहीं कहा, चुपचाप अमरका सिर सहलाती रही।

डाक्टरने आकर कहा—"कोई डरकी बात नहीं है; पर जैसा ज्वर है, उसको देखते हुए इक्कीस-बाईस दिनसे पहले ज्वर छूटनेकी कोई आशा नहीं है। सेवा-यत्नमें भी ख़ूब सावधानी रखनी होगी। ठीक घंटे-घंटे दवा देनी होगी और क़ायदेसे पथ्य देना होगा।"

श्यामाचरणने कहा—"इस ओरसे आप निश्चिन्त रहें।"

कई दिन तो बीमारी घटनेके बदले बढ़ती ही चली गयी। ज्वर बराबर बना रहता, कभी एक डिग्री कम होता, तो तुरन्त ही दो डिग्री बढ़ जाता। सारे शरीरमें असह्य वेदना थी, न रातको नींद आती थी, न दिनको—केवल यन्त्रणा और क्लान्तिके मारे सर्वदा तन्द्राका-सा मोह रोगीको घेरे रहता था। सुरमा अपनी प्रकृतिके अनुसार नींद-भूखका सोच छोड़कर दिन-रात रोगीकी तीमारदारी करती रहती थी। उसने अतुलको चारुके जिम्मे कर दिया था और उसके विषयमें सावधान रहनेको सचेत कर दिया था। लाचार, चारु दिन-रात अतुलके ही झगड़ेमें फंसी रहती थी। जिन्दी-दासी और लोगोंकी खोज-ख़बर लिया करती थी।

रातके बारह बजे हैं। सारे दिन सुरमाकी सहायता करनेमें लगे हुए श्यामाचरण राय थके-मांदे होकर एक दूसरे कमरेमें सो रहे हैं ? बाहर नौकरके हाथमें पंखेकी रस्सी है सही, पर उसका हाथ नहीं चलता। सुरमा दीवारसे उढ़ककर अमरके पास ही बैठी हुई है। कमरेकी निस्तब्धताको केवल घड़ीकी टिक-टिककी आवाज़ ही दूर करती है। पासवाले कमरेमें अतुल बड़ी देरसे मचल-मचलकर रो रहा था और बेचारी चारुको परेशान किये हुए था। इस समय वह भी चुप है। सुरमा चुपचाप बैठी हुई कितनी बातें सोच रही है। उसकी अचल बनी हुई आंखें क्रमशः नींदके मारे बन्द हुई जा रही हैं; पर वह रह-रहकर चौंक उठती है और बलपूर्वक आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगती है। कभी वह रोगीके सिरपर हाथ फेरने लगती है और कभी आंखें मलकर घड़ीकी ओर देखने लगती है कि रोगीको दवा देनेका समय हुआ या नहीं।

सहसा एक तरहकी आहट पाकर उसकी नींदका झोंका एकदम ही उड़ गया। उसने देखा कि अमर पलंगपर उठ बैठा है। डरी हुई सुरमा रोगीके पास आयी और उसके दोनों हाथ ज़ोरसे पकड़कर बोली—"यह क्या ? आप कहां जा रहे हैं ?"

अमरने जड़ित स्वरमें कहा—"चारु ! मुझे छोड़ दो, मैं गङ्गा नहाने जाऊंगा।"

"सो रहिये, सो रहिये, मैं सिरपर बर्फ़ देकर पंखा झलती हूं, अभी शरीर ठण्डा हो जायेगा, सो जाइये।"

"वर्फ ? पङ्का ? नहीं, नहीं, मैं गङ्गा नहाने जाऊंगा। मुझे छोड़ दो।"

जानेमें वाधा पड़ जानेसे अमर और भी उत्तेजित हो उठा, बोला—"चारु! मुझे छोड़ दो। मैं कह रहा हूं, छोड़ दो। मुझे क्यों रोकती हो? आज तुम्हें क्या हो गया है।"

"आपको क्या हो गया है, जो मेरी बात नहीं सुनते? चारु किसे समझ रहे हैं?"

"क्यों? तुम्हीं तो चारु हो? क्या नहीं हो? फिर तुम कौन हो? बोलो, कौन हो?"

सुरमा केवल चुपचाप अमरकी आंखोंपर नज़र गड़ाये उसको रोके हुए थी। देखते-देखते उसे ऐसा मालूम हुआ कि बीमारी की वजहसे जो अमरकी आंखोंमें अस्वाभाविकता आ गयी है, उसके अतिरिक्त भी एक प्रकार ही उज्ज्वलता उसकी आंखोंमें छायी हुई है। सुरमा उसी तरह अमरको थामे हुए थी। एका-एक न जाने क्यों अमरकी आंखें नीचेकी ओर देखने लगीं। उसने थोड़ा सुस्तानेके बाद कहा—"ऐं! तुम हो? मेरी बीमारीमें भी तुम्हीं मेरे पास आ पहुंची? उसी तरह सेवा-यत्न करके मुझे भी आराम करोगी? मुझे सुखी बनाओगी? लेकिन किस लिये? मुझे तुम क्यों सुखी बनाती हो? क्यों आराम पहुंचाती हो? मुझे तुमसे इतनी सेवा करानेका अधिकार ही क्या है? किस हक़से—किस अधिकारसे मैं तुमसे इतनी सेवा लूं? तुम्हीं किस लिये—"
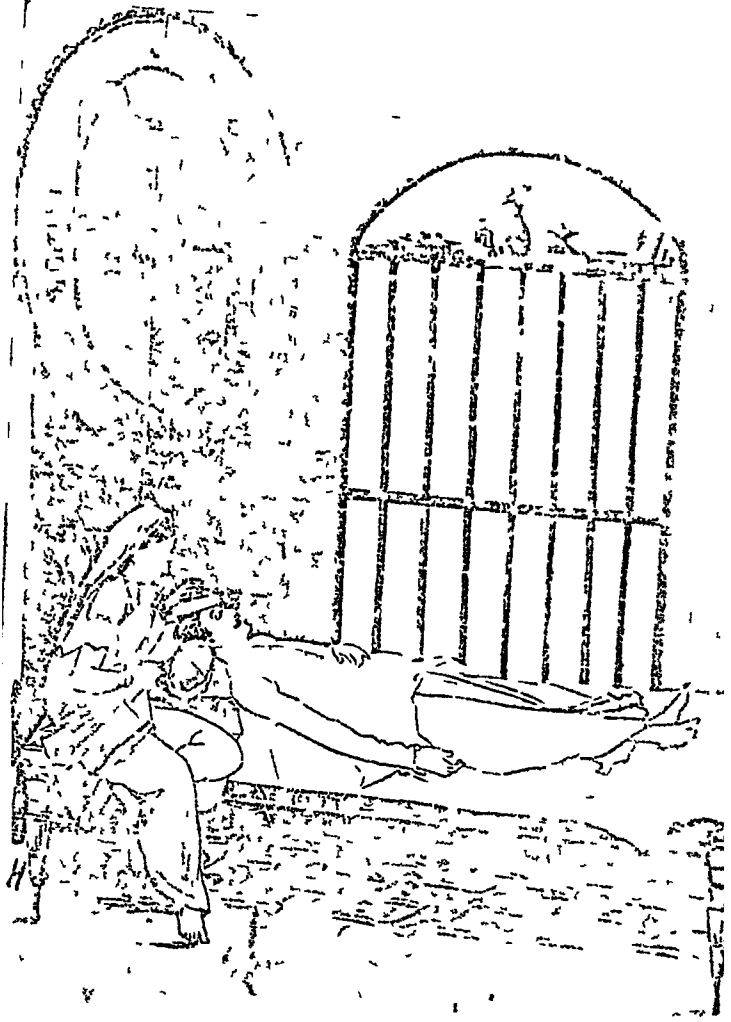
सुखदाने अमरको जबर्दस्ती बिछावनपर लिटा दिया। एक हाथसे उसके सिरपर बर्फका थैला रखकर दूसरे हाथसे पंखा झलना शुरू किया।

(पृष्ठ २३३)

सुरमाने अमरको ज़बरदस्ती बिछावनपर लिटा दिया और एक हाथसे उसके सिरपर बर्फ़का थैला रखकर दूसरे हाथसे पंखा झलना शुरू किया। थोड़ी देर आंखें बन्द किये रहनेके बाद अमरने धीरे-धीरे कहा—"चारु! चारु! आओ, मेरे पास चली आओ। पंखा झलो, मेरे पास बैठ जाओ। छिः! चारु! तुम्हें ज़रा भी बुद्धि नहीं है। किससे तुम इतनी सेवा ले रही हो, मेरी भी सेवा करवा रही हो, यह क्या तुम्हारी समझमें नहीं आता? चारु! जिसे मैंने कभी कुछ नहीं दिया उसका ऋण मेरे ऊपर अब और न चढ़ाओ। तुम्हीं आकर मेरी सेवा करो। आओ, चली आओ।"

सुरमाने चौंककर एक बार दरवाज़ेकी ओर देखा। वह जिस बातकी शंका कर रही थी, वही हुई। अमरके ज़ोर ज़ोरसे बोलनेसे चारुकी भी नींद खुल गयी और वही इस समय दरवाज़ेके पास आकर चुपचाप खड़ी है। सुरमा शर्मके मारे चारुकी ओर न देख सकी। उसने सिर झुका दिया। क्रमशः निस्तेज होकर अमर चुप हो रहा। सुरमाने फिर दरवाज़ेकी ओर देखा तो चारुको उसी तरह सिर झुकाये खड़ा पाया।

सुरमाने मृदु स्वरसे पुकारा—"चारु!" चारु धीरे-धीरे पांव रखती हुई कमरेके अन्दर आयी और सुरमाके पीछे खड़ी हो गयी। सुरमाने पूछा—"अतुल तो अब रोता नहीं है न? सोया हुआ है?"

"हां।"

"ओह! चारु! मैं तो अभी बेतरह डर गयी थी।" चारुने जिज्ञासा भरे नेत्रोंसे सुरमाकी ओर देखते हुए मृदु स्वरसे कहा—"जीजी! क्या बीमारी बहुत बढ़ गयी है? नहीं तो तुम इतना क्यों——"कहते-कहते घोर लज्जाके मारे चारुने सिर नीचा कर लिया।

सुरमाने उसे ढाढ़स देते हुए कहा—"सिरपर बड़ी देरसे बर्फ़ नहीं रखी गयी, इसीसे एकाएक सिर गरम हो गया था, और कोई बात नहीं है।" दूसरे कमरेमें पड़ा अतुल रो पड़ा, इसीसे सुरमाने बड़े मृदु स्वरसे कहा—"चारु! थोड़ी देर तुम्हीं पंखा झलो, मैं बच्चेको सुलाकर अभी आती हूं।" मानों सहसा किसी अप्रत्याशित आघातसे व्यथित होकर दीनता और करुणा-भरे नेत्रोंसे देखती हुई चारुने कहा—"जीजी! क्या उनकी इस समयकी बातोंका भी तुम ख़याल करोगी?"

चारुका निर्भरता और व्याकुलता-पूर्ण कण्ठस्वर सुनकर तुरन्त ही सुरमाका आत्मकर्त्तव्यज्ञान लौट आया। बड़ी देरकी दुर्बलता एक ही क्षणमें दूर हो गयी। सुरमाने कहा—"अच्छा, तो तुम्हीं जाओ। देखती हूं, इन्हें ज़रा नींद आ गयी है। रोनेकी आवाज़ सुनकर जग पड़ेंगे।" चारु वैसे ही चुपचाप चली गयी।

कुछ देर बाद श्यामाचरण रायने आकर रोगीकी नाड़ी देखी और सुरमासे कहा-"नाड़ीकी गति तो इस समय अच्छी है। बेटी! तुम थोड़ी देर सो क्यों नहीं रहती?"

"मैं बीच-बीचमें बैठी-ही-बैठी ख़ूब सो लेती हूं। इस तरह सोनेसे मुझे कुछ भी कष्ट नहीं होता। आप ही थोड़ी देर और जाकर सो रहें। दिनको आपको बड़ा परिश्रम करना पड़ा है। यदि रातको भी जगियेगा तो देहकी क्या हालत होगी ?"

श्यामाचरण चले गये, पर कथोपकथनकी आहटसे हो, या अतुलके रोनेकी आवाज़से हो, अमर फिर जग पड़ा। लाल-लाल आंखोंसे सुरमाकी ओर एकटक देखता हुआ बोला—"फिर ! फिर भी चली आयी [illegible]ग आया, तोभी मेरी जान नहीं छोड़ी। दया करो—मेरे ऊपर दया करो। मेरे पास न आओ। मुझसे अब सहा नहीं जाता। जाओ, जाओ, चली जाओ, नहीं तो मुझीको चला जाने दो।"

अमरको फिर बड़े जोरसे पलंगपर उठकर बैठनेकी चेष्टा करते देख सुरमाको इस बार अपने शरीरका पूरा बल लगाकर उसे बिस्तरेपर ज़बरदस्ती सुला देना पड़ा। हवा करने या सिरपर बर्फ़ रखनेका भी मौक़ा न मिला; क्योंकि उसके दोनों हाथ तो अमरको पकड़ रखनेमें ही फंसे हुए थे, इसके सिवा रोगके उस विकार-जनित अस्वाभाविक बलका मुक़ाबला करनेके लिये रोगी-पर उसको अपने शरीरका पूरा बल लगाना पड़ा था। कुछ देर बाद धीरे-धीरे अमर फिर निश्चेष्ट-सा हो गया और धीरे-धीरे बोला—"नहीं जाने दिया ? तब रहो, तुम भी रहो—अब मत जाना। अब नहीं जाने पाओगी—बस इसी तरह बैठी रहो।"

अमरने जब एकदम देह ढील दी, तब सुरमा एक हाथसे

अमरके सिरपर बर्फ़का थैला रखे हुई दूसरे हाथसे पंखा झलने लगी और अमरके सिरके पास खिसककर चली आयी। उस समय उसकी देह थर-थर कांप रही थी। रोगकी प्रबलतासे ही रोगी इस प्रकार अण्डबण्ड बकने लगा था, यह जानते हुए भी उसकी देह क्यों कांप रही है या मन क्यों चञ्चल हो रहा है, यह सुरमा स्वयं बड़ी देरतक न समझ सकी। यह प्रलाप तो प्रलाप-मात्र ही नहीं है— यह न जाने कैसी उत्तेजना है!

थोड़ी देरमें शय्याके पाससे उठकर उसने ठण्डे पानीमें अपना हाथ-मुंह धोया और घरकी रोशनी थोड़ी धीमी कर कमरेमें लटकते हुए पंखेकी रस्सीको ज़ोरसे खींचा। बाहर बैठे हुए पंखा खींचनेवालेने देखा कि मैंने जो पंखा खींचनेमें ढिलाई की है, उसीके लिये यह मुझे चेतावनी दी गयी है। यह समझकर वह ज़ोर-ज़ोर से पंखा खींचने लगा। कमरेमें भर्राटेकी हवा चल पड़ी। सुरमाने फिर चुपचाप अविचलित भावसे अमरके सिरहाने आसन जमाया।

क्षण-भर बाद चारु फिर आकर चुपचाप शय्याके एक ओर बैठ रही। उस समयतक उसके चेहरेका पीलापन दूर नहीं हुआ था। चारुकी उन दीन-भीत आंखोंको देखकर सुरमाको बड़ा दुःख हुआ। वह समझ गयी कि पहले-ही-की तरह बर्ताव न करनेसे चारुकी यह लज्जाकी वेदना दूर न होगी। रोगके मारे रोगीका सिर फिर गया है—इसलिये उसकी इस क्षणिक उत्तेजनाकी ओर ध्यान नहीं देना ही उचित है—यह समय भी इन

सड़ी सड़ी-सी बातोंपर ध्यान देनेका नहीं है। सुरमाने फिर अवि-चलित भावसे अपने कर्त्तव्यमें मन लगाया। अमरके ललाटपर पसीना छूट रहा है, यह देख वह उसे रुमालसे पोंछने गयी। उसने देखा कि अमर जगा है और टुकुर-टुकुर देख रहा है। इस समय उसकी दृष्टि बहुत कुछ स्वाभाविक है। उस समय खिड़की-की राहसे तरुणी-उषाका आलोक धीरे-धीरे घरमे आ रहा था। सुरमाने मृदुस्वरसे पूछा—"अब तबीयत कैसी है?"

"अच्छी है, तुम क्या रात-भर इसी तरह अकेली बैठी रही हो?"

सुरमाने मीठे स्वरसे कहा—"नहीं, चारु भी तो थी। एकाध बार चाचाजी भी आये थे। अब तो सिर भारी नहीं है न?"

"नहीं। लेकिन बड़ी कमज़ोरी मालूम होती है—बातें करते हुए भी कष्ट होता है।"

स्वामीके ललाटपर हाथ रखकर सुरमाने कहा—"तब क्यों बहुत बातें करते हैं? चुपचाप सो रहिये।"

अमरको ठीक-ठिकानेसे बातें करते देख और सुरमाके भाव-में भी किसी तरहका उलट-फेर न देखकर चारुनेभी चैनकी सांस ली और घरका कामकाज देखने चली गयी। सुरमाने भी भीतर-ही-भीतर निश्चिन्तताका अनुभव किया। रातको अमर जो बक-झक करने लगा था, उससे वह कुछ-कुछ डर गयी थी। वे बातें न जाने क्यों उसके कलेजेमे विंध-सी गयी थीं। अब वह यही समझ रही है कि वह रोगीका प्रलाप-मात्र था। अमरके

पूर्व-भावमें कोई अन्तर न देख उसका यह विश्वास और दृढ़ हो गया।

सुरमाके कहे अनुसार जब अमरने फिर आंखें बन्द कर लीं, तब सुरमाने उठकर खिड़की और दरवाज़ा खोल दिया। दीया बुझाकर पलंगपर बैठते ही उसने देखा कि अमरके फिर पसीना छूट रहा है। यह देख वह उसका ललाट पोंछकर धीरे-धीरे पंखे-से हवा करने लगी। उस समय उसकी आखें भी नींदके मारे झंपी जा रही थीं। इसी समय सहसा किसीके पंखा खींचनेसे वह चौंक पड़ी। अमरने ही कांपते हुए हाथोंसे पंखा खींचा था। सुरमाने कहा—"क्यों ?"

"शायद तुम रात-भर जगी ही रह गयी—रहने दो। अब पंखेकी ज़रूरत नहीं है।"सुरमाने पंखा नीचे रख दिया। अमरने कहा—"तुम सारी रात अकेली क्यों जगी रहती हो ? और भी किसीसे मदद ले लिया करो। मैं अब अच्छा हूं—तुम जाकर सो रहो।"

सुरमा आखें मींजती हुई बोली—"अब क्या सोऊंगी ? दिन हो चला।" इसके बाद उसने दवा ढालकर पिलायी और टेम्परेचर लेकर देखा कि ज्वर बहुत ही कम है। उसने श्यामाचरण-को बुलाकर डाक्टरको बुलवानेके लिये कहा। डाक्टरने आकर कहा—"अब कोई डरकी बात नहीं है—शीघ्र ही इनका ज्वर दूर हो जायेगा। परन्तु आज बड़ी सावधानी रखनी होगी। ठीक समयपर दवा और पथ्य देना चाहिये।"रातको चारु या और

किसीको जागनेके लिये कहकर अमर सो गया। श्यामाचरण-और चारु दोनों-ही-ने सुरमासे आराम करनेके लिये कहा। सुरमाने कहा—"आज तो मैं किसी तरह न मानूंगी, कलसे देखा जायेगा।"

क्रमशः अमर आरोग्य होने लगा। श्यामाचरणने सुरमासे कहा—"बेटी! तुम जानती ही हो कि मैं किस तरह सब काम गड़बड़में ही डाल आया हूं। अब कोई डरकी बात नहीं है। सेवा-यत्नके विषयमें मैं तुमको और क्या सिखलाऊंगा? अगर तुम कहो तो मैं चला जाऊं।" सुरमा और अमर दोनो-ही-ने सम्मति दे दी, तब वे सब प्रबन्ध ठीक करके देशको लौट गये।

बीमारीसे अमर बहुत कमज़ोर हो गया था। कुछ दिनतक तो वह पलंगपरसे नीचे नहीं उतर सकता था। चारु अतुल और घर-गृहस्थीको सम्हालनेमें ही परेशान थी। केवल कभी-कभी आकर अमरके पास बैठ रहती थी। वह सदा सुरमापर ही सब भार सौंपकर निश्चिन्त रहती थी। रोगीकी परिचर्या करनेमें वह अपनेको एकबारगी असमर्थ समझती थी।

परदेशमें उस सङ्गी-हीन, क्लान्त,अवसन्न रोग-शय्यापर अमर-की एक-मात्र सङ्गिनी सुरमा ही थी। परिचर्या करने, शुश्रूषा द्वारा पीड़ा दूर करने, रोगसे कातर प्राणोंमें आनन्दका सञ्चार करने, अवसन्न हृदयमें उत्साहका अङ्कुर उगाने और मीठी-मीठी बातोंसे अकेलापन दूर करनेमे सुरमा ही अमर-नाथका एक-मात्र सहारा थी। जिस समय प्राण अत्यन्त

अधीर हो जाते हैं, उस समय मनुष्यके हृदयमें दूसरोंका स्नेह प्राप्त करने और स्नेहमय आत्मीय स्वजनोंका सङ्ग-सुख उपभोग करनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है। उस समय जो प्रेम पहले कभी निगाहतले नहीं पड़ता, मनके किसी कोनेमें जगह नहीं पाता, वह भी हृदयके परदे-परदेमें अपनी शाखा-प्रशाखा फैला देता है। चिरदिनसे ऊसर खेतमें पड़ा हुआ स्नेह-का बीज भी हृदय-धाराके सिञ्चनसे सहसा अङ्कुरित और पल्लवित हो जाता है। संसारके जटिल पथमें जबतक शरीर अच्छा-भला रहता है, हृदयमें सरसता भरी रहती है। उस समय जो स्नेह, श्रद्धा या भक्ति हृदयकी गुप्त गुफामें पैदा होकर वहीं छिपी रहती है, वही स्नेह, श्रद्धा या भक्ति परम दुर्बल अवस्थामें रोगशय्यापर पड़े रहनेके समय, जब दूसरोंका ही मुंह जोहते रहना पड़ता है, उस समय सौ-सौ धाराओंमें प्रवाहित होने लगती है और उस श्रद्धा-के पात्र या प्रीतिके भाजनको अभिषिक्त करना चाहती है—उस आश्रय-स्थानको बड़ी ललकसे दोनों बाहें फैलाकर हृदयसे लगाते हुए अपने हृदयकी स्नेह-भरी व्याकुलता और आश्रयप्रार्थी भावको बतला देना चाहती है। दुर्बल मन, जैसा स्नेह पानेके लिये व्यग्र हो उठता है, वैसा ही स्नेह प्रकट करनेके लिये भी।"

उस समय सन्ध्या हो आयी थी। खुली हुई खिड़कीसे फूलोंकी भीनी-भीनी सुगन्ध आकर कमरेको सुगन्धित कर रही थी। अमरनाथ सेजपर पड़ा था। सुरमा एक तरफ बैठ उसको

बङ्किम-बाबूका लिखा हुआ एक उपन्यास सुना रही थी। सामने तिपाईपर रोशनी रखी थी। अमर मन लगाकर कहानी सुन रहा था। उसने यह किताब नहीं पढ़ी थी, सो बात नहीं है, तोभी शक्तिहीन, क्लान्त मस्तिष्कको लाचार यह बहुत बार पढ़ी हुई पुस्तक भी बड़ी मनोहर मालूम हो रही थी। थोड़ीदेर कहानी सुननेके बाद चारु बोली—"बस, जीजी! अब यह पोथी-पत्रा बन्द करो। मेरा जी जल रहा है।" सुरमाने पुस्तक नीचे रख दी। अमरने बाधा देकर व्यग्रकण्ठसे कहा,—"नहीं, नहीं, थोड़ा और पढ़ो।"

"तब तुम्हीं लोग पढ़ो-सुनो, मैं अतुलके पास जाती हूं। मुझे यह सब झंझट अच्छा नहीं लगता।" यह कह चारु उठकर चली गयी। सुरमाने पढ़ते-पढ़ते देखा कि अमरको रोशनी बर्दाश्त नहीं होती, इसलिये वह हाथसे आंखोंपर परदा किये हुए है। पर उसका जी कहानीमें ऐसा लगा हुआ है कि वह रोशनी हटानेको भी नहीं कहना चाहता। सुरमाने धीरेसे मुस्कुराकर कहा—"आंखोंको रोशनी बर्दाश्त नहीं होती, इस बातकी भी चेतावनी और ही कोई देगा, तब ज्ञान होगा। रोशनी हटानेको भी कहते नहीं बनता?"

अमरको भी हंसी आ गयी। सुरमाने रोशनी हटाते हुए कहा—"दिमागकी कमज़ोरीकी हालतमें देरतक किसी काममें मन लगाये रहना ठीक नहीं होता। बस, आजकी पढ़ाई यहीं-तक रहे।"

"नहीं, थोड़ा और पढ़ो।"

सुरमा पढ़ने लगी। बङ्किम-बाबूकी हृदय-द्राविणी रचनाको सुनकर उसकी सूखी आंखोंमें भी जल भर आया। यह देख सुरमाने अपनी आंखें पोंछते और भर आये हुए गलेको साफ़ करते हुए कहा—"बस, अब आज यहींतक।"

अमरने भी अपनी आंखें पोंछकर कहा—"हां, अब रहने दो।"

"रातके आठ बज गये, अबतक मैंने खिड़कियोंको भी बन्द नहीं किया—याद ही नहीं रही।" यह कह वह खिड़की बन्द करने चली, पर अमरने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "अभी कुछ देर और खुली रहने दो—बड़ी मीठी ख़ुशबू आ रही है। थोड़ा गप-शप करो।"

"क्या गप-शप करूं?"

"जो कुछ हो—पर इसका मतलब यह नहीं कि बाघ-सियार-की कहानी सुनाने लग जाओ।"

"इसके सिवा और हम स्त्रियोंको आता ही क्या है? अगर यही सुनना चाहें तो एकाध सुनाऊं।"

"अच्छा, और-और बातें करो। आज तुम्हारे पिताजी चिट्ठी आयी है न? उन्होंने क्या लिखा है?"

"बहुतसी बातें हैं—मुझे वे अबतक नन्ही नादान ही समझते हैं। बहुतसी बातें लिख भेजी हैं। अन्तमें लिखा है कि मैं कुछ दिन और तुम्हारी राह देखूं।"

अमर थोड़ी देर चुप रहकर बोला—"तुमने क्या उत्तर देनेका विचार किया है?"

अभीतक कुछ भी नहीं सोचा है। आप ही कहिये न; मैं उन्हें क्या जवाब दूं?"

"लिख दो कि मैं नहीं आ सकती।"

सुरमा धीरेसे मुस्कुराकर बोली—"यह तो महज़ लड़कपनकी बात है। यदि वे लिखें कि हाथ-पैर तो साबित हैं ही, फिर क्यों नहीं आ सकती?"

"हाथ-पैर तो सब किसीके होते हैं; इसीलिये क्या सब कोई सब समय, सब जगह, जा सकते ? क्या चारु इस समय कहीं जा सकती है?"

सुरमा फिर हंसी, बोली—"कहां चारु और कहां मैं? यह भी महज़ लड़कोंकी-सी बात है।"

"लड़कोंकी-सी बात नहीं है—अतुलको और हमलोगोंको छोड़कर तुम भला इस समय कहीं जा सकती हो?" सुरमाने सिर नीचा कर लिया। उसने थोड़ी देरतक इसी बातको सोचा कि इसका उत्तर देना चाहिये या नहीं। उसे चुप देख अमरने फिर पूछा—"बोलो, जा सकती हो?"

सुरमा फिर मुस्कुरायी, बोली—"आप ही कहिये न—मैं जा सकती हूं या नहीं?"

अमरने कुछ सोचकर कहा—"जा सकती हो।"

"अच्छा, तो लो, मैं जा सकती हूं।"

अमरने हंसकर कहा—"पर मैंने दिलकी बात नहीं कही है। मैंने केवल तुम्हारी बात जाननेके लिये ऐसा कहा है।"

"इसमें भी दिलकी बात और ऊपरकी बातका पचड़ा लगा ;है ? ख़ैर , जाने दीजिये, अब तो समझ गये न ?"

"हां ।"

"क्या समझे ?"

"ठीक बतला दूं ?"

"हां, बतला दीजिये ।"

"तुमसे जाया नहीं जायगा ।"

सुरमाने हँसकर कहा—"क्यों ?"

"क्यों ? यह मैं नहीं कह सकता । मुझे ऐसा ही मालूम पड़ता है ।"

"मनकी बातका क्या ठिकाना ? वह अक्सर आदमीको ग़लत बातें बतलाया करता है ।" कहते-कहते सुरमाने उठकर खिड़की बन्द कर दी । उसे जाते देख अमरने कहा—"जाती कहां हो ?"

"ज़रा देखूं, चारु किधर चली गयी ।"

कुछ दिन और बीतनेपर अमर और भी चङ्गा हो गया । सुरमाने कहा—"अगर घर चलनेका इरादा हो, तो चलिये ।"

अमरने कहा—"और कुछ दिन बीतने दो ।"

"तो मैं अब जाती हूं ।"

उसकी ओर देख अमरने गम्भीर भावसे कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा ।"

सुरमासे इस बार एक ताना मारनेका लोभ नहीं छोड़ा

गया।| बोली—"मैं तो आते समय अपनी इच्छासे नहीं आयी थी।"

चारुने कहा—"जीजी! पूछो तो| सही।"

अमर:गम्भीर भावसे टहलने लगा। सुरमाने हंसकर कहा—"मैं आपके पांवों पड़ती हूं, मामूली-सी बातका इतना ख़याल न किया करें, नहीं तो मैं जीने नहीं पाऊंगी।"

तीसरे पहर अमरनाथ बग़ीचेमें एक बेंचपर बैठा हुआ इसी बातकी मन-ही-मन आलोचना कर रहा था। वह कैसे उद्भ्रान्त भावके हाथोंसे छुटकारा पानेके लिये भाग आया था, यह बात किसीको कहनेकी नहीं थी। परन्तु भाग्य सीधा नहीं था, इसीसे उसने फिर उसे उसी भँवरमें ला पटका। अब क्या हो! इस समय न:तो उसमें उद्धार पानेकी शक्ति ही है, न इच्छा ही है। इस समय तो वह उसी भंवर-जालको अपने प्राणोंकी सर्वोत्तम सफलता समझकर उसीमें डुबकियां लगा रहा है। अब इस कठिन भंवर-जालसे उसका छुटकारा कहां होने पाता है? शायद वह छुटकारा पाना चाहता भी नहीं।

अतुलको लिये हुई सुरमा और चारु भी आकर एक बेंचपर बैठ रहीं। अमरने कहा—"अब आनेका समय हुआ है! मैं बुद्धू की तरह यहां अकेला बैठा मक्खियां मार रहा था और तुम दोनों मज़ेसे गप्पें लड़ा रही थीं।"

चारुने कहा—"आपको किसने मना किया था कि हमारे पास न आइये? आप भी हमारे पास चले आते।"

सुरमाने कहा—"क्यों पढ़ना-लिखना आता ही है,कुछ पढ़ते ही रहते। अकेले रहनेसे क्या लाभ था ?"

"लिखना-पढ़ना दूसरे समय, इस समय तो गप-शप होना ही ठीक है।"

सुरमाने हंसकर कहा—"घर जानेपर यह गपोड़बाज़ी एकदम छोड़ देनी होगी।"

"इसी डरसे तो मैं घर जाना नहीं चाहता। जितने दिन इस तरह मौजसे कट जायें,उतना ही अच्छा।"

चुपचाप बैठा रहना बाबू अतुलचन्द्रको अच्छा न लगा। वे सुरमाका कपड़ा पकड़कर खींचने लगे। अमरने विरक्त होकर कहा—"यह तो बड़ा ऊधम कर रहा है। इसे जाकर दासीको दे आओ।" सुरमा चली गयी। अमर और चारुमें:बड़ी देरतक बातें होती रहीं। इसके बाद अमरने कहा—"यह लो, वह तो अबतक लौटकर आयी ही नहीं।"

"या तो कहीं चली गयी या अतुल उसे आने ही नहीं देता होगा। मैं बुलाये लाती हूं।"

चारुके चले जानेपर अमर अधीर होकर पद-चारण करने लगा। बड़ी देर हो गयी, तोभी न तो सुरमा आयी, न चारु। यह देख, अमर भी घरकी ओर लौट चला और धीरे-धीरे सुरमाके कमरेमें प्रवेश कर देखा कि सुरमा किसीको चिट्ठी लिख रही है। दबे पांवों पीछेसे पास पहुंचकर अमरने उसकी कलम छीन ली। सुरमाने चौंककर पीछे फिरकर देखा। हंसीके साथ-साथ उसके चेहरेपर सुर्ख़ी दौड़ गयी, बोली "यह क्या ?"

"हमलोग तो तुम्हारे आसरे बैठे रहे और तुम यहां आकर आरामसे चिट्ठी लिखने बैठ गयीं। वाह! खूब हो।"

"बड़ी ज़रूरी चिट्ठी है। चिट्ठी लिखनेकी भी तो फुर्सत मिलनी चाहिये?"

"मैं क्या तुम्हें हर समय अपने पास ही बैठाये रहता हूं? और ही किसी समय लिख लेती?"

"अच्छा कलसे ऐसा ही होगा। आज तो जान छोड़िये।"

"तुम लिखो। मैं यहीं बैठता हूं।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।"

"किसे पत्र लिख रही हो।"

"चाचाजीको।"

"देखूं तो सही।" कहकर अमरने चिट्ठी ले ली और सुरमा गनखायी-सी होकर रोकती रही, तोभी उसने उसे पूरा पढ़ ही डाला। पढ़ते ही वह गम्भीर मुख बनाये चुपचाप खड़ा हो रहा। सुरमाने नाराज़-सी होकर कहा, "दूसरेकी चिट्ठी पढ़ना बड़ा बेजा है।"

"हुआ करे। पर यह तो कहो, तुमने चाचाको यह किसलिये लिखा है कि वे मुझे घर आनेके लिये लिखें? तुम्हें यहां किस बातकी तकलीफ़ है?"

सुरमा झेंप गयी और चुप हो रही।

"दया करके कहो, क्या तकलीफ़ है? बोलो न!"

"कोई तकलीफ़ नहीं है।"

"फिर घर जानेके लिये इतनी परेशानी क्यों है?"

"योंही।"

"योंही नहीं—मैं समझ रहा हूं।"

अमरकी ओर देखती हुई सुरमा बोली—"क्या?"

"तुम मुझपर नाराज़ हो।"

फिर तुरन्त ही सूखी हंसी हंसकर सुरमाने कहा—"ख़ैर? यही सही।"

"सही-वहीकी बात नहीं। अगर मैं कोई काम ऐसा करता होऊं जो तुम्हारे मनके अनुकूल नहीं हो, तो तुम रोकती क्यों नहीं? मैं उसी समय सावधान हो जाया करूं।"

बात ऐसी कोई नहीं थी—बहुत ही मामूली बात थी, परन्तु अमरकी बोली सुनते ही मानों सुरमाकी उत्तर देनेकी शक्ति जाती रही। अमरने फिर कहा—"तुम जो सोच रही हो वह मैं नहीं समझता, यह मत जानना। मैं सब समझ रहा हूं, पर मैं पूछता हूं कि इसमें तुम्हारा क्या नुकसान है? अगर इस तुच्छ आमोदसे हमें थोड़ा आराम मिल जाता है, ज़रा जी बहलता है तो तुम्हें यह क्यों खलता है?"

सुरमा क्या जवाब दे? उसका सिर चकरा रहा था। सदासे आत्मसंवरणका अभ्यास होनेपर भी आज उसके मुंहसे बात नहीं निकलती थी। ऐसे प्रश्नका कोई कठिन उत्तर कैसे दिया जा सकता है? अमरने सहसा उसका हाथ पकड़ लिया और भर्रायी हुई आवाज़में बोला—"मैं आज कई दिनसे तुमसे एक बात पूछना चाहता हूं। तुम मुझे उसका ठीक-

ठीक जवाब देना। मैं और कुछ नहीं चाहता, चाहनेका अधिकार भी मुझे नहीं है, सिर्फ़ यही पूछता हूं कि इतनी घनिष्ठता या महज़ ऐसा सङ्ग रहना तो दूरके सम्बन्धियोंमें भी हो सकता है; फिर मैं क्या उनसे भी गयाबीता हूं? क्या मेरे प्रति तुम उतना भी नहीं कर सकती? मैं क्या उतना भी पानेका अधिकारी नहीं हूं?"

अरे! यह तो वही उन्मत्तता, वही प्रलाप है, जो रोग-शय्या-पर पड़े हुए अमरके-मुंहसे सुन और उसकी आंखोंसे प्रकट होते देखकर सुरमाकी देह सिहर उठी थी—मन चञ्चल हो गया था। आज क्या सबल-स्वस्थ अमरपर भी फिर उसी विकारका प्रभाव पड गया है? परन्तु नहीं—अमरकी आंखोंसे, चालचलन से, बातचीतसे वह दिलमें ऐसी किसी बातके होनेका कितने ही दिनोंसे अनुमान कर रही थी। भक्ति, पूजा, श्रद्धा और आग्रह-के सिवा न जाने और कैसा एक भाव था! वह भाव कौनसा है? यह क्या उसी भावका रूपान्तर है? इस समय क्या वही भाव इस मनहूस समयमें बिना चाहे, बिना बुलाये, आ पहुंचा है? लेकिन क्यों? छिः! अब क्यों?—सुरमाने देखा कि अब चुप रहनेसे काम नहीं चलेगा, तोभी उसने अपना हाथ खींचकर यथासाध्य स्वाभाविक रीतिसे ही कहा—"अरे, कहीं पागल तो नहीं हो गये हैं?"

अमरने आगे बढ़कर फिर उसका हाथ पकड़ लिया और उत्तेजित कण्ठसे कहा—"हां, पागल ही हो गया हूं। तुम मेरी बातका जवाब दो।"

सुरमा फिर हाथ खींचकर बड़ी देरतक हटकर खड़ी रही। इसके बाद गर्दन उठाकर स्थिर उज्ज्वल आंखोंसे अमरकी ओर देखती हुई अकम्पित कण्ठसे बोली—"नहीं, आपको इतना भी नहीं मिल सकता। आप परायेसे भी बढ़े-चढ़े हैं। क्या आपको मालूम नहीं है कि अपना आदमी दूर चले जानेपर सबसे बढ़कर पराया हो जाता है? लेकिन तोभी मैं जो आपपर इतनी स्नेह-ममता रखती हूं, वह केवल अतुल और चारुके लिहाज़से—इस बातको समझ लीजियेगा। वे ही मेरे सर्वस्व हैं।"

"जानता हूं—जानता हूं, तोभी मैं क्या किसी बातकी उम्मीद नहीं कर सकता? रत्ती-भर भी नहीं? मैं चाहे जैसा हूं—पापीसे भी पापी हूं—तोभी मेरे-तुम्हारे बीच जो सम्बन्ध है; उसे क्या कोई तोड़ सकता है? फिर मैं क्यों अपना वह दावा—नहीं, नहीं, क्या कहते क्या कहने लगा—मेरे कहनेका मतलब यह है कि बहुत ही दूरके सरोकारी आदमीके साथ भी जितनी घनिष्ठता रखनेमें कोई बुराई नहीं मानी जाती, क्या मैं उसके भी योग्य नहीं हूं?"

"हां, उसके योग्य भी नहीं हैं। सिर्फ़ चारुके लिहाज़से मैं आपसे इतना मिलती हूं—मैंने तो एकदम ही दूर हो जाना चाहा था, पर वही मुझे खींच लायी। इस संसारमें आपसे बढ़कर मैं किसीको पराया नहीं मानती।"

अमर मुह्यमान होकर फिर सुरमाके पास चला आया, लेकिन सुरमा फिर उसे अपनी तीखी निगाहसे हैरतमें डालकर उस कमरेसे बाहर हो गई।

वहांसे जाकर सुरमा एक एकान्त स्थानमें बैठ रही। भाग्य उसका कैसा उपहास करा रहा है ? पहले भी एक दिन अपने स्नेह-भरे तरुण हृदयपर आघात पहुंचनेपर वह पूर्ण बलके साथ अमरपर प्रतिघात करने गई थी, परन्तु उसे तनिक भी विचलित नहीं कर सकी थी ; लेकिन आज यह क्या हुआ ? आज मानों उसने वासनाके तापसे रहित अम्लान हृदयका ऐकान्तिक स्नेह ही अमरकी ओर प्रवाहित कर दिया ! आज यह कैसी अनहोनी बात हो गयी ? प्रथम यौवनकी व्याकुल वासना तो अमरके पत्थरसे भी कठोर व्यवहारका आघात पाकर कभीकी हृदयके गुप्त अन्धकारमें जा छिपी। आज इतने दिन बाद उस बन्द दरवाज़ेको किस लिये खटखटाया गया ? खटखटाया ही किसने ? वह व्यक्ति तो वहां पहलेका-सा नहीं रहा—इस समय तो वह सुरमाके स्नेहका पात्र—परम आत्मीय है ! जिसने उसको अपनी बहन मानकर उसके हृदयमें जगह पायी है, वह व्यक्ति तो उसीका स्वामी है। लज्जासे सुरमा एड़ीसे चोटीतक लाल हो गयी। यह कैसी विडम्बना है ?

क्या जवाब देनेसे काम नहीं चलता ? क्या यह नहीं पूछा जा सकता था कि आप जो वस्तु आज देने चले हैं, वह अबतक कहां थी ? अजी, आप वही तो हैं जिसने मेरी नवीन वासनाओंसे—भरी हुई चढ़ती जवानीकी उमङ्गोंको अन्धेकी तरह न तो देखा और न देखना चाहा ! वह अन्यायी आप ही तो हैं ! आज आपका इस तरह बढ़-चढ़कर बातें करना अच्छा नहीं लगता।

मेरे जीवनको व्यर्थ कर डालनेके लिये कौन उत्तरदायी है। एक दिन आपने जो चीज़ मुझसे छीन ली और दूसरेको दे डाली, वही आज फिर आप मुझे देने आये हैं?—छिः! आपको लाज नहीं आती? जिसके जीवनके आरम्भके दिन इस तरह कष्ट-संकटमें कट गये, आज इतने दिन बाद फिर उसीका आश्रय ग्रहण करते हुए क्या आपको संकोच नहीं मालूम होता? वह इस समय अपने पैरोंपर खड़ा होना सीख गई है, उसने अपने लिये नया रास्ता ढूंढ़ लिया है, अब उसे आपकी आवश्यकता नहीं है। आप अपना रास्ता देखिये।"

कितनी बार यह उत्तर सुरमाके हृदयसे उठकर गलेतक आया, पर होंठोंपर नहीं आ सका। वह जानती थी कि इस जवाबमें कितना विष भरा हुआ है। जब वह अभिलाषा ही मिट गयी, तब फिर उसकी चर्चा कैसी? फिर यह ज़हरका घूंट किसे पिलाना। उसी सरला, विश्वस्त-हृदया, ममतामयीके जीवन-सर्वस्वको?

यही सोचकर उसने अमरको यह ज़हर नहीं पिलाया।

छिः! छिः! अगर चारु इतना समझती! सुरमाके ललाटपर पसीना चुचुआने लगा। इसकी अपेक्षा लज्जाकी बात सुरमाके लिये दूसरी नहीं है। अब तो चारुके स्वामीके ऊपर सुरमाको कोई अभिमान नहीं है, क्रोध नहीं है, और न उसपर आघात करनेके लिये उसका हाथ उठ सकता है। फिर आज यह कैसी विडम्बना है? उसने तो चारु और अतुलके साथ-साथ अमरको

भी अपने प्रेमके बन्धनमें बांध लिया है। फिर उसके विश्वस्त-हृदयपर अमरने यह कैसा डङ्क मारा! कहीं चारु यह न सोचे कि यह सब मैंने ही जान-बूझकर किया है। सुरमा आसनपर पड़ी-पड़ी सो रही। उसने दोनों हाथोंसे अपना मुंह ढक लिया।

सारी रात उसे चिन्ता डङ्क मारती रही। अब क्या उपाय है? कौन-सा उपाय है? यदि भाग जाऊं तो चारुको सन्देह हो सकता है। उसको अमरको जैसी अधीरताका आभास मिला है, उससे तो भाग जानेपर चारु और भी जल्दी समझ लेगी। उसके यहां न रहनेपर शायद वह और भी विकृत भावसे समझेगी। नहीं, जाना नहीं होगा—पास ही रहकर इस लज्जाको धो डालना होगा। रात बीतते-बीतते उनींद सुरमा सो रही; परन्तु स्वप्नमें भी इस चिन्तासे उसे छुटकारा नहीं मिला।

सत्रहवां परिच्छेद

प्रायश्चित्त

सब लोग मुंगेरसे लौटकर घर चले आये। अपने घर पहुंच कर सुरमा यथासाध्य सावधान होनेकी चेष्टा करने लगी। वह समझ गयी कि उसके समझनेमें भूल हुई थी—दूरत्व रखना ही उचित है। अमरके साथ अधिक घनिष्ठता रखने या स्नेह प्रकाश करनेसे हो सकता है कि उलटा ही फल हो। वह इतने दिनोंतक

नहीं समझ सकी थी कि मेल-जोल बढ़ाना ही बुरा होता है। भाग्यके दोषसे सुरमाको सदा टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे ही चलना होगा—उसके ललाटमें यही लिखा है कि वह संसारसे अलग होकर अकेली ही रहे। इसमें और एक आशाकी बात यह है कि अपने पहलेकेसे कुटिल व्यवहारोंद्वारा अमर अपनी इस क्षणभरके लिये पैदा हुई दुर्बलताको दूर भी कर ले सकता है। सुरमाका सङ्कल्प पक्का हो गया।

सुरमाने अमरसे मिलना या बातें करना बन्द कर दिया। चारुके साथ भी हंसी-दिल्लगी करना या दोपहरके समय उन दोनोंकी बैठकमें शामिल होकर मीठी-मीठी बातें करना उसने छोड़ दिया। उसका सारा दिन नये-नये काम ढूंढ़ निकालनेमें ही कट जाता। केवल अतुल जब उसका आंचल पकड़ लेता और उसे तङ्ग करने लगता, तब उसे लाचार अपनी सुध बिसार देनी पड़ती थी। चारु सदा इसके लिये उसको उलाहना दिया करती थी। वह बातको हंसीमें उड़ा देती और कहती—"पूरा-पूरा ध्यान दिये बिना घर-गृहस्थी चलाना बड़ा कठिन काम है।" श्यामाचरण उससे कुछ पूछने आते तो कहती—"आप मुझे इन सब झगड़ोंमें न फंसाइये। जो बन पड़े, वह कीजिये। जो न बन पड़े, उसे छोड़ दीजिये।" सुरमाका सिर फिर गया है, यह सोचकर वे चुप हो रहते, पर उनसे उलटे पांवों लौटते भी न बनता था।

सुरमा मन-ही-मन अमरसे घृणा करनेकी चेष्टा करने लगी।

उसने सोचा कि यह तो घोर निर्लज्ज हृदयका काम है। जिसके चरित्रमे दृढ़ता नहीं, वह भी कोई आदमी है? जिस चारुके लिये पहले अमर हद दर्जेतक कष्ट उठानेके लिये तैयार था, उसके साथ वह इस समय ऐसी कपटता कर रहा है। यह कपटता नहीं तो और क्या है? अनन्यहृदया पत्नीकी चिन्ताके बदलेमें यदि क्षण-भरके लिये भी अमरके मनमें दूसरी किसी स्त्रीकी चिन्ता उत्पन्न होती है, तो यह विश्वासघातकता नहीं तो और क्या है? मानों अमरकी मूर्त्ति सामने खड़ी है, ऐसी ही कल्पनाकर सुरमाने भौंहें टेढ़ी कर कहा—"छिः! आप इतने नीच हैं।"

प्रथम यौवनके दुर्दमनीय आवेगमें पड़कर मनुष्य केवल एक ही ओर लक्ष्य रखता है—जीवनकी तुलाके एक ही पलड़े-पर वेशी भार देता है, परन्तु उस तुलादण्डको धारण करनेवाले काल-पुरुषके हाथसे एक जौ भी किसी ओर कम या ज़्यादा नहीं होने पाता। उस एक तिलके बदलेमें दूसरी ओरसे एक तिल सञ्चित होते देर नहीं लगती। अन्धा आदमी, जीवनके प्रथम आवेगके वशमें पड़कर, तुरन्तकी पैदा हुई मनोवृत्तिकी सफलताको ही अपने जीवनके लिये सर्वापेक्षा प्रयोजनीय समझने लगता है। परन्तु ऐसा भी समय आता है, जब वह समझने लगता है कि उसने जिसे तुच्छ समझकर छोड़ दिया था, वह उतना तुच्छ नहीं है। किसी समय वही तुच्छसे तुच्छ वस्तु उसके जीवनके लिये सबसे बढ़कर प्रार्थनीय वस्तु मालूम होने लगती है।

यद्यपि अमरनाथके अपने कामपर पछतानेका समय अभीतक नहीं आया था, चारुपर उसका प्रेम तनिक भी कम नहीं हुआ था, तथापि विधाताकी तराजूपर उसने जो एक दिन एक ओर बेजा भार रख दिया था, उसको बराबर करनेका समय आ गया था। यह ईश्वरका प्रतिशोध है, मनुष्यकी शक्ति यहां कुछ काम नहीं कर सकती।

परन्तु सोचकर देखा जाये, तो यह सवाल पैदा होता है कि क्या इसमें अमरका ही अपराध अधिक था? सुरमाका कोई अपराध नहीं था। अपनी शक्तिको नहीं पहचानना ही सुरमाका बहुत बड़ा अपराध था। वह सुन्दरी, विदुषी, बुद्धिमती और सबसे बढ़कर उदार-हृदया थी—यह भी उसका अपराध था। यदि इस संसारमें इन ईश्वरदत्त गुणोंमें कोई शक्ति होती हो, तो वह महत्-स्वभाव-जनित चुम्बक-शक्ति ही अपराधी है—मनुष्यका मनुष्यत्व ही अपराधी है—अमरनाथका कोई दोष नहीं है। फूल जैसे मधुको उत्पन्न करता है,वैसे ही जिसने स्वामी-स्त्रीके सम्बन्धमें मधुरताकी सृष्टि की है, वही अपराधी है। जो स्त्री इस प्रकार सम्पत्तिमें, विपत्तिमें, सहाययुक्त या निःसहाय अवस्थामें, एकमात्र संगिनी होकर भी, स्त्रीको जो अधिकार स्वभावतः प्राप्त होता है, उसे नहीं पा सकी, उसका प्रभाव जिसके रोके रुक जाये, वैसा कौन आदमी है? अमर क्या एक ही दिनमें इस आकर्षणमें पड़ा है? घड़ी-घड़ी, दिन-दिन, महीने-महीने, साल-के-साल, दिन-रात इस विचित्र स्नेहमय

प्रेममय और रहस्यमय हृदयके द्वारा घिरा रहकर, हड्डी-हड्डीमे, नस-नसमें उसके उदार हृदयकी महिमाका अनुभव करके ही वह इस प्रकार विजड़ित हो गया है—इसीसे उसने इतनी दुर्बलता प्रकट कर दी। चारुके प्रति उसका जो स्निग्ध प्रेम था, उस कल्याणमयीकी स्नेहधाराके साथ इस दुर्दान्त, प्रचण्ड, आवेगमय और कलेजेका रक्त सोख लेनेवाले ज्वालामय प्रेमका कोई सरोकार नहीं था। कहें तो कह सकते हैं कि अमरके जीवनमें यह पहला ही अनुभव था। उसे कभी यह नहीं मालूम हुआ था कि संसारमें ऐसा भी कुछ है। वह इतने दिनोंसे काव्यों और उपन्यासोंमें जो कुछ पढ़ा करता था उसीका आज अपने जीवनमे, प्रत्येक अस्थि-मज्जामें, अनुभव कर रहा है।

कुछ दिन बाद सुरमाने देखा कि इससे भी कोई फल नहीं हुआ। यद्यपि अमरके साथ उसकी वैसी बातें नहीं होतीं, न वह उससे उतना मिलती-जुलती है, तथापि अमरने उस बातको उस दुर्बलताको—अपने मनके भीतर पाल रखा है, यह बात वह अमरके व्यवहारोंसे और कभी-कभी उसका मुंह देखकर भी समझ जाती है। ऐसी ही कोई आवश्यकता पड़े बिना अमर घरके अन्दर नहीं आता। सिवा रातके और कभी चारुके साथ भेंट-मुलाक़ात नहीं करता; शिकार खेलना एकदम बन्द है; बाहर उसे इतना क्या काम रहता है, यह मालूम नहीं होता, तोभी सारा दिन बाहर ही कट जाता है। अचम्भेमें आकर चारु रह-रहकर सुरमासे कहती,—"जीजी!

तुम दोनोंने ही मुझे एक साथ छोड़ दिया ?" व्यथिता सुरमा जवाबका बहाना ढूंढ़ने लगती थी।"

उस दिन तीसरे पहर चारुको ढूंढ़ते हुए सुरमाने उसके कमरे-मे जाकर देखा कि चारु और अमरनाथ दोनों साथ ही बैठे हैं। सुरमा उत्सुकता-भरे अन्तःकरणसे हटकर खड़ी हो गयी। उसने सुना कि चारु कह रही है, "आपको आजकल क्या हो गया है ? बाहर इतना कौन-सा काम रहता है ?"

अमरने हंसकर कहा,—"कुछ भी नहीं।"

"फिर दोपहर या शामको गप-शप करनेके लिये भी क्यों नहीं आते ?"

अमरने थोड़ी देर चुप रहनेके बाद कहा,—"जी नहीं चाहता। क्यों ? क्या तुम इससे कुछ उदास हो ?"

"उदास होऊं या नहीं, आप यह बतलाइये कि क्यों नहीं आते ?"

"चारु ! घूमने चलोगी ?"

"कहां ?"

"जहां-कहीं हो, यहांसे कहीं बाहर चलो। फिर मैं रात-दिन तुम्हारे ही पास पड़ा रहूंगा।"

चारुने मुंह बनाकर कहा, "फिर बाहर चलूं ? मुझे तो कहीं जानेका साहस नहीं होता। इससे तो यहीं रहना अच्छा है।"

अमर इस बार इस दुश्चिन्ताके हाथसे निस्तार पानेके लिये

सर्वस्व-समर्पण —

सुरमाने उसके मकरेमें जाकर देखा कि चारु और अमरनाथ दोनों साथ ही बैठे हैं। सुरमा हटकर खड़ी हो गयी। (पृष्ठ २५८)

भागना नहीं चाहता था। एक बार इस चिन्ताका अङ्कुर-मात्र देख-कर ही वह डरके मारे भाग गया था, पर भाग्यने उसे छुटकारे-का रास्ता नहीं मिलने दिया। वही विष उसकी ऐड़ीसे चोटीतक भर गया। अब न तो उसे मुक्तिकी आशा है, न इच्छा—केवल चारुके प्रति दिन-दिन अन्याय होता चला जाता है, इसी आश-ङ्कासे वह उसे दूर ले जाना चाहता है। परन्तु चारु राज़ी नहीं हुई।

अमर बाहर जा रहा था। पीछेसे किसीने पुकारा—"सुनते जाइये।" उसने मुंह फेरकर देखा कि सुरमा है। सुरमाने कहा—"इधर आइये, कई बातें कहनी हैं।"

अमरके कलेजेका सारा रक्त उछल पड़ा, जिससे उसके कान और गाल बेतरह लाल हो गये। बड़े कष्टसे उस उच्छ्वा-सका दमन कर अमर सुरमाके पीछे-पीछे चला।

सुरमाने पूछा—"आप चारुको साथ लेकर क्या कहीं दूर जाना चाहते हैं?"

अमरने सिर झुकाये हुए कहा,—"हां, चाहता तो हूं।"

"बात तो बहुत अच्छी है। जाइये; पर दो-चार बातें कहनेकी हैं।"

अमरने कुछ क्षणोंतक ठहरनेके बाद एक बार प्रत्याशित नयनोंसे सुरमाकी ओर देखा। इसके बाद फिर निगाह नीची कर धीरेसे कहा,—"कह सुनाओ।" उस समय सुरमाने भी गर्दन झुकाकर नज़र नीची कर ली थी। अमरकी बात सुनकर

चौंककर बोली—"कहती हूं।" इसके बाद थोड़ी देर ठहरकर अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंसे अमरकी ओर स्थिरोज्ज्वल दृष्टिसे देखती हुई बोली—"उसके बाद जब फिर आप मेरे सामने आइयेगा, तब मैं आपको शुद्ध-पवित्र देखूंगी न?"

अमरने कुछ भी जवाब नहीं दिया। उसने निगाह और भी नीची कर ली।

"बोलिये, मैं इस बातका उत्तर सुनना चाहती हूं। अगर शुद्ध-पवित्र होकर न आ सकें तो यह परदेश जाना विडम्बना-मात्र है। बोलिये शुद्ध पवित्र हो सकेंगे न?"

अमरने सिर ऊपर उठाया और आवेग-रुद्ध कण्ठसे कहा—"सचमुच सुरमा! मेरा इस समय परदेश जाना विडम्बना-मात्र है। तुम यह मत सोचना कि मैं शुद्ध होनेके लिये जा रहा हूं।"

"फिर किस लिये जा रहे हैं?"

"इसी डरके मारे कि कहीं चारुके साथ कोई भारी अन्याय न कर बैठूं।"

सुरमाने दृढ़ कण्ठसे कहा—"और यह क्या उसके साथ न्याय कर रहे हैं? देखिये, आप ही उसके एकमात्र प्रेमाधार हैं, ऐसी अवस्थामें यदि आप घड़ी-भरके लिये भी किसी औरकी चिन्ता अपने मनमें लाइयेगा तो आपका यह अपराध कभी क्षमा करनेयोग्य नहीं हो सकता।"

अमरने लड़खड़ाती हुई ज़बानसे कहा,—"यदि यह पाप उसके आगे अमार्जनीय है, तो फिर मैं तुम्हारे साथ जो व्यवहार कर रहा हूं यह क्या मार्जनीय है?"

"परन्तु मैंने तो आपको माफ़ कर दिया है।"

अमरने रुद्ध कण्ठसे कहा,—"क्यों किया है ? मैंने तो तुमसे क्षमा नहीं मांगी। मैं इस समय उसीका प्रायश्चित्त करने जा रहा हूं। तुम्हें मुझे प्रायश्चित्त करनेका अवसर देना होगा। मैं तुम्हारे पास आना नहीं चाहता—केवल दूर-ही-दूरसे अपने पापका प्रायश्चित्त करना चाहता हूं। इसीसे तुमसे बातें करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है, यह जानकर भी कहता हूं कि सुरमा ! मैं सच्चे हृदयसे, बड़े आग्रहके साथ, इस प्रायश्चित्त और शान्तिका भार वहन करना चाहता हूं। इस दण्डसे भी आज मुझे सुख ही होगा। मुझे यह सुख—इतना अधिकार तो तुम्हें देना ही पड़ेगा।"

"एक अन्यायके प्रायश्चित्तके लिये फिर दूसरा अन्याय क्यों किया जाय ? आप भूलकर भी न सोचियेगा कि मैं आपको ऐसा प्रायश्चित्त करनेका मौक़ा दूंगी। क्या आप जानते हैं कि मैंने आपको क्यों माफ़ कर दिया है ? मैं आपको आपके लिहाज़से नहीं माफ़ किया, बल्कि बालके ख़यालसे ही आपको क्षमा कर दिया है। आप न तो कभी मेरे थे, न आज ही हैं।"

अमरको तो काठ मार गया, उसके पैरोंके नीचेसे पृथ्वी खिसकने लगी। उसे जीवनमें ऐसी गहरी चोट कभी नहीं लगी थी। उसने बड़े कष्टसे केवल इतना ही कहा,—"किसीके मुंह-पर ही इतनी निठुराईसे कोई बात नहीं करता। तुम और चाहे जो करो ; पर मेरी यही एक प्रार्थना है कि——"

"ज़रा नरमीसे बातें किया करूं? क्यों, यही न? तो क्या मेरी बातें बेतरह कड़वी हैं? कलेजेमें चुभती हैं? मेरे जीवनके आरम्भमें आपने क्या इतनी भी दया दिखलायी थी? ऐसी मामूली बातकी चोट भी कलेजेको कितना सालती है, यह बात आपने कभी सोची थी? किसी दिन भूले-भटके भी मेरी बात दिलमें लाये थे? नहीं लाये थे, यह अच्छा ही किया था। इसके लिये मैं आपपर श्रद्धा रखती थी; क्योंकि मैं सोचती थी कि आप चरित्र-वान् हैं, एकनिष्ठ हैं, चारुको प्यार करते हैं, इसीलिये मुझे अपनी स्त्री नहीं मानते। परन्तु आज क्या हुआ? आज तो आपने मेरी उस श्रद्धाको भी चूर-चूर कर डाला!"

मुह्यमान अमर धीरे-धीरे एक आसनपर बैठ गया। सुरमा बड़ी देरतक एकटक उसकी ओर देखती रही। इसके बाद सहसा उसके पास आकर स्वाभाविक कण्ठसे बोली—"क्षमा कीजिये—मैंने बहुत ही कड़ी-कड़ी बातें कह डालीं। मैं आपको इतनी चोट पहुंचाना नहीं चाहती थी। मेरा यह दुर्भाग्य है कि मैं स्वभावतः मनकी बातें कह डालती हूं, उन्हें छिपाना नहीं जानती। इसलिये मेरा अपराध क्षमा कर दें। मैं आपको अपना सगा जानती हूं, आपका विश्वास करती हूं, आपपर भरोसा रखती हूं, आपको अपना हितैषी मानती हूं—आप चारुके स्वामी हैं, मैं आपको ज़रा भी दुःख देना नहीं चाहती।"

दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपाये हुए अमरने आर्त कण्ठसे कहा—"बस, बस, बहुत हो चुका—अब नहीं। अब मुझपर इतनी दया न दिखाओ, मुझे क्षमा करो।"

पर सुरमाने एक न मानी। वह बोली—"मैं आपको पहलेकी तरह एकमात्र चारुकी ही चिन्तामें लीन देखना चाहती हूं। मैंने इसमें कुछ कसर देखी. इसी दुःखसे इतनी बातें कही हैं—कुछ आपसे बदला चुकानेके इरादेसे नहीं।"

"निर्दयी कहींकी! तुमसे इतना भी स्वीकार करते नहीं बनता? क्यों, तुम्हारे मुंहसे यह भी नहीं निकलता कि मैंने तुम्हारा हक़ छीन लिया है, उसीका तुम यह बदला ले रही हो? मुझे यही न जंचाना चाहती हो कि मैंने तुम्हारा अधिकार छीन लिया है, इसलिये तुम भी मेरा हक़ छीने लेती हो? मैं क्या यह स्पष्ट बात सुननेके भी योग्य नहीं हूं? क्या तुम्हारा इतना अभिमान पानेका भी मुझे अधिकार नहीं है? क्या एक दिनके लिये भी मुझे कभी यह अधिकार नहीं था? उस दिनका याद करके भी तो—"

"आपपर भला मैं क्यों अभिमान करने लगी? आपके साथ मेरा किसी दिन कोई सम्पर्क नहीं था।"

अमर झटपट वहांसे उठकर चला गया। एकाएक लोगोंने सुना कि सुरमा मायके जा रही है। सबने यही सोचा कि अबकी वे फिर यहां नहीं आयेंगी। श्यामाचरणने पूछा—"बेटी! यह क्या कर रही हो?"

"क्यों, चाचाजी! इसमें बुराई ही क्या है? क्या अतुलकी सम्पत्ति मैं दूसरोंके हाथमें जाने दूं?"

सुरमाके चेहरेपर दृढ़ता झलक रही थी, यह देख वह चुप

हो रहे। उन्होंने अमरके पास आकर कहा—"क्या तुमलोग मिल-जुलकर मेरे काशीवासमें बाधा डालना चाहते हो?"

अमरने कहा—"नहीं चाचाजी! आप काशी जाइये। मुझे यहांके कुल काम मालूम हो चुके। मैं आपका परलोक क्यों बिगाड़ूंगा? इस संसारमें किसीके किसी काममें बाधा डालनेका अधिकार मुझे नहीं है।"

चारुने आकर दोनों बांहोंसे सुरमाका गला लपेट लिया। उसने मुंहसे कोई बात नहीं कही—केवल रो-रोकर आंसुओंसे सुरमाका कलेजा तर करने लगी। अब तो सुरमाकी आंखोंसे भी आंसू बह चले। थोड़ी देरमें अपनेको सम्हालकर बोली—"चारु! मेरी प्यारी बहन! मुझे माफ़ करो। मुझे इस तरह न रुलाओ।"

"जीजी! तुम क्या वही जीजी हो? तुम्हारा हिया ऐसा कठिन-कठोर है?"

दोनों हाथोंसे उसका मुंह ऊपर उठाकर उसकी आंखोंके आसू पोंछने-पोंछते सुरमाने कहा—"चारु! तुम ऐसी बात न कहो। जगतका कोई आदमी मुझे जो चाहे कहे—अत्यन्त हीन, दुर्बल या निष्ठुर बनाये; पर तुम कुछ न कहो, नहीं तो मेरा कलेजा फट जायेगा।"

चारु फिर उसे जकड़कर पकड़े हुई बोली—"फिर तुम क्यों चली जा रही हो, जीजी? मत जाओ।"

"चारु! तुम यह अनुरोध मत करो, मैं इसे नहीं मान सकती, यह बात सोचकर भी मुझे असह्य कष्ट होगा।"

"जीजी! क्यों एकाएक तुम्हारी ऐसी इच्छा हुई? इतने दिनों-तक तुम मायके गयी नहीं।"

"चारु! भगवान् कब क्या कराते हैं, यह कौन जाने? वे ही मुझे लिये जा रहे हैं। तुम्हीं सोचो, मेरे पिताजीको और कौन है? फिर अतुलको सम्पत्ति मैं क्यों औरोंके हाथ लगने दूं?"

बीचमें ही चारु बोल उठी—"अतुलको कमी किस बातकी है? वह क्या तुमको छोड़कर रह सकता है?"

"क्या करूं, बहन? मैं लाचार हूं।"

"तो फिर आओगी कब?"

"जब अतुलके लड़का होगा, तब हिस्सा बंटाने आऊंगी।"

"जीजी! जीजी! क्या तुमसे इतने दिन वहां रहा जायेगा? ओह! तुम्हारे प्राण क्या पत्थरके बने हैं?"

सुरमा सूखी हंसी हंसने लगी।

"जीजी! मैं साहस करके कभी यह बात न पूछ सकी; प आज पूछती हूं। क्या वे भी तुम्हारे कोई नहीं हैं?"

सुरमा हंसी और चारुके गालमें चुटकी भरकर बोली - "क्यों नहीं? वे मेरे बड़े आदरके पात्र हैं। तुम्हारे स्वामी उ ठहरे!"

"क्या उनके प्रति भी तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है।"

"नहीं, उन्हे मैंने तुम्हारे सुपुर्द कर दया है।"

"जीजी! माफ़ करो। मैं यह बात तुमसे किसी दिन कह सकी; पर आज कहती हूं। वे तुम्हारे स्वामी हैं; फिर तु

क्यों अपना दावा आप ही छोड़े देती हो ? उन्होंने तुम्हारे आगे जो अपराध किया था, उसे जहांतक मैं जानती हूं तुमने माफ़-कर दिया है। फिर क्यों उसी बातको लेकर आज हमें छोड़कर चली जा रही हो ? हमें छोड़कर न जाओ। मैं यही चाहती हूं कि तुम अपनी जगहपर बैठ जाओ और मुझे अपने स्नेह और उनके प्रेमकी छायामें बैठनेकी जगह दे दो।"

"चारु ! यदि तुम मुझे ज़रा भी प्यार करती हो, तो मुझे न रोको। प्यारी बहन ! तुम सदासे मुझे 'जीजी' कहकर पुकारती चली आयी हो। आज मेरी यात्राके दिन तुमने मुझे सौतकी निगाहसे क्यों देखा ? मैं तुम्हारी भलाई चाहनेवाली बहन हूं—सौत नहीं।"

"जीजी ! माफ़ करो। मैं नादान हूं—मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है—मुझे क्षमा कर दो।"

"तो फिर मुझसे रहनेके लिये न कहो।"

जानेका दिन आ पहुचा। अतुलको सौ सौ बार चूमकर और कलेजेसे लगाकर आंसुओंसे उसे तर करती हुई सुरमा बोली—"बेटा ! सयाना होनेपर तुम मेरे पास आना।"

चारुने भर्रायी हुई आवाज़से कहा—"जीजी ! आज ही लेती जाओ।"

"नहीं, और ज़रा बड़ा हो जाने दो। अच्छा, तो चारु ! अब म चलती हूं।"

चारुने दोनों हाथोंसे मुंह छिपा लिया। सुरमाने दोनों

हाथोंसे उसका मुंह ऊपर उठाया और उसके कपोलोंपर स्नेहके
आंसू बरसाते हुए उसके सिरपर हाथ रखकर मन-ही-मन
आशीर्वाद दिया। इसके बाद सुरमा घर-भरके आदमियोंसे एक
एक करके मिली। सभीके हृदय फटने लगे—सब रो पड़े।
सब यही कहते कि यही घरकी लक्ष्मी थी। इसीकी सारी
सम्पदा थी। न मालूम किसके अभिशापसे वह आज अतुल जलमें
डुबायी जा रही है।

जाते समय अमरके साथ भेंट करके सुरमाने कहा—"अच्छा,
तो मैं अब जाती हूं।"

बड़ी उदासी-भरी दृष्टिसे उसके चेहरेकी ओर देखते हुए
अमरने धीरेसे कहा—"जाओ।"

सुरमाने न जाने क्या सोचा। फिर बोली—"मैंने बहुतसे
अपराध किये हैं, उन्हें क्षमा कीजियेगा।"

सुरमा दो-ही-चार पग आगे बढ़ी होगी कि अमरने दौड़कर
उसका हाथ पकड़ लिया और पागलोंकी तरह कहना शुरू
किया—"बस, केवल इतना ही स्वीकार करके जाओ—अधिक
नहीं। कह दो कि यद्यपि आज नहीं हो, तथापि किसी दिन
तुम मेरी ही थी। किसी दिन मुझे यह अधिकार था कि तुम्हें
अपना कहकर पुकारूं। मैं और कुछ नहीं चाहता, केवल
तुमसे यही कहलवाना चाहता हूं कि तुम अब भी मुझे थोड़ा
बहुत प्यार करती हो। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस जीवनमें फिर
कभी तुम्हें अपना मुंह न दिखाऊंगा, तुमसे कुछ भी न
मांगूंगा—केवल एक बार यही बात कह दो।"

निर्निमेष नयनोंसे स्वामीकी ओर देखती हुई सुरमा बोली—"नहीं।"

धीरे-धीरे चलकर सुरमा गाड़ीपर आ सवार हुई। उस बड़ी भारी अट्टालिकाके एक-एक करके सभी हिस्से और बागीचेकी चहारदीवारी आदि जब उसकी नज़रोंसे जादूगरके बट्टेकी तरह दूर हो गये, तब सहसा गाड़ीकी गद्दीपर धपसे बैठकर सुरमा सिसक सिसककर रोने लगी और आप-ही-आप कह उठी—"मैं स्वीकार करती हूं—मानती हूं—अब हरगिज़ अस्वीकार न करूंगी—लो, मैं कहे देती हूं कि एक दिन तुम्हें वह अधिकार था और—अब भी—अब भी—"

अठारहवां परिच्छेद

कमसिन विधवा

कालीगंजके पैर पखारती हुई भागीरथी मृदु-मन्द गतिसे प्रवाहित हो रही है। नदीके किनारे ज़मीन्दार राधाकिशोर घोषकी बहुत बड़ी कोठी, सुन्दर सजी फुलवारी है, जिसके सफेद रङ्गके फाटकपर दो मिट्टीके शेर जीभ निकाले दर्शकोंको डरानेकी व्यर्थ चेष्टा करते हुए अपने दांत दिखा रहे हैं। कोठीके सफ़ेद रङ्गने अस्त होते हुए सूर्यकी किरणोंसे कुछ-कुछ लाली ले ली है। दोतल्लेके एक सजे-सजाये कमरेकी खिड़कीपर बैठी

हुई जो सुन्दरी एक मनसे बड़ी खूबीके साथ मखमलपर ज़रीका फूल काढ़ रही है वही सुरमा है। उसके बिखरे हुए बालोंपर पड़कर सूर्यकी किरणोंने उन्हें संन्यासिनोंकी जटाकी तरह पिंगल-वर्णकी छटा दे रखी है। उसकी अधमैली साड़ी भी गेरुयेका रङ्ग धारण किये हुई है।

सुरमा खूब मन लगाये काम कर रही थी—ऐसी कोई सम्भावना नहीं थी कि उसका मन और किसी ओर जायेगा। सहसा एक किशोरी बालिकाने वहां पहुंचकर बड़ा ऊधम मचाना शुरू किया। उसने मधुर कल-कण्ठसे झङ्कार करते हुई कहा—"अरे, यह क्या ! क्या आज यह काम बन्द ही नहीं होगा ?"

सिर ऊपर उठाये बिना ही सुरमा हंसने लगी। बालिकाने साहस पाकर—उसके हाथकी मखमल खींच ली। सुरमाने घबराहटके स्वरमें कहा—"अरी पगली ! यह क्या करती है ? फूल बिगड़ जायेगा।"

"बिगड़ने दो।"

"वाह ! कैसे बिगड़ जाने दूं ? बिगाड़नेके ही लिये इतनी मिहनतसे बनाया है।"

"क्यों बिगाड़ते नहीं बनता ? यह देखो, मैं अपना ऊनी गुलाब नोचकर फेंके देती हूं।"

सुरमा सिर ऊपर उठाकर बालिकाकी ओर देखने लगी। उसके अमल-शुभ्र-सरल मुखड़ेपर सरल हंसी देखकर आपसे-आप उसके मुंहसे एक लम्बी सांस निकल पड़ी।

बालिकाने कहा—"अरे! यह लम्बी सांस किस लिये?"

"योंही।"

"नहीं, योंही नहीं हो सकती। मुझे इसका भेद बतलाओ।"

अच्छा, तू ऊनका बना हुआ गुलाब तो नोच दे सकती है, पर यदि कोई ख़ूब बढ़िया फूल हो तो क्या उसे भी नोचकर फेंक दे सकती है?"

"ख़ूब बढ़िया? जैसा बाग़ीचेमें खिलता है?"

"हां।"

बालिकाने कुछ सोचकर कहा—"नहीं, मोह लगता है।"

सुरमाने शायद अपने जीमें कहा—"फिर विधाताको क्यों नहीं मोह मालूम होता? वे क्या मनुष्यसे भी बढ़कर निर्दय हैं?"

बालिकाने कहा—"बोलो, क्या कहती हो?"

"कुछ भी नहीं" कहकर सुरमा फिर अपने काममें मन लगानेका उद्योग करने लगी। यह देख बालिका बड़े ज़ोरसे चिल्ला उठी—

"मां! मा! मैया! तुम न मानोगी? फिर बुनने लगी?'

"उमा!"

"भूल गयी, भूल गयी—माफ़ करो—मगर मेरी मां अब मत बुनो।"

सुरमाने अपनी बुनी हुई मख़मल और बुननेका सब सामान रख दिया और बालिकाकी ओर देखती हुई बोली—"बोल, क्या कहती है?"

"कहनेको तो कुछ भी नहीं है; पर तुम कितनी देरसे इसी काममे लगी हो, कैसे जी लगता है ?"

"जी क्यों नहीं लगेगा ?"

"एक ही काममें हरगिज़ जी नहीं लग सकता। विना वात-चीत किये आदमीसे इतनी देरतक कैसे रहा जा सकता है ? मैं यह वात नहीं मान सकती।"

सुरमा वालिकाको अपने पास खींच लायी और उसके बिखरे हुए वालोंको समेटती हुई वोली—"सारी दुनिया तेरी ही जैसी पगली है, जो हरदम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाया करेगी ? कितने ही आदमी मन-ही-मन वातें किया करते हैं; परन्तु उस समय हाथमें कोई काम लेकर न बैठें तो लोग उन्हें भी तेरे ही जैसा पागल कहने लगेंगे। समझी ?"

"लोग मन-ही-मन किसके साथ वातें करते हैं ?"

"अपने मनके साथ।"

"भला यह भी कभी हो सकता है ? मैं यह वात नहीं मान सकती। मैं अबतक प्रकाशके साथ वातें कर रही थी।"

"प्रकाश यहां आया है क्या ?"

"आया था; बड़ी देरतक वातें करता रहा, तुम आयीं ही नहीं, इसीलिये चला गया।"

"क्या वातें हो रही थीं ?"

"कितनी ही तरहकी वातें होती रहीं।"

"अच्छा, उमा ! तू प्रकाशको उसका नाम लेकर क्यों पुकारती है ?"

"तब क्या कहूं ?"

"प्रकाश भैया या प्रकाश-बाबू कहा कर।"

"यह तो मुझे आजतक किसीने सिखलाया ही नहीं। जीजी प्रकाश ही कहा करती थीं, इसीलिये मैं भी इसी नामसे पुकारती हूं।"

"कौन ? छोटी मां ? उनका तो वह रिश्तेमें देवर लगता है।"

"फिर तुम्हारा तो वह चाचा हुआ, तब तुम क्यों उसका नाम लेकर पुकारती हो ?"

सुरमाने मुस्कुराते हुए कहा,—"लड़कपनसे ही हमलोग एक साथ खेले हैं। हमलोगोंकी उमर भी एकसी है। बहुत दिन हमलोग अलग-अलग रहे, अब नया-नया चाचा कहकर पुकारनेमें शर्म मालूम होती है।"

"फिर मुझे क्या शर्म नहीं लगती ?"

"तू तो अभी कल यहां आयी है। अधिक-से-अधिक अभी दो साल हुए होंगे। क्यों उमा ?"

"हां, माके मरनेके बाद ही जीजी मुझे यहां ले आयीं।"

"और ससुरालसे कब मांके यहां आयी थीं ?"

"कब आयी थीं ? वह तो—" कहते-कहते बालिका हंसने लगी। सुरमा निर्निमेष नयनोंसे उसके निर्मल हास्योज्ज्वल मुखड़ेकी ओर देखती रह गयी। बालिका हंसती हुई बोली—"एक उदासीकी बात हो गयी, उसके बाद ही मैं मांके पास चली आयी।"

सुरमाने उदासी-भरे स्वरमे पूछा—"कौनसी बात हो गयी थी?"

"मैं विधवा हो गयी थी, इसीलिये चली आयी।"

सुरमा चुप हो रही। उमा थोड़ी देर चुप रहनेके बाद फिर हंसती हुई बोली—"अच्छा, मां! एक बात पूछती हूं।"

सुरमा अपनी लम्बी सांसको रोककर बोली,—"क्या? कहो!"

"नहीं, नहीं कहूंगी, डर लगता है।"

"डर काहेका? कह सुना।"

"अच्छा, तुम इस बातको सुनकर इतनी उदास क्यों हो गयीं! जीजी भी ऐसी ही उदास हो जाती थीं। मांने तो यही कहते-कहते रो-रोकर जान ही दे दी।" यह कहते-कहते बालिकाकी सुन्दर आंखोंमें आंसू भर आये। फिर बोली—"क्यों मैया! इसमें इतनी उदासीकी क्या बात है? मेरे जीमें तो कुछ भी नहीं आता। किसलिये कष्ट होगा?"

सुरमाने अपने आंचलसे बालिकाकी आंखें पोंछ डालीं। उमाने अपनी सान्त्वना करनेवालीकी ओर देखा तो उसके नेत्रोंमें भी आंसू भरे पाये। उमाने सहसा दोनों हाथोंसे उसका गला जकड़कर पकड़ लिया। उसकी छातीमें सिर रखकर बोली—"मां! रोती क्यों हो? इसमें दुःखकी क्या बात है?"

सुरमा उससे क्या कहे? संसारके ज्ञानसे शून्य बालिकाको किस तरह बतलाये कि उसकी कैसी शोचनीय दुर्दशा हो गयी है?

सुरमा थोड़ी देर बाद अपना गला साफ़कर बोली—"उमा! जा कंघी लेती आ, मैं तेरे बाल बांध दूं।"

इसी समय दासी आकर कमरेमें रोशनी जला गयी।

उमाने कहा—"जाने दो, अब रात हो गयी।"

"होने दे, तू जाकर कंघी ले आ।"

"अच्छा, मां! यह तो बतलाओ, उस दिन मुझसे हरिदासी कह रही थी कि जो स्त्री विधवा हो जाये, उसे न तो बाल संवारने चाहिये, न गहने पहनने चाहिये; क्या यह सच है?"

थोड़ी देर चुप रहकर सुरमाने धीरेसे कहा—"हां; पर यह नियम उसके लिये है, जो बड़ी उमरमें विधवा हो जाये, तुझसी कमसिन विधवाके लिये यह नहीं लागू हो सकता।"

"मैं तो इस समय चौदह वर्षकी हूं।"

"इससे क्या? उमा! तू बड़ी पाजी हो गयी है। क्या तू अपनी बहन या मांसे यह सब बातें कह सकती थी? तेरी बहन तुझे ऐसी ही बनी-ठनी देखना पसन्द करती थीं, मैं कैसे उसके विपरीत काम करूं? मुझसे यह न होगा। अगर मेरा यह काम बेजा हो तोभी मुझसे वैसा नहीं किया जायेगा।"

"कैसा नहीं किया जायेगा?"

"कुछ भी नहीं—आ, मैं तेरे बाल बांध दूं।"

बाल बन्ध जानेपर उसने सहसा कहा—"देखो, प्रकाशने मुझे फूलोंका एक गुलदस्ता दिया है। देखोगी?" यह कह वह दौड़ी हुई दूसरे कमरेमें चली गयी और बड़ासा ख़ुशबूदार

फूलोंका गुलदस्ता उठा लायी। सुरमा अनमनी-सी होकर न जाने क्या सोच रही थी। उमाने पुकारा—"मां!" चौंककर सुरमाने पीछे मुंह फेरते हुए कहा—"क्या है ?" उमा विस्मित होकर बोली—"क्यों ? चौंकी क्यों ?"

"नहीं तो।"

"नहीं, ज़रूर चौंक उठी हो। बोलो, क्यों चौंक पड़ीं ?"

"तेरी गर्दन ठीक उसीकी-सी है।"

"किसकी-सी ?"

"मेरे अतुलकी-सी।"

"कौन अतुल ? तुम्हारा बेटा ? अच्छा, वह तो तुम्हारी सौतका लड़का है, फिर तुम उसे अपना लड़का क्यों कहती हो ?"

"चुप रह री, कलमुंही ! मेरा ही बेटा है। मैं उन लोगोंको पाल-पोसकर बड़ा करनेके लिये दे आयी हूं।"

"किन लोगोंको ?"

"अपनी बहन और उसके स्वामीको।"

"अच्छा ! हरिदासी भी तो ग़ज़बकी औरत है। इतना झूठ बोलती है ! मां ! यह गुलाब तुम मेरे जूड़ेमें खोंस दो।"

उमाकी ओर देखते हुए सुरमाने कुछ कहना चाहा ; पर बात मुंहपर आ-आकर भी नहीं आयी। उसने फूलको हाथमें लेकर पूछा—"इतना बड़ा फूल तुझे कहांसे मिला ?"

"प्रकाशने दिया है।"

"आज एकाएक प्रकाशने तुझे फूल किसलिये दिया ? कुछ कहता भी था ?"

"हां, उसने कहा है कि इस फूलको बालोंमें लगा लेना।"

एकाएक सुरमा किसी सोचमें पड़ गयी, चेहरेपर स्याही दौड़ गयी। फूल उसके हाथसे गिर पड़ा। यह देख, उमाने उसे फिर उठाकर सुरमाके हाथमें दे दिया और कहा—"लो, इसे बालोंमें लगा दो।" सुरमा उठ खड़ी हुई और मीठे स्वरमें बोली—"विधवाओंको बालोंमें फूल नहीं लगाना चाहिये, उमा ! तू इसे मत लगा।"

"मुझे नहीं लगाना चाहिये ?" कहती हुई उमा सहसा सङ्कुचित हो गयी। इसके बाद कुछ इतस्ततः करके बोली—"तब लाओ, इसे फूलदानपर रख आऊं।"

"नहीं, इसे फेंक दे।"

"फेंक दूं ? क्यों ?"

"यह कह बालिका उदास मुंह बनाये सुरमाकी ओर देखती रही। सुरमाने कहा,—"तूने तो अभी कहा था कि मैं गुलाबको नोचकर फेंक दे सकती हूं।"

"हा फेंक दे सकती हूं ; पर कष्ट होता है।"

"हुआ करे। मैं यही तो देखना चाहती हूं कि तू बातकी कितनी पक्की है। इसे नोच डाल या फेंक दे।"

"नोचते बड़ी माया उपजती है। फेंके हो देती हूं—कोई उठा ही लेगा।"

यह कह, उमाने खिड़कीके बाहर हाथ निकालकर फूलको बाग़ीचेमें फेंक दिया। सुरमा बड़े दुःखित हृदयसे उसकी ओर देखती रह गयी। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उमा उदासीभरे स्वरमें बोली—"अगर प्रकाश पूछे तो मैं उसे क्या कहूंगी?"

"कहना कि विधवाको फूल नहीं लगाना चाहिये, इसीसे उसे फेंक दिया।"

"अच्छा," कहकर उमा दरवाज़ेकी ओर चली। सुरमाने उठकर उसे पकड़ लिया और उसे गोदमें बैठाकर उसके छोटेसे सिरको ऊपर उठाकर बोली—"मैं तेरी मां हूं—मेरे ही पास सो रह।" बालिका चुपचाप सो रही। आंखोंके आंसू सूखने भी न पाये थे कि होंठोंपर मुस्कुराहट छा गयी, बोली—"मां! मेरी बड़ी इच्छा होती है कि अतुलको देखूं।"

सुरमा—"देखेगी? अच्छा, थोड़ा और सयाना हो जाये तो यहीं बुलवा लूंगी।"

इसी समय एक बूढ़े आदमीने घरके अन्दर आकर पुकारा—"सुरमा।"

सुरमा घबरायी हुई उठ खड़ी हुई और बोली—"क्या है, पिताजी?"

"शामको घरमें बैठी-बैठी तुम दोनों क्या बातें कर रही हो?"

सुरमाने हल्की मुस्कुराहटके साथ कहा—"मैं इसी पगलीसे दो-दो बातें कर रही थी।"

राधाकिशोर-बाबूने हंसकर कहा—"यह तो सचमुच पगली है। इसके रहनेसे तुझे अकेलापन नहीं मालूम होता होगा। क्यों?"

"हां, इसीको साथ लेकर तो मैं बराबर रहती हूं। अकेली क्यों रहूंगी?"

उमा उठ बैठी, बोली,—"रहने दो, केवल बैठी-बैठी बुनाई सिलाई किया करती हो—मुझसे ख़ूब बातें करती हो, क्या कहना है!" दोनों हंसने लगीं। सहसा पिताने कन्याकी ओर देखते हुए कहा—"बेटी! तू इतनी दुबली क्यों होती चली जाती है? क्या तेरा मन यहां नहीं लगता।"

सुरमा एकाएक इसका उत्तर नहीं दे सकी। राधाकिशोर-बाबू कहने लगे—"इस समय तू ही मुझ बुड्ढे का एकमात्र सहारा है। तेरा भी मेरे सिवा और कौन है? तू और किससे अपना दुःख-सुख कहेगी? जब जैसी तबीयत हो, तब वैसा मुझसे कहना न चाहिये?"

"पिताजी! आप यह कैसी बात कहते हैं? मुझे कष्ट काहेका होने लगा? अपने घरमें, आपके पास भी रहकर मुझे कष्ट हो सकता है? आप ऐसी बात न कहा करें।"

"फिर तू ऐसी क्यों हो रही है? मैं तुझे कभी बाल बांधते भी तो नहीं देखता। कपड़ा भी कैसा मैला-कुचैला पहने हुई हो? छः महीनेसे तू यहां है। इतने दिनोंमें मैंने एक दिनके लिये भी—"

"पिताजी! आप क्यों ऐसी बात कर रहे हैं? यह सब

सुनकर मुझे बड़ा कष्ट होता है। मैं क्या ऐसे इन्द्रासनमें सुखसे पड़ी रहती थी कि यहां आते ही मुझे तकलीफ़ होने लगी ?”

“सो तो ठीक है, बेटी ! पर यह सब मेरे दुर्भाग्यका परिणाम है। ख़ैर, बीती बातोंका सोच करनेसे अब क्या होगा ? मैं सन्ध्या करने जाता हूं। बेटी ! मेरा यह तुझसे प्रबल अनुरोध है कि ऐसा हाल मत बनाये रह। तुझे ऐसी हालतमें देखकर मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुझे कोई कष्ट है। बेटी ! हम बूढ़ोंकी निगाह तो अब बाहरी बातोंपर ही पड़ती है।” यह कहते हुए सुरमाके पिता चले गये। सुरमा सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही। थोड़ी देर बाद उमा उठ बैठी और बोली—“मां ! लाओ, मैं तुम्हारे बाल बांध दूं ? बंधाओगी ?”

“नहीं री पगली !”

“क्यों मां ?”

“जिसकी बेटी बालोंमें फूल नहीं लगा सकती; उस मांको भला बाल बंधवाने चाहिये ?”

उमाने थोड़ी देर सोचनेके बाद कहा—“फिर जिस दिन तुम आयीं, उस दिन भी बाल बिखराये ही क्यों आयी थीं ? उस समय तो तुम्हारी इस लड़कीका पता भी नहीं था।” ससुरालसे आयीं, तोभी संन्यासिनी बनी हुई आयीं।”

“अरी पगली ! यह बात नहीं है। अब मैं बूढ़ी हुई। अब मुझे इतना सिंगार-पटार अच्छा नहीं लगता।”

उमाने हंसकर कहा—“क्या यही कारण है ? नहीं, कारण कुछ और ही है। मैं समझ गयी हूं। कहो तो बतला दूं।”

"बतला तो सही।"

"तुम अपने बच्चेको छोड़कर चली आयी हो, इसीसे ऐसा किये रहती हो। उन लोगोंको रुलाकर यहां चली आयी हो, इसीसे तुम्हारा यह हाल है। क्यों, है न यही बात?"

सुरमाने सहसा दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपा लिया और आर्त्त-स्वरसे बोल उठी—"उमा! उमा! अब बहुत बातें न कर। चुप हो जा।"

उन्नीसवां परिच्छेद

प्रकाशका निर्वासन

आज छः महीनेसे सुरमा अपने बापके घर चली आयी है। नये घरमें, नये-नये आदमियोंके बीचमें आकर एकदम नये ढङ्गसे जीवन व्यतीत करनेका मौक़ा आ पड़नेपर लोगोंको कुछ दिनतक बहुत बुरा मालूम होता है और वे ठीक-ठिकानेसे काम भी नहीं करते; पर सुरमा उन लोगोंमेंसे नहीं है। वह जब जिस अवस्थामें पड़ती है, तब वैसी ही बन जाती है और उसी ढङ्गसे चलने लगती है। यही उसका सदासे स्वभाव चला आता है। वह चाहे जैसी अवस्थाको पूरी तरहसे अपना लेती है; क्योंकि उसका मन पूर्ण रूपसे उसके वशमें है। अवस्था-विशेषमें वह सुख-दुःख दोनोंको

बराबर ही समझने लगती है। जो बात कभी उसके ध्यानमें भी नहीं आयी होती, वैसी अनहोनी बात हो जानेपर भी वह कभी अधिक विचलित नहीं होती। उस समय वह यही सोचने लगती कि यही मेरा प्राप्य है, इससे असन्तुष्ट होनेसे मैं अपनी आत्मा-के ही सामने लज्जित हूंगी। इसी तरह वह घड़ीभरमें अपने मनको अवस्थाके अनुकूल बना लेना जानती थी।

लेकिन इसमें भी एक बात थी। यदि आजसे दो वर्ष पहले वह इस तरह ससुरालसे पीहर चली आती तो कोई बात नहीं थी। फिर तो वह बड़े मज़ेसे अपने बालकपनके इस परिचित गृहको अपने शेष जीवनका शान्तिमय आश्रम बना लेती। परन्तु इस समय उसकी अपनी ही करनीका सोच उसके कलेजेको काट खाता और उसे अधीर बना रहा था। चारुके साथ विमल सखीत्व स्थापित कर, चारुको बड़ी बहनकी तरह निश्चल स्नेहकी आंखोंसे देखकर या नन्हेसे अतुलको अपना हृदय देकर वह अपने लिये दुःखित नहीं है—वह चारु या अतुलको प्यार करती है, इसके लिये उसे ज़रा भी पछतावा नहीं होता। चारु जिस तरह उसपर भरोसा रखती है और प्यारसे "जीजी" कहकर पुकारती है, उसीसे फूलकर उसने अपनी इच्छासे अपना हृदय उसको दे दिया है। अतुल तो उसीके जीवन्त मातृ-हृदयके स्नेहका फल है। परन्तु उसने क्यों उन लोगोंको इस प्रकार आत्मविसर्जन करने दिया? उन दोनोंने क्यों सुरमाको इस तरह अपने कलेजेमें बिठा लिया? वे हैं

कौन लोग? लोग उन्हें क्या कहते हैं? सौत और सौतेला बेटा! मेरे साथ उनका कैसा विरोधी सम्पर्क है। परन्तु वे ही सबसे अधिक मेरे लिये दुःखित हैं—शायद छटपटा रहे होंगे। और सुरमा?—छिः? इससे बढ़कर उपहासकी बात इस संसारमें और क्या हो सकती है?

क्या सुरमा अमरकी बात कभो नहीं सोचती? सोचती ज़रूर थी; पर उसे अपने जीवनको सुख-स्वर्गसे गिरा देनेवाला दुर्भाग्य, जीवनकी सारी ज्वाला-यन्त्रणाओंका मूल-स्वरूप रुष्ट-दुष्ट ग्रह, जीवनके सुख-दुःखका नियन्ता, जन्मकेन्द्रमें टिका हुआ दुष्ट नक्षत्र ही समझती थी। इस समय वह अमरकी दुर्बलताको याद कर अपने मनमें क्लेश नहीं आने देती? सोचती है कि या तो इतने दिनमें अमर सब कुछ भूल गया होगा या अब जल्द ही भूल जायेगा। केवल मेरा ही जीवन दीर्घ जटिलताओंके बीचमें होकर गुज़र रहा है—अब इसकी गति बदलने या इसे भूल जानेका कोई उपाय नहीं है। आनेके पहले उसने कुछ दिनतक अपने भ्रमको कुछ समयके लिये ओत-प्रोत-भावसे अपने मनमें छिपा रक्खा था—उसको भी उसने घृणा और उपेक्षाके भावसे क्लिष्ट कर मनके किसी कोनेमें छिपा रखनेकी चेष्टा करनी प्रारम्भ की है। वह सोचती है—मैं प्यार भी करूं तो किसे प्यार करूं? दूसरीके स्वामीको? छिः! इससे बढ़कर लज्जा और घृणाकी बात और क्या होगी? उसे तो अभिशाप देना ही

उचित है—उससे घृणा करनी ही उचित है। विदाईके समय उसके मनमें अमरके प्रति जिस भावका उदय हुआ था, वह भाव विच्छेदकी आशङ्कासे कातर मनकी क्षणजात दुर्बलता-मात्र था, इसमें सन्देह नहीं था। वह उसके लिये अपने मनमें नहीं पछताती। यदि कभी घड़ी-भरके लिये उसके मनमें वह भाव पैदा होता; तो वह अमरके ही कन्धेपर सारा दोष मढ़कर आप निश्चिन्त हो रहती थी। अमरके विचित्र व्यवहारसे ही उसे यह भ्रम हुआ था। पुरुष यदि इतनी भूल कर सकता है, तो वह स्त्री है, उसक भूल तो क्षमा करने योग्य है?

सुरमा सोचती कि यह सब उसके अतीत जीवनकी स्मृति है। इस समय उसका नया जन्म हुआ है। इस समय नये-नये आदमियों और नयी-नयी बातोंको ही उसे अपनी चिन्ताका विषय बनाना चाहिये। वह अपनी शक्ति-भर, अतीत जीवनकी स्मृतियोंको दूर करनेकी चेष्टा भी करती थी; लेकिन जैसे भूत-ग्रस्त मनुष्यको रह-रहकर भूत दिखाई दे जाता है, वैसे ही सुरमाका दुष्ट चिन्तारूपी भूत भी उसके मनमें झलक दिखा ही जाता था।

पिताकी उस दिनकी बातोंसे सुरमाको मालूम हो गया कि उसके व्यवहारों और चिरकालके स्वभावानुसार वेश-भूषामें वैसी आसक्ति न होनेपर पिता कुछ और ही ख़याल कर रहे हैं। उसने मन-ही-मन लज्जित होकर सोचा—“छिः! लोग ऐसा ख़याल क्यों करते हैं? क्या बाल संवारना और गहने पहनना

औरतोंके लिये ज़रूरी ही है ? भगवान्‌ने ऐसी पराधीन जातिको किस लिये सृष्टि की, जिसे इस सोचमें भी मरना पड़ता है कि उसको मामूली वेश-भूषा देखकर लोग क्या सोचेंगे ?"

सिंगार-बनावमें क्या रस है, यह वह कभी नहीं जानती थी—यह उसका स्वभावसा हो गया था। इस समय पिताकी बातोंसे लज्जित और दुःखित होकर उसने अपने बिखरे हुए रुखे-सूखे जटा-जालकेसे बालोंको कंघीसे सुलझाकर किसी तरह बांध लिया और एक धुली हुई साड़ी पहनकर बाहर उमाके पास आकर बोली—"क्यों उमा ! अब तो मैं अच्छी लगती हूं न ?"

उमा भरपेट हंसकर बोली,—"धत् ! यह कौनसा श्रृङ्गार है ? एकदम बुरा लगता है। उससे तो तुम्हारी खुली लटें ही अच्छी थीं ?"

"जो हो, इससे पिताजी प्रसन्न होंगे।"

"नहीं, नहीं, तुम बाल खोल डालो। ज़रा आईना लेकर देखो तो सही, कैसा भद्दा दीखता है।"

सुरमाने हंसकर मुंह फेर लिया।

इस समय सरला उमा ही सुरमाकी चिन्ताका प्रथम स्थान बन गयी है। सुरमाको यह समझते देर न लगी कि संसारके देखनेमें यद्यपि प्रकाश और उमामें कोई सम्बन्ध नहीं है, तो भी न जाने कौनसे अलौकिक जगतके एक सूक्ष्म और दुश्छेद्य योगसूत्रमें दोनों बंधते चले जाते हैं। परन्तु हाय ! यह

बन्धन तो गलेकी फांसी है। उमा विधवा है। सुरमाने सोचा कि इस तरह प्रकाशका सङ्ग रहना उमाके लिये अच्छा नहीं है। उमा और प्रकाशमेंसे किसी एकको दूसरी जगह भेज देना चाहिये। नहीं तो जो बन्धन-सूत्र इस समय फूलोंकी मालाके आकारमें है, वह किसी दिन लोहेकी ज़ंजीरकी तरह मजबूत हो जायेगा और फिर तो संसारकी बड़ी-से-बड़ी आंधीको भी कुछ चीज़ न समझेगा। प्रकाशके न बाप है, न मां—सुरमाके पिताने ही उसे बचपनसे पाल रखा है। दूरके नाते वह उनका भाई लगता है, तोभी राधाकिशोर-बाबू उसे अपनी माँके पेटसे पैदा भाई समझते हैं। उधर उमाको भी उन्होंने ही पालना शुरू कर दिया है; क्योंकि इसके भी कोई नहीं है। उसकीसी अल्हड़-नादान विधवा बालिकाको सुरमा प्राण रहते कभी अपनेसे अलग नहीं कर सकती। इसलिये उसने सोचा कि प्रकाशको ही कहीं भेजनेका उपाय करना चाहिये। इसके सिवा उसे और कोई तरकीब न सूझी। सुरमा अपनी ससुरालमें अपने ससुरकी एक प्रधान मन्त्रिणी थी और उन्हें जगह-ज़मीनके मामलोंमें भी सलाह दिया करती थी। इसीसे वह यहाँ आकर भी—उसी जगहपर बैठ गयी थी। एक दिन पिताके साथ ज़मींदारीके इन्तज़ामके ही बारेमें कुछ बातें कर रही थी, इतनेमे मौक़ा पाकर उसने बड़ी चतुराईसे वह बात छेड़ दी। उसने पिताको समझाया कि प्रकाशको परदेश भेजे बिना उसकी उन्नति नहीं होगी; क्योंकि वही इस समय आपका सहकारी या दीवान है। तुम्हारे

न रहनेपर वही यहाँका प्रधान कर्मचारी होगा, क्योंकि मैं जानती हूं कि आप शीघ्र ही तीर्थ-वास करनेके लिये जानेवाले हैं। इसी इरादेसे आपने प्रकाशको इण्ट्रन्स पास कर लेनेके बादसे ही यहां ज़मींदारीका काम सम्हालनेको कह दिया है। यों तो राधिका-बाबू कभी दीवान नहीं रखते थे, आप ही सब काम देखते थे ; क्योंकि दीवान-गुमाश्तोंका उपद्रव वे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। वे थोड़ी-बहुत विदेशी विद्या सीखनेकी अपेक्षा अपना ही काम ठीक-ठिकानेसे कर लेना कहीं अच्छा समझते थे। सुरमाने उन्हें समझाया कि प्रकाशको सारी ज़मींदारीमें एक दफ़े घूम आना चाहिये। कहाँ कैसे वसूली होती है, कहांकी प्रजा कैसी है, कौन ज़मीन पड़ती है, कहाँ ख़ास आबादी है, कहां लाभ होता है, और कहां नुक़सानका डर है—यह सब उसको अच्छी तरह समझ-बूझ लेना चाहिये।

राधाकिशोर-बाबूने उसी दिन प्रकाशको हुक्म दिया कि ताहिरपुरकी ज़मींदारीमें बड़ा गोलमाल मचा हुआ है, तुम मेरी तरफ़से वहां जाओ और कुछ दिन रहकर नये सिरेसे बन्दोबस्त कर आओ।

प्रकाशकी यात्राका दिन आ पहुंचा। सुरमाने बड़ी चतुराईसे उमाको इस तरह अपनी नज़रोंपर चढ़ाये रखा कि वह अकेलेमें प्रकाशसे न मिलने पाये, नहीं तो न जाने बालिकाके सरल हृदयमें कैसा दाग़ पड़ जाये! प्रकाश सुरमासे मिलने आया, तो उसने देखा कि सुरमा और उमा दोनों साथ ही बैठी

। दोनों काममें लगी हैं। सुरमा उमाको तरह-तरहके सन्देश नाना सिखला रही है। घीके छन-छन और झरनेके झन-झन शब्दसे उमा बड़ी प्रसन्न हो रही है। साड़ीको कमरमें लपेट बालोंको ऊंचा करके बांधे हुए वह बड़ी परेशानीके साथ कभी इधर आती है, कभी उधर जाती है। सुरमा सिर्फ़ खोया और छेना गूंध रही थी और मारे फ़र्माइशोंके उमाको दम मारनेकी भी फ़ुर्सत नहीं पाने देती थी। मलिन मुंह बनाये, यात्राके समयके कपड़े पहने हुए अनिन्दनीय तरुण-कान्तिवाले प्रकाशको चुपचाप खड़ा देख सुरमाने बड़े प्यारसे कहा—"आओ, आओ प्रकाश, बैठो।" उमाने भी झरना नीचे रख दिया और पूछा—"अच्छा तुम कहां जा रहे हो? "ताहिरपुर? आज ही चले जाओगे?"

प्रकाशने कुछ जवाब नहीं दिया। सुरमा उसकी ओरसे बोल उठी—"आज ही नहीं, अभी? जा, एक तश्तरी ले आ प्रकाश! ज़रा उमाके हाथका तैयार किया हुआ सन्देश खाकर जाओ। बैठो।" प्रकाशने आनाकानी करते हुए कहा—"अभी तो खाकर चला आ रहा हूं—मुंहमें पान भरा है। अभी नहीं खाऊंगा।"

"अभी जा रहे हो? कब जाओगे? तुम उमाके हाथकी मिठाई न खाओगे तो उसे बड़ा दुःख होगा। अरे, यह क्या? उमा! देखो, देखो, इस बारके सब सन्देश बिलकुल बिगड़ा चाहते हैं। जल्दी उठा लो।" उमा झेंप गयी और अपना काम देखने लगी।

सुरमा बोली—"प्रकाश ! लो, खा लो। उमा ! कहती क्यों नहीं ?"

उमाने लज्जित हो सिर झुकाये हुए कहा—"मैं अब क्या कहूं ? प्रकाश ! लो एकाध सन्देश खाओ।" प्रकाश तश्तरीके पास आ बैठा। एक सन्देश तोड़कर मुंहमें डालते ही बोला—"बस, अब और नहीं।"

"क्या अच्छा नहीं बना ?"

"नहीं, अच्छा क्यों नहीं बना ! यह समय कुछ खानेका थोड़े ही है ?"

उमाने सरल स्निग्ध नयनोंसे प्रकाशकी ओर देखते हुए कहा—"तो फिर कब खाओगे ? तुम तो अभी जानेवाले हो।" उसकी उस दृष्टिको देखकर प्रकाश चौंक पड़ा—उसे विस्मय भी हुआ और दुःख भी। फिर तो उसे यह भी नहीं मालूम हुआ कि उसने चुपचाप कितने सन्देश उड़ा डाले। उठकर हाथ धोते-धोते उसने कहा—"जानेका समय हो गया है। अब मैं चलता हूं।" सुरमाने कहा—"जानेकी बात क्यों कहते हो ?" प्रकाश मुस्कुराया—वह हंसी बड़ी करुणा-भरी थी। "अच्छा तो सुरमा ! मैं अभी जाता हूं। उमा ! फिर आऊंगा।" कहकर प्रकाश जाने लगा। उमाने आंखें नीची किये हुए सिर हिलाया। सुरमाने कहा—"पिताजीको बराबर चिट्ठी भेजते रहना।" अच्छा, कहकर प्रकाश चला गया।

मन ही-मन दीर्घ निःश्वास लेकर सुरमाने कहा—"मैंने बड़ी

निठुराई की; पर क्या करूं? लाचारी थी।" उसका हृदय सब तरहका दुःख-कष्ट सहन कर सकता था; परन्तु उससे अन्याय नहीं सहा जाता था; वह कभी अन्यायका समर्थन नहीं कर सकती थी। चाहे लाख दुःख-कष्ट उठाना पड़े, पर वह अन्याय-के विरुद्ध एकदम ताल ठोंककर खड़ी हो जाती थी। उमाका मन फेरनेके लिये सुरमाने कहा—"देखो, इस तश्तरीमें चुन-चुनकर बढ़िया-बढ़िया सन्देश रखो,मैं पिताजीको बुलवाती हूं।"

उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करते-करते उमाने पूछा—"माँ, अब प्रकाश कब आयेगा?"

"सो मैं क्या जानूं? वह जहां गया है वहाँ रहनेसे उसकी उन्नति होगी, वहाँ रहकर वह और भी होशियार हो जायेगा। इतनी बड़ी ज़मींदारीका सारा बोझ तो उसीके सिरपर है। अच्छी तरह काम नहीं सीख लेगा तो उसकी उन्नति कैसे होगी?"

"भला!" कहकर उमा चुप हो रही। क्षणभर बाद न न जाने क्या सोचकर बोली—"महीने-दो महीने बाद आयेगा?"

"हां,क्यों नहीं? अच्छा, चलूं, आसन बिछाऊं, पिताजी आ रहे हे। बस, ये जो दो-चार सन्देश बचे हैं, उन्हें भी अच्छी तरह तल ले।" उमा फिर हाथमें झरना लेकर तिपाईपर बैठी और घीकी गरमी और अपने सन्देश बनानेकी त्रुटिकी भलीभांति छानबीनकर समालोचना करने लगी।

जब खा-पी लेनेके बाद राधाकिशोर-बाबूने कहा कि ख़ूब

बढ़िया सन्देश बने हैं—उमा तो ख़ूब बढ़िया सन्देश बनाने सीख गयी—तब ख़ुश होकर उस बालिकाने सोचा कि यह तो उसकी मांके साथ बड़ा भारी अत्याचार किया जा रहा है। कम-से-कम इस प्रशंसाका कुछ भाग उन्हें भी मिलना चाहिये। यही सोचकर वह बोली—"पर मां बराबर देखती रही हैं, बीच-बीचमें बनाकर नमूना भी दिखाती रही हैं। सब मेरा ही बनाया हुआ नहीं है।" बात बीचसे ही काटकर सुरमाने कहा—"उसकी क्या गिनती है? मैंने तो चारुको सैकड़ों बार हाथ धर-धरकर बनाना सिखआया, तोभी उसे कभी कोई चीज़ अच्छी तरह बनाने नहीं आया।"

"कौन चारु? तुम्हारी बहन? तब तो वह मुझसे भी बढ़कर फूहड़ है।"

पिताके सामने उन लोगोंका नाम लेनेके कारण सुरमा शर्मा गयी। उसने डरके मारे बात पलट दी और कहा—"ये सन्देश और भी अच्छे होंगे। देखना, इसमें डालनेके समय अन्य-मनस्क होकर न छोड देना।" खाकर मुंह पोंछते-पोंछते राधा-किशोर-बाबूने कहा—"प्रकाश बड़ा अच्छा लड़का है। उसने ज़रा भी आनाकानी नहीं की। हर बातमें वह मेरे ही ऊपर निर्भर रहना है। उसका अन्तमें भला ही होगा।" प्रसन्न मनसे आशीर्वाद देते हुए बूढ़े राधाकिशोर-बाबू दूसरे काममें जा लगे। उमा आनन्दके साथ घरके और लोगोको अपने तैयार किये हुए सन्देश खिलाने चली। उस समय सुरमा उदास मनसे नावपर

चढ़कर जाते हुए प्रकाशकी मलिन और विमर्ष मुखकान्ति तथा उसकी निःसङ्ग अवस्थाका ही ध्यान कर रही थी। उसने सोचा—"सब किसीके प्रीति-पूर्ण सरल हृदयोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालनेके ही लिये मेरा इस संसारमें अवतार हुआ है। क्या सचमुच मैं इसीलिये पैदा हुई हूं?" सुरमाकी सारी देह कांप उठी।

धीरे-धीरे एक-दो करते-करते छः महीने बीत गये। पहले तो उमा केवल प्रकाशके ही सोचमें पड़ी रहती थी। सदा यही सोचा करती कि वह न जाने क्या करता होगा, कब आवेगा? यही सब सवाल कर-करके वह सुरमाको कुढ़ाया करती थी। अब वह वैसा नहीं करती। हां, जब कभी प्रकाशकी चिट्ठी आती है, तब उसका समाचार पूछकर अपना काम करने लगती है। सुरमाने एक नया रसोईघर बनाया है। सुरमा और उमा ही उसकी अध्यक्षायें हैं। प्रायः प्रतिदिन राधिका-बाबूको यहीं आकर भोजन करना पड़ता है। कभी-कभी तो रसोई बनानेमें उमा सुरमाको भी मात कर देती है। उसीके उपद्रवके मारे सुरमाने जरदोज़ी और ऊनकी बुनाईका काम बन्द कर दिया है; क्योंकि यह सब काम उमाको बिलकुल ही नहीं पसन्द हैं। उमाको और एक बातका बड़ा शौक़ है। वह चारुके लड़कपनकी बातें सुनना बहुत पसन्द करती है। चारुकी लापरवाही और अपटुताके विषयमें बातें करते-करते जब सुरमाका स्नेह-गद्गद्कण्ठ प्रायः भर आता है, तब उमा हंसकर कहने लगती है—"ओह! ऐसा

भी कहीं आदमी होता है ? मौसीको कुछ भी करना-धरना नहीं आता, तोभी तुम रात-दिन उन्हींकी चर्चा किया करती हो और मैं इतनी अच्छी कारीगर हूं, तोभी मेरी किसी दिन बड़ाई नहीं करतीं। जाओ, मां ! तुम बड़ी दुअरखी हो—एक नज़रसे नहीं देखतीं।"

सुरमा मुस्कुराती और प्यारसे उसके गालमें चुटकी भरकर कहती—"तू बड़ी नटखट है।"

बीसवां परिच्छेद

चारुकी चिट्ठी

आज घरमें लक्ष्मीजीका पूजन है। इसलिये सुरमा पूजाकी तैयारीमें लगी है। उमाने अपने हाथमें नैवेद्यकी थालियां सजानेका भार लिया है। उसने प्रतिज्ञा कर ली है, कि इस काममें वह सुरमाकी कुछ भी सहायता न लेगी। सुरमा भी इस बातपर राज़ी हो गयी है। उसके काममें उमा एक बार नहीं, चार-पांच बार टोक गयी। जब आती तब पूछती, "तुम्हारा काम हो गया ? अब मैं नैवेद्य ले आऊं ?" सुरमा उसे और भी ख़ुश करनेके लिये कहती—"हैं ! तेरा काम इतनी जल्दी कैसे ख़तम हो गया ? आज तो तू स्वयं लक्ष्मी बन गयी है।" उमा कहती—"जाओ, मां ! बातें न बनाओ। तुम चौक तो पूरो।"

सुरमा कहती—"यह देख, हो गया। बता तो सही, कैसा हुआ ?" उमा मुग्ध नेत्रोंसे रङ्ग-बिरङ्गे चौक पूरे हुए देखकर बोली—"वाह! बड़ा सुन्दर हुआ है। मैं भी सीखना चाहती हूं; लेकिन—"सुरमाने कहा—"लेकिन क्या ?" उमा बोली—"बड़ी देर लगती है। इतनी देरमें तो मैं रसोई-पानी करके छुट्टी पा जाती हूं।" सुरमाने कहा—"अच्छा, जा, तू अपनी सब चीज़ें ले आ। पुरोहितजी आया ही चाहते हैं। मैं तुझे बतला दूं कि कौन चीज़ कहां रखनी होगी।"

इसी समय एक दाई एक चिट्ठी लिये हुई आ पहुंची और बोली, "लो, जीजी! यह तुम्हारी चिट्ठी आयी है।" उमाने विस्मित होकर कहा—"पढ़कर देखो तो मां! किसने क्या लिखा है ?" सुरमा अपनेको सम्हालकर धीरेसे बोली—"बाबुकी होगी।"

उमा—"लेकिन सिरनामा तो मौसीका लिखा हुआ नहीं मालूम होता।"

सुरमा—"अच्छा, तू जाकर नैवेद्य लेती आ, तबतक मैं इसे पढ़कर देखती हूं।"

यह कह, सुरमा झटपट अपने कमरेमें चली गयी। सिरनामा सचमुच दूसरेके हाथका लिखा हुआ था। किसका लिखा था, यह सुरमा जानती थी, इसीसे उसका कलेजा कांप रहा था। जाने कैसा भय उसे हो आया, कि उसके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। उसने सोचा—"अबकी साल-भर बाद यह कैसी बात है ? आज यह चिट्ठी कैसे आयी ? किसलिये आयी ? क्या मेरा

० करनेके लिये ? या इस बातकी याद दिलानेके लिये कि मैं पुरानी बातें भूली नहीं हूं ? यही सोचते-सोचते सुरमाकी सारी देह पसीनेसे तर हो गयी। वह हाथमें चिट्ठी लिये मूर्त्तिवत खड़ी रह गयी।

उमाने आकर कहा,—"पुरोहितजी आकर पूजापर बैठ चुके हैं। मां, अब चलो न।" सुरमाके हाथमें चिट्ठी ज्यों-की-त्यों पड़ी देखकर वह बोली—"अरे, तुमने अभीतक चिट्ठी खोलकर देखी भी नहीं ? यह क्यों ? यह किसकी चिट्ठी है, मां ?"

सुरमाने अपनेको सम्हालकर कहा—"तू चल, मैं अभी आती हूं।"

"देखना, जल्दीसे आना।" कहकर उमा चली गयी। अपने कांपते हुए हाथों और हृदयको बड़े क्रोधके साथ कोसते हुए सुरमाने उस चिट्ठीको खोला। खोलते-ही-खोलते वह चिट्ठी आधी फट गयी—उसने देखा कि वही अक्षर हैं। यह क्या अन्याय है ? नहीं, मैं इसे नहीं पढ़ूंगी—न पढ़ना ही उचित है। उसने पत्रको कहीं रख देना चाहा; फिर न जाने क्या सोचकर उसने उसे दराज़के ऊपर रख दिया। अब घरसे बाहर होनेके लिये उसके पैर आगे नहीं बढ़ते थे। उसने सोचा,—"क्या मैं पढ़ूं नहीं ? अतुल कैसा है, यह जाननेमें दोष क्या है ? उसने फिर पत्रको अपने हाथमें लिया और पढ़ना शुरू किया; पर कुछ मतलब समझमें नहीं आया—केवल कतार बांधे हुए अक्षर ही उसके सिरमें चक्कर काटने लगे। अबकी उसने फिर उसे पढ़ा। इस बार अर्थ समझमें आया। उसने पढ़ा—

"जीजीके चरणोंमें मेरा प्रणाम। यह तो आशा नहीं है कि मुझे इस पत्रका उत्तर मिलेगा, तोभी यह चिट्ठी भेज रही हूं। मुझे बड़े ज़ोरका बुख़ार है। ख़ुद चिट्ठी नहीं लिख सकती, तोभी तुम्हारे उत्तरकी आशा मुझसे छोड़ी नहीं जाती। तुम्हारा अतुल अच्छी तरह है। वह बहुत दुबला-पतला हो गया था, अब थोड़ा मोटा हुआ है। 'तुम्हारी मां आ रही हैं' यह कहते ही वह खिड़की खोलकर बाहर झांकने लगता है। मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि एक बार तुम्हारे पास आऊं। लड़की बड़ी रोनी है—रो-रोकर जान खाये डालती है। जीजी! क्या मैं एक बार तुम्हारे पास आऊं? विशेष प्रणाम।

तुम्हारी वही—चारु।"

"चारु! चारुने ही पत्र लिखा है, उन्होंने नहीं लिखा।" चारुकी भाषाने उसे और भी विश्वास दिला दिया कि यह पत्र उसीका है। सुरमाके जीमें जी आया—वह निश्चिन्त मनसे अपना काम करने चली गयी।

तीसरे पहर उमाने भी वही चिट्ठी पढ़ी और बड़ी उदासीके साथ पूछा—"मौसी बीमार हैं, यहां आना चाहती हैं, लिख न दो कि चली आयें?"

सुरमा—"तू पागल हो गयी है क्या?"

उमा—"क्यों? वे बीमार हैं, बुला लो।"

सुरमा—"बीमार है तो क्या हुआ। उसके स्वामी तो उसके पास हैं? दो-चार दिनमें आप ही अच्छी हो जायेगी।"

उमा—"पर उनकी इच्छा यहां आनेकी हो रही है।"

सुरमा—"यह सब कोरी बातें हैं। उसे कौन यहां भेजना है? यह मुझे ही बुलवानेका एक ढङ्ग है।"

उमा—"तो फिर चलो न। मुझे भी मौसीको देखनेकी बड़ इच्छा हो रही है। चलो, इस बार देख आऊं।"

सुरमा—"अभी नहीं—अतुलके ब्याहमें ले चलूंगी।"

उमा—"बाप-रे-बाप! अभी तो अतुल तीन-ही-चार सालका है। उसके ब्याहके आसरेपर कितने दिन ठहरूं? तुम भी ख़ूब कहती हो।"

सुरमा—"होगा तो इसी जन्ममें? फिर क्यों घबराती है? कोई अगले-जन्मकी बात थोड़े ही कहती हूं?"

उमा—"जाओ, मुझे ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। अच्छा, यह तो कहो, तुम मौसीके पत्रका उत्तर दोगी न?"

सुरमा—"जब उसके आराम हो जानेकी ख़बर पाऊंगी तभी पत्र लिखूंगी।"

उमा—"कौन ख़बर देगा?"

सुरमा—"वही देगी।"

उमा—"तब तो तुम बड़ी अच्छी बहन हो।"

सुरमा मुस्कुरायी। बात सुरमाकी ही रही। कई दिन बाद चारुने अपने हाथसे लिखकर यह चिट्ठी भेजी—"जीजी! मैंने जो तुम्हें पत्र भेजा था, उसका तुमने उत्तर नहीं दिया। तुम्हें गये हुए साल-भर हो गया। इस बीच तुमने दो ही पत्र

भेजे हैं। इधर छः महीनोंसे तो तुमने एक भी पत्र नहीं लिखा। अब तो बीमारीकी बात लिखनेपर भी तुम नहीं घबरातीं। अब क्या तुम वही जीजी हो?

"मैं अच्छी हो गयी। तुम्हारा अतुल आराममें है। लड़की भी अच्छी तरह है। खूब अच्छी तरह है। खूब अच्छी लड़की है। क्या तुम्हारी इसे एक बार देखनेकी भी इच्छा नहीं होती? धन्य हो जीजी! आज जीमें आता है कि तुम्हें खूब कड़ी-कड़ी बातें लिख डालूं। तुम नाराज़ होगी तो भले ही हो जाओ। यों भी उत्तर नहीं देती। तो फिर नाराज़ हो जाओगी तो मेरा क्या नुक़सान होगा?

"तुमने जो काम किया है, वह क्या अच्छा काम है? तुम, अपने मनमें भले ही उसे अच्छा समझो, पर मैं तो उसे अनुचित ही समझती हूं। तुम क्या स्त्री नहीं हो? यदि स्त्री पुरुष हो जाये और पुरुष स्त्री बन जाये, तब तो ब्रह्माकी सृष्टि ही उलट जायेगी। विधिके विधानको जो उलटता है, वह दोषी होता है। बेटी, बहन, स्त्री, और मां जिस जातिकी हैं, वही जाति तो तुम्हारी भी है? इस जातिकी सदासे यही रीति चली आयी है कि अपने स्नेह-पात्रके सौ-सौ अपराधोंको ये क्षमा कर देती हैं। उसी स्त्री-जातिमें जन्म पाकर तुम मर्दोंकी तरह इतनी कठोर क्योंकर हो गयीं?

"तुम मुझे अपने पास इसी डरसे नहीं बुलवाती कि मैं आकर तुम्हें जलाऊंगी, तुम जिसे भूलने गयी हो, उसे नहीं भूलने दूंगी। परन्तु मेरे भाग्यमें चाहे जो हो, मैं तो तुम्हें जलाऊंगी ही।

मैं किसी दिन तुम्हारे पास ज़रूर ही चली आऊंगी। तुम्हारा धीरेसे मना करना और इनका (स्वामीका) ज़ोरसे डपटकर मना करना मैं नहीं मानूंगी। तुम किस तरह रहती हो? पिता जी कैसे हैं? उनसे मेरे सौ-सौ प्रणाम कहना। तुम भी मेरा प्रणाम स्वीकार करना। प्रणामके सिवा और तुम्हें क्या दूं? देनेकी इच्छा भी तो नहीं होती।

तुम्हारी,

चारु।"

सुरमाने पत्रको पूरा पढ़कर न जाने क्या-क्या सोचा। इसके बाद कागज़-क़लम हाथमें लेकर उत्तर लिखने बैठी। उसने लिखा—

"आशीर्वाद। तुम्हारी पागलपनसे भरी हुई चिट्ठियां बराबर आती रही हैं। एकान्त समय नहीं मिलता, इसीसे उत्तर लिखनेमें इतनी देर हुई। आज तुमने पागलपनकी मात्रा बढ़ा दी है। इसीलिये किसी तरह समय निकालकर यह पत्र लिख रही हूं। मालूम नहीं, इसकी बातें तुम्हें पसन्द आयेंगी या नहीं। आज तुम यह समझ रही हो, कि मैं नाराज़ हो जाऊंगी तो तुम्हारा कोई नुक़सान नहीं होगा; पर पहले तो तुम अपना लाभ होते हुए भी मुझे असन्तुष्ट करना नहीं चाहती थीं। दूर चले जानेसे आदमी इसी तरह दिलसे भी दूर हो जाता है। तुम लिखती हो कि पुरुष स्त्री बन जाये और स्त्री पुरुष, तो विधिका विधान ही पलट जायेगा। यह बात सब हो सकती है; पर तुम्हें यह याद रखना चाहिये कि स्त्री सदा स्त्री ही रहती है और पुरुष कभी पुरुषके सिवा स्त्री नहीं होता। जो इसके विरुद्ध

देखता है, उसकी नज़रमें ख़राबी है। तोभी यदि कभी कहीं स्त्री पुरुष-भावसे युक्त होकर अपनी और अपने सगे-सम्बन्धियों-की भलाई ही करनी हो,तो समझना चाहिये कि विधिका विधान ही ऐसा है कि वह स्त्री पुरुष हो जाये।

"तुम जैसी अल्हड़ हो, उससे तो मुझे ठीक मालूम होता है कि तुम सवाल कर बैठोगी कि वह भलाई कौनसी है? इसके उत्तरमें मैं इतना ही कहूंगी कि जिसकी विधि है, वही इस बातको बतला सकते हैं, हम-तुम तो आदमी हैं, हमारी नज़रोंसे उनकी सभी बातें थोड़े ही दिखाई देती हैं?

"बस, बहन! तुम्हारी जीजी तुमसे यही भीख मांगती है कि इन सब दिल जलानेवाली बातोंकी तो चर्चा ही न किया करो। तुम्हारी बड़ी सुन्दर लड़की हुई है, यह जानकर मैं सुखी हुई। उसका क्या नाम रक्खोगी? अतुल—मेरा प्यारा अतुल—क्या अबतक अपनी निर्दयी मांको नहीं भूला? वह क्या अब भी मुझे खोजता है? मैं तुमसे अनुरोध करती हूं कि उसको मेरी बातें याद न करने देना—तुम भी मुझे भूल जाना। मेरी ओरसे अतुलको एक बार चूम लेना। नहीं,नहीं, उसे मेरी याद मत भूलने देना—तुम्हीं लोग मुझे भूल जाना। वह मुझे भूल जायेगा, यह तो सोचते हुए भी मेरा कलेजा फटा जाता है। तुम लोग कभी अपने मनमें यह बात न आने देना कि सुरमा नामकी भी कोई स्त्री तुम्हारे नाते-गोतेमें थी। बस—

तुम्हारी निष्ठुर बहन,

सुरमा।"

यह चिट्ठी देखनेके लिये उमाने बड़ा हठ पकड़ा। उसने सुरमा-से मुंह फुला लिया—पीठ फेरकर बैठ रही। उसने क़सम खाकर कहा कि अगर चिट्ठी न दिखाओगी, तो मैं फिर कभी इस जन्ममें तुमसे बातें न करूंगी। तोभी सुरमा अपने प्रणसे न टली। वह जानती थी कि, उमाकी यह क़सम के घड़ीके लिये है? परन्तु उमा जब दोनों आंखोंमें आंसू भरे उठ खड़ी हुई, तब तो सुरमासे न रहा गया। वह चिट्ठी उमाको देकर किसी और कामको चली गयी।

पत्र पढ़कर, उसे डाकख़ाने भिजवाकर उमा सुरमाके पास आ खड़ी हुई। सुरमाने देखा कि उसकी आंखोंमें आंसू भरे हैं—कुछ-कुछ सूज भी आई हैं। मलिन हंसी हंसकर सुरमाने कहा—"अरे, आज तो सवेरे-ही-सवेरे गुलाबको पाला मार गया है।"

"जाओ, मुझे यह सब लाड़-प्यार अच्छा नहीं लगता" यह कहकर उमाने मुंह फेर लिया। फिर तुरन्त ही सुरमाके पास खिसककर चली आयी और बड़े नखरेसे बोली—"मां, तुमने वैसी चिट्ठी मौसीको क्यों लिखी? उसे पढ़कर मौसी बहुत रोयेंगी।"

सुरमाने हंसकर कहा—"भला किस दुःखसे रोयेंगी? क्या संसारभर तेरी ही तरह पागल हो गया है?"

उमाने कहा—"मैं क्या जानूं, मां? मुझे तो बड़ी रुलाई आ गयी। क्या तुम्हें रुलाई नहीं आती? तुम सबको रुलाया करती हो?"

थोड़ी देर चुप रहनेके बाद सुरमाने धीरेसे हंसकर कहा—"रुलाती हूं; पर रोती नहीं हूं।"

उमा—"यह तो हो ही नहीं सकता। जो दूसरेको रुलाता है, वह आप भी ख़ूब रोता है। तुमने चिट्ठीमें ही कितना रोना रोया है।"

सुरमाने चौंककर कहा—"धत्—झूठी कहींकी, चिट्ठी पढ़कर तूने क्या यही मतलब निकाला?"

उमा—"हां।"

सुरमा—"तब तो मैं वह चिट्ठी डाकमें न छुड़वाऊंगी।"

उमा—"मैंने तो उसे छुड़वा भी दिया।"

सुरमा अपने पीले मुखड़ेपर क्रोधकी ललाई लाकर ज़रा कड़ककर बोली—"उमा! तू दिन-दिन और भी नन्ही-नादान होती जाती है? बिना पूछे काम क्यों किया करती है?"

डरके मारे उमाके चेहरेका रङ्ग उड़ गया—फिर वह सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही। चञ्चल चित्तसे सुरमा दूसरा काम करने चली गयी। उसने सोचा—"सचमुच क्या मैं इतनी दुर्बल हो गयी हूं? रोऊंगी किस लिये? मैं तो हृदयसे कभी किसी दिन नहीं रोयी; परन्तु पत्रसे यह भाव झलक रहा है। जब उमा-जैसी अल्हड़ लड़कीने यह बात समझ ली, तब जो उसे पढ़ेगा, वह तो अवश्य ही यही मतलब निकालेगा। मुझे मालूम है कि चारुकी चिट्ठी अकेली वही नहीं पढ़ती। फिर भी मैंने क्या कर डाला? वे न जाने अपने मनमें क्या समझेंगे?"

सचमुच सुरमाकी इच्छा हो रही थी कि वह भी उमाकी तरह ही रो दे।

तीसरे पहर उमा आकर सुरमाके पीछे खड़ी हो रही। सुरमाने उसकी ओर घूमकर देखा और पूछा—"क्यों उमा ! क्या है ? तू अबतक कहां थी ?"

इसका कोई उत्तर न दे, उमाने एक बार उसकी मुंहकी ओर देखा—फिर सिर झुकाये बोली—"अब कभी ऐसा न करूंगी।"

सुरमा बोली—"क्या नहीं करेगी ?"

उमा—"बिना तुमसे पूछे कोई काम न करूंगी।"

सुरमाको बड़ा पछतावा हुआ। उसने उस प्रेमकी भूखी बालिकाको अपने पास खींच लिया। उसे गोदमें बिठाकर बड़ी देरतक उसके बिखरे बालोंको सुलझाती रही। कुछ देर बाद जब उमाने कहा—"यह लो, मैं तो आज पूजाकी माला गूंथना भी भूल गई। चलो मा ! मेरे साथ-साथ कुछ दूरतक चलो।" तब सुरमाने बड़े प्यारसे उसका मुंह चूम लिया।

इक्कीसवां परिच्छेद

मोह-माया

माणिकगञ्जके ज़मींदार बाबू अमरनाथ मित्रके बड़े भारी महलसे सटी हुई फुलवाड़ीमें एक खिले हुए फूलका-सा सुन्दर बालक खेल रहा है। साथ ही एक दाईकी गोदमें
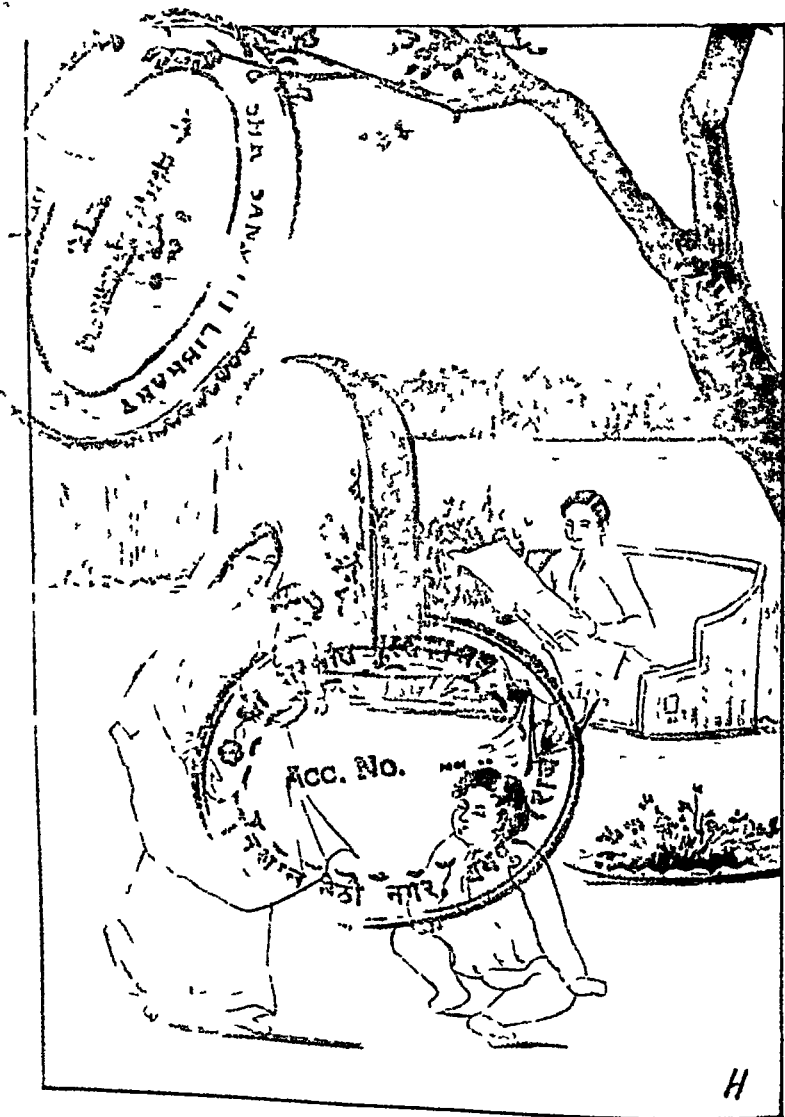
फुलवाड़ीमें एक खिले हुए फूलका-सा सुन्दर बालक खेल रहा है। एक दाईकी गोदमें एक खिली हुई कलीकी-सी लड़की मौजूद है। बेंचपर बैठे हुए जमींदार बाबू अखबार पढ़ रहे हैं। (पृ० ३०३)

एक खिली हुई कलीकी-सी लड़की मौजूद है। थोड़ी ही दूरपर एक बेंचपर बैठे हुए ज़मींदार-बाबू एक अखबार पढ़ रहे हैं।

दाईने पुकारा—"छोटे बाबू! शाम हुई, घर चलो।"

बालकने मचलकर कहा—"मेरा खेल अभी ख़तम नहीं हुआ।"

दाई—"चलो, सर्दी लग जायेगी।"

बालक—"लगने दे—तू चली जा।"

दाई—"बेटा! बच्चोंको तबीयत ख़राब हो जायेगी, चलो।"

बालक—"तू उसे पहुंचा क्यों नहीं देती?"

दाई—"तुम अकेले ही रहोगे?"

बालक—"हां, तो क्या होगा?"

दाई—"बच्चे पकड़नेवाले पकड़ ले जायेंगे।"

बालकने मुट्ठी बांध फ़ाटककी ओर देखते हुए कहा—"आये तो सही, मैं ऐसा घूंसा मारूंगा कि—"

अख़बार पढ़ना ख़तम कर पिताने कहा—"किसे घूंसा मारेगा रे?"

बालक—"जो बच्चोंको पकड़ते हैं, उनको।"

पिता—"बच्चोंको पकड़नेवाले हैं कहां?"

बालक—"दाई कहती है कि वे आकर मुझे पकड़ ले जायेंगे।"

दाईने फिर आवाज़ दी—"चलो बेटा! सर्दी लग जायेगी।"

बालक—"मैं नहीं जाऊंगा।"

दाई—"तुम्हारी मां बुला रही हैं।"

खेलना बन्दकर, दाईकी ओर देखते हुए बालकने पूछा—"कौन मां?"

दाई—"कौन मां? तुम्हारी मां?"

बालक—"जा, जा, मैं नहीं जाऊंगा।"

यह कह वह अपने पिताके पास चला गया और बोला—"मैं तुम्हारी अंगुली पकड़कर टहलूंगा।"

दाई—"आप ही कह न दीजिये कि लड़का मेरे साथ घरके भीतर चले—सर्दी लग जायेगी।"

उस समय पिता न जाने क्या सोच रहे थे। अनमनेसे बोल उठे—"जाने दे, तू चली जा।"

दाई गोदके बच्चेको लिये हुई चली गई। अतुल पिताकी अंगुली पकड़े घूमता हुआ तरह-तरहके सवाल कर उनका सिर खाने लगा। परन्तु पितासे एक सवालका भी ठीक-ठीक उत्तर देते नही बना। चारों ओर अंधेरा छा गया। महलके कमरोंमें जलनेवाली रोशनियां खिड़कीकी राह बागीचेमें आकर वृक्षोंपर सोनेका रङ्ग फेरती हुई फुलवाड़ीमें बने हुए छोटेसे बंगलेपर पड़ने लगी। खिले हुए फूलोंकी मीठी मीठी खुशबूसे अमरका मन हरा हो रहा था। बालकने अबकी डरते हुए कहा—"बाबा, बड़ा अंधेरा मालूम होता है।" अमर चौंक पड़ा। उसे अब मालूम हो गया कि रात हो गयी है, कहीं अतुलको

सर्दी न लग गई हो। उसने घबराकर अतुलको गोदमें उठा लिया और घरकी ओर ले चला। इतनेमें मङ्गल पांड़ेने आकर कहा—"हुज़ूर बच्चेको मेरी गोदमें दे दीजिये।" उसे बड़ी मुलायमियतसे मना करता हुआ अमर अग्रसर हुआ। बच्चा हाथ नचाकर बोला—"मैं तुम्हारी गोदमे नहीं जाऊंगा।" यह सुन मालिक और नौकर दोनों हंस पड़े।

उजियाले कमरेमें घरको मालिकिन बैठी एक मनसे एक छोटी-सी कथरी सी रही थी। कभी सूई हाथमें चुभ जाती तो उफ़्-उफ़् करने लगती और सूई इधर-उधर चल जाती तो रंज होकर चिल्ला उठती थी। बालकको गोदमें लिये घरके अन्दर आते हुए अमरने मुस्कुराते हुए कहा—"यह किसे कोसा जा रहा है—हवाको या मुझको?" सिलाईका काम छोड़ ऊपर मुंहकर घरकी मालिकिनने कहा—"आपको क्यों कोसूंगी? यह सूई बड़ी पाजी है—रह-रहकर हाथमे चुभ जाती है और—"

अमर—"ख़ैर, मैं तो समझता था कि मुझे ही कोसा जा रहा है।"

मालिकिन—"आपको? किस लिये? आपका कोई अपराध भी तो हो।"

अमर—"यही कि मैं इतनी देरतक बाग़ीचेमे ही अतुलको साथ लिये बैठा रहा—शायद इसे सर्दी लग गयी है।"

इतनेमें अतुल-बाबू बापकी गोदसे उतरकर मांकी गोदमे जानेका ढङ्ग रचते हुए बोल उठे—"नहीं मां! मुझे सर्दी नहीं लगी—देखो न, मेरा सिर कितना गरम है।"

बच्चेको चूमकर माताने पिताकी ही ओर ठेल दिया— "अभी उन्हींके पास रह, मुझे और सीना है।"

बच्चेने कहा—"मैं तुम्हारी गोदमें नहीं आना चाहता। बाबा! आओ, हमलोग बातें करें। देखना नन्हींको कभी गोदमें न लेना। मां उसीको बहुत प्यार करती है।" इसपर मांने उसे गोदमें ले लेना चाहा; पर वह दूर हट गया और बोला—"नहीं, नहीं, मैं नहीं आऊंगा।" दाईने आकर कहा, "बाबू! यह देखो न, हरि तुम्हारे लिये कैसी बढ़िया मैना लाया है।" ख़ुशीसे उछलता हुआ बालक दौड़ पड़ा। उसकी मां जानती थी कि दाईने यह ढङ्ग उसे दूध पिलानेके लिये निकाला है। इसीलिये उसने उसे नहीं रोका कि कहीं मचल जायेगा तो लाख फुसलानेपर भी नहीं मानेगा। अमरने कहा—"ओह! तुम तो इस सांझके समय सब खिड़कियां बन्दकर ख़ूब आराम-से बैठी हो!" यह कहते-कहते उसने तमाम खिड़कियां खोल दीं। साथ ही बोला—"देखो, कैसी बढ़िया हरसिंगारके फूलोंकी सुगन्धि आ रही है!" चारु सिलाईका काम बन्द करके स्वामीके पास आ खड़ी हुई और बोली—"मैं क्या करूं! लाचार हूं। बच्चोंको सर्दी लग जानेका डर रहता है।"

अमर—"इस वक्त तो उनमेंसे कोई नहीं है। आओ बैठो। कहीं तुम्हें भी सर्दी लगनेका डर तो नहीं है?"

चारु—"मुझे?, क्या ख़ूब, मानों आजतक मैंने सर्दी बर्दाश्त ही नहीं की। आधीराततक तो बाग़ीचेमें या छतपर ही समय कट जाता था"

अमर—"वह तो वहुत दिनोंकी बात हुई।"

चारु—"पर यही हाड़-मांस तो उस समय भी था।"

अमर—"लेकिन आदत छूट जानेसे देह नाज़ुक हो जाती है। यह बात भी तो है?"

चारु—"सो तो है; पर जहांतक मैं समझती हूं, अभीतक उतनी नज़ाकत नहीं आयी है।"

यह कह वह स्वामीके पास आ वैठी। अमरने कहा—"हर-सिंगारकी खुशबू कैसी बढ़िया मालूम हो रही है।"

"हां," कहकर चारु चुप हो गयी।

अमर—"क्यो, आज ऐसी गम्भीर और अनमनी क्यों हो रही हो?"

"नहीं तो," कहकर वह स्वामीके मुंहकी ओर देखती हुई मुस्कुराई।

दोनों हाथोंसे चारुकी गरदनमें गलवहिंया डालकर अमरने बड़े प्यारसे पूछा,—"क्या नहीं वतलाओगी?"

चारु चुप हो रही। स्वामीके प्यारमें सब कुछ भूल गयी। इसके बाद मृदु स्वरसे वोली—"ऐसी कोई बात नहीं है—अभी कहती हूं।"

अतुल-वावूने दूध पीकर रोते हुए आकर मां-वापकी अदा-लतमें दाई और हरिके नामपर कई नालिशें ठोंक दीं। चारु उसे गोदमें लेकर समझाने लगी और उसे इस वातका भरोसा दिया कि वह कल हरि और दाईको खूब पीटेगी। क्रमसे अतुल

शान्त होकर सो रहा। दाई आकर बच्चोंको भी सुला गयी। दोनों सोये हुए बच्चोंका मुंह चूमकर चारु श्यामाके पास आ पड़ी हुई, अमर उस समय भी खिड़कीके पास बैठा था।

चारुने थोड़ी देर इधर-उधर करके धीमे स्वरमें कहा—"आज मुझे एक चिट्ठी मिली है।"

"किसकी ?"

"जीजीकी।"

थोड़ी देर चुप रहकर अमरने कहा—"तुम तो कहती थीं कि चिट्ठी ही नहीं आती !"

"अबतक तो नहीं आती थी, आज ही आयी है।"

"पहले पहल वहींसे आयी है या तुम्हारी चिट्ठीके जवाबमें आयी है ?"

"वह भला आपसे आप लिखेंगी ? कितनी चिट्ठियोंके बाद तो यह जवाब आया है।"

"तुम क्या-क्या लिखा करती हो ? उत्तर मांगती होगी। लिखती होगी कि चली आओ, नहीं तो मैं चली आऊंगी। यही सब लिखती होगी, और क्या ?"

"हां, यही सब लिखती हूं। जैसा चिट्ठी लिखनेका ढङ्ग है, वैसे ही लिखती हूं।"

"क्या ढङ्ग है ? यही कि तुम्हारा अतुल रो रहा है, खेल रहा है, मेरा मन कैसा तो करता है, दांतमें दर्द है, पेटमें दर्द है।"

"जाइये, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं आपसे कहीं अच्छा पत्र लिखना जानती हूं।"

"ऐं! सचमुच? ज़रा मुझे भी सिखला दो। दया करके बतला दो, मैं भी लिखना सीखूं—"

"किसे लिखियेगा? जीजीको?"

अमरके गालोंपर सुर्खी दौड़ गयी। उसने बात पलटकर कहा—'क्या और कोई ऐसा नहीं है, जिसे मैं पत्र लिखूं? कोई यार-दोस्त नहीं है? बस, केवल तुम हो और तुम्हारी—"

"जीजी हैं। क्या बेजा कहा मैंने? यार दोस्तोंको जैसा पत्र लिखते हैं या मेरे पास लिखते हैं—"

"अच्छा, तुम ज़रा कहीं हवा-पानी बदलनेके लिये चली न जाओ, तो फिर देखो कि मैं तुम्हें किस तरह पत्र-पर-पत्र लिखता हूं।"

चारुने हंसकर कहा—"आप अपनी बातके आगे किसीको जीतने देते हैं? आप जानते हैं कि ऐसी कोई जगह दुनियांमें मेरे लिये नहीं है, जहां मैं दो दिनके लिये जाकर रहूं; इसीलिये ऐसी बात कहते हैं। ख़ैर, माना कि मैं कहीं नहीं जाती, पर जो बाहर है, उसीपर कौनसी कृपा करते हैं?"

"अब तुमने असल बात कही है। आखिर प्राणोंकी माया है न, इसीसे—"

"इसीसे क्या?"

"तुम तो जानती ही हो कि मैं पत्र लिखनेमें बड़ा आलसी हूं।"

"बात क्यों बदलते हैं? पत्र लिखनेसे क्या कोई आपकी जान ले लेगा? ऐं!"

"क्यों योंही बकवाद करती हो? बैठना हो तो बैठो, नहीं तो—"

"अच्छा, लीजिये," कहकर चारु दूसरे कमरेमें जानेको तैयार हो गयी।

"ऐं! चली ही जाओगी?"

"जबतक रहूंगी, तबतक सिवा लड़ाईके और क्या लाभ?"

"अच्छा, बहुत हुआ, अब बैठो।"

"नहीं, मैं नहीं बैठूंगी।"

"सुनो, सुनो, एक बात है।"

"मैं नही सुनना चाहती।"

"अरे, सुनो तो सही।"

चारु दरवाज़ेतक जाकर मुंह फेर बोली—"क्या कहते हैं?"

"कुछ भी नही।"

धीरे-धीरे स्वामीके पास आ, हाथ उनके कन्धेपर रखकर चारुने कहा—"बोलिये न, क्या कहते हैं? क्या नहीं कहेंगे? मेरा ही मांस खावें, जो न कहें।"

अमरने प्यारसे उसका मुंह चूमकर कहा—"कल कहूंगा। अच्छा, सुनो, आज तारणीका एक पत्र आया है। बहुत रोया-

गिड़गिड़ाया है। मैंने उसे लिख दिया कि तुमपर मैं ज़रा भी नाराज़ नहीं हूं।"

चारु थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद बोली, "मैं भी नाराज़ नहीं हूं, पर जीजी तो उसपर एकदम नाराज़ हो गयी थीं।"

"जाने दो, अपराधीको माफ़ ही कर देना चाहिये।"

"सो तो ठीक ही है, चलिये, खाइये-पीजिये। रात बढ़ती जाती है।"

भोजन कर थोड़ी देर बातचीत करनेके बाद दोनों ही सो गये।

सवेरे शय्या त्याग करते ही चारुने कहा—"बोलिये, क्या बात कहते थे?"

अमरने हंसकर कहा—"तुम भी ख़ूब हो! रातको नींद भी आयी थी या नहीं?"

"आप भी तो पास ही थे, क्या आपने नहीं देखा कि मैं सोयी थी या जगी?"

"मैं क्या सारी रात तुम्हारे ऊपर पहरा देता था? मुझे क्या नींद नहीं आती?"

"ख़ैर, यह सब बातें जाने दीजिये, मुझे वह बात बतलाइये।"

अमरने सङ्कोच त्यागकर कहा—"और कोई बात नहीं, मैं यही पूछना चाहता था कि तुम्हारी जीजीने क्या लिखा है।"

"इतनी-सी बात पूछनेके लिये आपने इतनी भूमिका बांधी? और क्या लिखेंगी? यही लिखा है कि मैं अच्छी तरह हूं, तुम कैसी हो? बस, यही सब समाचार है।"

"पत्र मुझे दिखलाओ न।"

चारुने डरते-डरते कहा—"क्यों ? देखकर क्या कीजियेगा ? आजतक तो आपने कभी नहीं मांगा था—मैं ज़बरदस्ती आपसे पढ़वाया करती थी।"

"फिर आज दिखलाते क्यों डर लगता है ?"

चारुने धीमे स्वरमें कहा—"मुझसे एक भूल हो गयी है।"

"कैसी भूल ?"

"मैंने कुछ कड़ी बातें लिख मारी थी, इसीसे वे नाराज़ हो गयी हैं।"

"लाओ, देखूं तो सही।"

चारुने पत्र लाकर दिखा दिया। अमरने पढ़कर उत्तेजित कण्ठसे कहा—"जिन सब बातोंसे वह चिढ़ती है, वही सब तुमने लिख भेजी होगी।"

"हां।"

"छिः! तुमको ज़रा भी बुद्धि नहीं है। तुमने वैसी बातें क्यों लिखी थीं ?"

चारु सकपकायी हुई बोली—"जी कुढ़ गया था, इसीसे लिख मारी। उन्होंने किस तरह हमलोगोंकी सारा मोहमाया छोड़ दी ?"

"मोहमाया ? किसकी माया ? तुम्हारी और अतुलकी ? अगर यही बात हो, तो जब उसने मोहमाया छोड़ दी, तब तुमसे क्यों नहीं छोड़ते बनती ? बार-बार यही सब बातें लिखा

करती हो। वह सोचती होगी कि मैं ही लिखवाया करता हूं। चारु! यह तुम बड़ी भूल करती हो।"

चारुने धीमे स्वरसे कहा—"इसमें क्या भूल हुई, यह तो मेरी समझमें ही नहीं आता। मैं पत्र लिखती हूँ, वह आपपर क्यों सन्देह करेंगी?"

"तुमको जब बुखार आ रहा था, तब तुमने मेरे हाथसे उसको एक चिट्ठी लिखवायी थी—"

"उससे क्या हुआ?"

अमर कुछ भी उत्तर न देकर चला गया। शायद यह सोच रहा था कि यदि मैं उस दिनका प्रलोभनका त्याग कर सकता तो वही पुरुषका-सा न्यायोचित कार्य्य होता। वह यदि पलभरके लिये भी मेरे विषयमें दूसरी बात सोचती हो तो यह मेरे लिये बड़ी शर्मकी बात है।

बाईसवां परिच्छेद

उद्भ्रान्त सुरमा

सुरमाने पास आकर कहा—"क्यों उमा! सुनती है?"

उमा चन्दन घिस रही थी, घिसना बन्द कर बोली—"क्या?" और यह कहकर सुरमाके चेहरेकी ओर देखने लगी। बाल छिटकाये, सफ़ेद साड़ी पहने, वह तारवेके पुष्प-पात्रमें सजे हुए

हरसिंगारके फूलोंके ढेरसो मालूम पड़ती थी। सामने सिंहासन-पर देवताकी मूर्त्ति रक्खी हुई थी। धूप, चन्दन, गुग्गुल आदिकी सुगन्धसे घरभरमें खुशबू फैली हुई थी। चारों ओर नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्रियां सजाई रक्खी थीं। सुरमा वालिकाकी वह सरस कुसुमकी-सी मुखकान्ति देखते-देखते मन-ही-मन कहने लगी—"मैं तुम्हें भी इन सब सामग्रियोंके साथ-साथ देवताके चरणोंमें अर्पण कर देना चाहती हूं। जब तुम मनुष्यके लिये सिरजी ही नहीं गयी, तब मनुष्यकी आशा, तृष्णा और मलीनता तुम्हें क्यों स्पर्श करे? तुम्हें इन चरणोंके योग्य बनाने और मानव-मनके स्वाभाविक मल-दोषोंको तुम्हारे हृदयसे दूर करनेके इरादेसे मैं कभी-कभी तुम्हें कष्ट देती हूं। मेरी यह निर्दयता वही क्षमा करेंगे।"

उमाने हंसकर कहा—"क्यों मां! यों चुप क्यों हो गयीं? बोलो, क्या कह रही थीं?"

"प्रकाश आया हुआ है।"

अचम्भेमें आकर उमाने पूछा—"सचमुच? कब आया?"

"कल रातको।"

"तुमसे आकर मिला है?"

"नहीं, मैंने बुलवा भेजा है।"

सुरमाको जाते देख उमाने कहा—"अभी पुरोहितजी आने-वाले हैं, इसलिये मैं तो यहांसे नहीं जा सकूंगी; फिर तुम यहीं क्यों नहीं बुलवा लेतीं!"

सर्वस्व-समर्पण
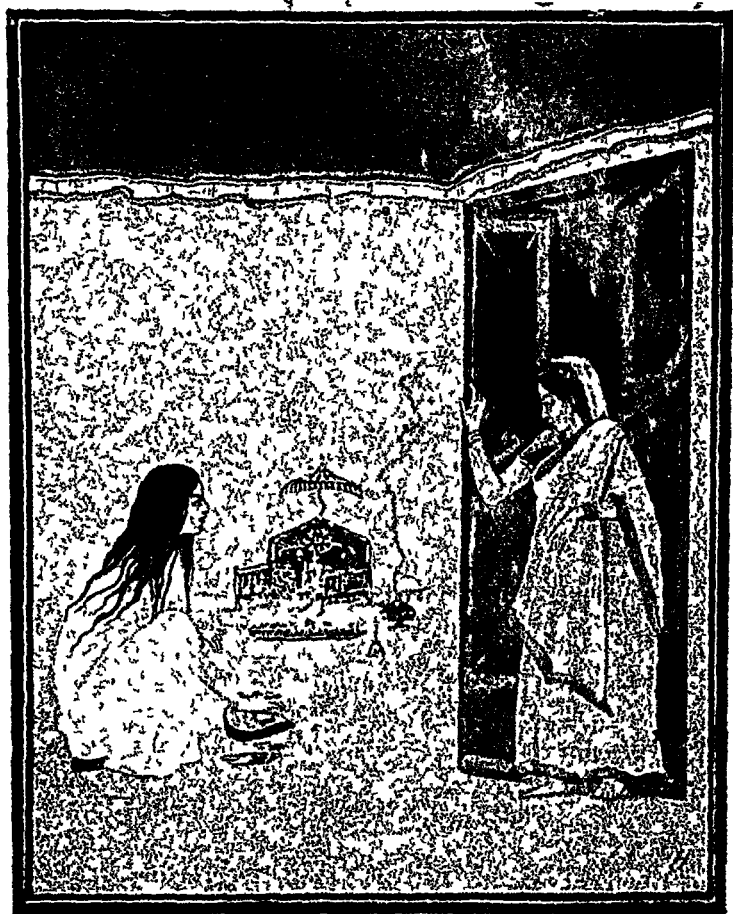
चन्दन घिसती हुई उमा बाल छिटकाये, सफेद साड़ी पहने ताम्बेके पुष्प-पात्रमें सजे हुए हरसिंगारके फूलोंके ढेर-सी मालूम पड़ती है। सिंहासनपर देवताकी मूर्ति है। नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्रियां सजायी रखी हैं। (पृष्ठ ३१४)

"इसीसे तो उसे बुलवाया है ।"

उमा ज़ोर-ज़ोरसे चन्दन घिसने लगी। एक बार अपना हंसता हुआ मुखड़ा ऊपर उठाकर बोली—"पर मैं तो इस समय प्रणाम भी न कर सकूंगी ।"

इतनेमें प्रकाश आकर दालानमें खड़ा हो गया। सुरमाने कहा—"आओ प्रकाश !"

प्रकाशने कहा—"अभीतक मैंने सफ़रके कपड़े भी नहीं उतारे। ज़रा घरसे हो आऊं ?"

"अच्छा, तब तो दरवाज़ेके उधर ही खड़े रहो ।"

जूता उतारकर प्रकाश धीरे-धीरे दरवाज़ेके पास आ खड़ा हुआ। उसने चौंककर एक बार घरके अन्दर देखा। उसने देखा कि सजे हुए फूलोंकी शोभा और सुगन्धके भीतरसे एक दृष्टि एकान्त स्नेह और निर्मल आनन्दसे परिपूर्ण हो आग्रहके साथ उसीकी ओर अग्रसर हो रही है। प्रकाशकी निगाह नीची हो गई। सुरमाने हंसकर कहा—"कितने दिनपर आये हो, ज़रा ठाकुर-जीको प्रणाम तो करो।" झेंपकर प्रकाशने देवताको प्रणाम किया। बड़े प्यारभरे स्वरमें सुरमाने पूछा—"क्यों प्रकाश ! तुम कैसे रहे ? अच्छे तो रहे न ?"

"हां, अच्छा ही रहा ।"

"इस समय हमें नमस्कार करना चाहिये ; पर क्या करूं कुछ समझमें नहीं आता। देखती हूं, यह मुझसे किसी तरह नहीं पार लगेगा। इतने दिनपर आये, तोभी—"

प्रकाशने धीरेसे मुस्कुराकर कहा—"मैं भी प्रणाम स्वीकार नहीं कर सकूंगा।"

सुरमाने कहा—"पर उमा! तू यही कहकर छुटकारा नहीं पा सकती। उठ, प्रणाम कर।"

झेंपकर उमाने लज्जासे हंसते हुए कहा—"देखतीं नहीं कि मैं चन्दन घिस रही हूं?"

"तू उठ, मैं घिसे देती हूं।"

उमाने उठकर लज्जा और आनन्दके साथ प्रकाशके पैरोंके पास अपना सिर पटक दिया। बड़े ज़ोरका शब्द हुआ। सुरमाने पूछा—"अरे, कहीं सिर तो नहीं तोड़ डाला?" प्रकाश उसकी ओर देखने लगा। उमा सकुचाती हुई बोली—"नहीं, चोट नहीं लगी।" यह कह वह हाथसे अपना सिर सहलाने लगी। सुरमा हंसती हुई प्रकाशकी ओर देखकर बोली—"प्रणाम करनेमें तो बेचारीने ऐसा उत्साह दिखाया कि सिर तोड़ डाला, पर बदलेमें एक असीस भी नहीं मिली।" लज्जित होकर प्रकाशने मृदु स्वरसे कहा—"तुम्हीं असीस देना सिखला दो, मुझे नहीं आता।" सुरमाने गम्भीर भावसे कहा,—"तुम आशीर्वाद दो कि इसी निर्माल्यकी भांति तुम भी पवित्र और निर्मल हो जाओ।" प्रकाशने चौंककर सुरमाकी ओर देखा। किञ्चित् उद्वेगकी मलिन छाया पड़े हुए उसके ललाटपर लाली दौड़ गयी। परन्तु उसने तुरन्त ही उस भावको दबाकर धीरेसे कहा—"निर्माल्यकी ही भांति निर्मल और पवित्र हो जाओ।" उमाने फिर

सर झुकाया। कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें कर प्रकाश चला गया। सुरमाने उमासे कहा—"क्यों? तुमने तो प्रकाशसे कुछ भी बात-चीत नहीं की।" उमाने लज्जाकी हँसी हँसकर कहा—"न मालूम क्या शर्म लगती थी।"

"शर्म कैसी?"

"बहुत दिनपर आया है, इसीसे।"

"क्यों? मुझे तो शर्म नहीं मालूम हुई।"

उमाने कुछ सोचकर कहा—"तुम बड़ी हो और मैं इतनी छोटी हूं।"

"पगली कहींकी! अबकी मुलाक़ात होनेपर बातें करना। समझी? परन्तु याद रखना, अब तू सयानी हो रही है। तुझे अकेलेमें किसी मर्दसे मिलना या देरतक बातें करना नहीं चाहिये। जिससे बातें करना हो मेरे सामने किया कर। और कभी नहीं—समझी?"

"अच्छा।"

इसके बाद अपनी सरल और शान्त आंखोंसे देखती हुई उमाने पूछा,—"तोभी, यदि कभी किसीसे अकेलेमें भेंट हो जाये—मान लो कि प्रकाश ही चला आये—और वह बातें करने लगे, तो फिर मैं क्या करूंगी?"

"मामूली तौरसे उसकी बातोंका जवाब देकर चल देना।"

"अच्छा।"

सुरमाने फिर कहा,—"केवल प्रकाश कहकर पुकारना अच्छा

नहीं मालूम होता। इसीलिए तू उसे प्रकाश-भैया कहा कर। अबकी तो वह बहुत दिनोंपर आया है। तू चेष्टा करेगी, तो कह सकेगी।"

उमाने तनिक मुस्कुराकर कहा,—"लेकिन, मां! मुझे बड़ी शर्म लगेगी।"

कई दिन ख़ूब आनन्दके साथ बीते। सुरमाने दूधकी मिठाइयां बनानेका काम ख़ूब बढ़ा दिया है और रोज़ तीसरे पहर पिता और प्रकाशको रसोई-घरमें बुलाकर खिलाती है। राधिका-बाबू तो अत्यन्त गम्भीर भावसे मिठाइयोंकी ठीक-ठीक समालोचना करते हैं और उमा भी ख़ुशीसे फूलकर उनकी पत्तलमें चारकी जगह आठ मिठाइयां दे देती है। साथ ही कुछ सङ्कुचित सी होकर चुपचाप आंख मूंदकर मिठाई खानेमे लगे हुए प्रकाशसे कभी-कभी पूछती है—"क्यों प्रकाश-भैया, तुम्हें क्या मेरे हाथकी मिठाई अच्छी नहीं लगती?" प्रकाश झट कह उठता—"वाह! अच्छी क्यों नहीं लगती! ख़ूब अच्छी लगती है।" राधिका-बाबू हंसकर कहने लगते—"अच्छी लगती है या नहीं, इसका तो सबूत मिल ही रहा है। जबतक मैं बातें करनेमें समय नष्ट करता हूं, तबतक वहां कितनी ही मिठाइयां पेटमें पहुंच जाती हैं। बातें करके खानेमें कमी करना नहीं चाहता। अगर पत्तलमें कुछ पड़ा देखो, तो सन्देह करो, पर मुझे तो उम्मीद है कि जूंठा बचे, न कुत्ता खाय—वाला ही मज़मून रहा।" राधिका-बाबूकी यह पुरानी दिल्लगी सुनकर और किसीको हंसी आती या

नहीं, पर उमा तो भर-पेट हंसती। उसकी सरल हंसी देख सुरमाको भी हंसी आ जाती और प्रकाश भी सिर झुकाये हुए धीरेसे मुस्कुरा देता।

तीसरे पहर सुरमा बैठी-बैठी न जाने क्या कर रही थी। मौसिम बड़ा ही बुरा था, आसमानमे घने बादल छाये हुए थे। पेड़के पत्ते भी नहीं हिलते थे; परन्तु जाड़े की इस बदलीमे थोड़ी-सी सर्दी लगनेसे भी सबकी देह कांप उठती थी। उमाने सुरमाके पास आकर कहा—"क्यों माँ! आज देवताकी पूजाका सामान नहीं करोगी क्या?" सुरमाने कहा—"तू ही जाकर करा ले, मुझसे तो आज कोई काम नहीं हो सकता।" प्रकाशने आकर कहा—"भैया तुमसे ताहिरपुरके बन्दोबस्तके बारेमें कोई बात कहनेके लिये तुम्हें बुला रहे हैं, चलो।" सुरमा अलसायी हुई बोली—"आज तबीयत अच्छी नहीं है। शामके बाद सुनूंगी।" प्रकाश ठिठककर खड़ा हो गया। वह सुरमाका समवयस्क था। बहुत दिनोंतक देखादेखी नहीं होनेसे लड़कपनके सौहार्दमें कुछ शिथिलता आ गयी थी। अब वैसा सङ्कोच नही रहा। उसने हंसकर पूछा,—"तबीयत अच्छी नहीं है, इससे क्या मतलब है? शरीर अच्छा नही है या मन?" सुरमाने भी हंसकर कहा—"शायद दोनों ही।" प्रकाश उदास होकर वहांसे चला गया। वह सुरमाके विचित्र वैधव्यकी विडम्बना कुछ-कुछ जानता था और समझता भी था।

परन्तु सुरमा क्या सोच रही थी, यह बात शायद वह भी

ठीक-ठीक नहीं जानता था। कभी-कभी उसके मनकी ऐसी अवस्था हो जाती थी कि वह स्वयं नहीं समझ सकती थी कि वह क्या करती या क्या सोचती है। हां, सब लोग उसे अनमनी-सी देखते थे। उसके हाथका काम छूट जाता था, आंखें यों ही न जाने किस चीज़को देखने लगती थीं, हृदयमें न जाने कौनसा भाव आकर उसे अवसन्न कर देता था। कभी-कभी लम्बी सांसें लेने लगती थी। परन्तु सुरमा ख़ुद ही यह नहीं समझती थी कि वह क्या सोच रही है। वह सोचती थी कि क्या इसी तरह जीवनके दिन समाप्त हो जायगे? बहुत दिनोंसे जो निश्चिन्ततामय जीवन बिता रही हूं वह क्या अब अन्तिम अवस्थाको पहुंच गया है? अतुल सुनील वारिधिके ऊपर मूलहीन हरे-हरे सिवारकी तरह वह संसारके स्रोतमें डूबती-उतराती हुई भी बन्धनसे रहित थी। धारा जब जिधर चाहती है, उसको वहां ले जाती है। क्या नारीका जन्म इसीलिये है। अथवा यह विधाताका अभिशाप है? इससे तो बड़े-से-बड़ा दुःख भी कहीं अच्छा है। जिसके लिये न तो कोई अनुताप करनेकी बात हो, न कोई ऐसी बात हो जो आंखोंसे दो बून्द आंसू गिरा दे, उसकी तुलना किसके साथ की जाय? जिस दशाका परिवर्त्तन न हो, उसमें कोई कबतक पड़ा रहेगा? जैसे ऋषिके शापसे अहिल्या पत्थर हो गयी थी, सुरमाका हृदय भी उसी प्रकार किसीके शापसे धीरे-धीरे पत्थरकी तरह होता जा रहा है। पिताका निर्मल प्रेम, उमाकी एकान्त निर्भरता-पूर्ण सरलता, प्रकाशकी

धीर-स्थिर सहृदयता—किसीसे उसमें चेतना नहीं आती। नये घरमें आकर, नये-नये लोगोंके सङ्ग हंस-बोलकर दिन बितानेका अभ्यास करनेके लिये उसने अपनेको ज़बरदस्ती सजग कर रखा था, परन्तु अब तो नूतनत्वकी वह सतर्कता भी नहीं रही। अवसन्नताका अन्धकार उसे धीरे-धीरे ग्रसित करता चला आता है—वह बाहर-भीतर दोनों ओरसे पत्थरकी तरह होती चली जाती है। ऐसा कौन है—इस संसारमें वह कहां छिपा है—जिसके चरणोंके स्पर्शसे इस पत्थरमें फिरसे प्राण आ जायें?

चञ्चल चरणोंसे आकर उमा उसके पास खड़ी हो रही। व्यग्र-कण्ठसे "मां" कहकर पुकारने ही जा रही थी कि एकाएक रुक गयी। उसने देखा कि सुरमा दोनों हाथोंसे मुंह छिपाये खम्भेपर पीठ दिये बैठी है। थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उमाने व्याकुल होकर पुकारा—"मां!" कोई उत्तर नहीं मिला। उमाने फिर कहा—"मां! यह क्या कर रही हो? सुनो तो सही।"

सुरमाने कहा—"यह कौन राक्षसी आयी? भला पत्थरके भीतर कहांसे माँ मिलेगी? फिर माँ कहकर न पुकारना।"

उमा—"माँ! चलो, देखो तो कौन आया है। जल्दीसे चलो। क्या नहीं जाओगी?"

सुरमा—"कैसी मां? मैं अपने अतुलको तो मां कहकर पुकारने ही नहीं देती—तू राक्षसी क्यों मुझे मां कहकर पुकारेगी? जा, दूर हो जा।"

उमा फिर बोल उठी—"माँ! तुम्हें क्या हो गया है? क्या? जी अच्छा नहीं है? अरे, तुम्हारा अतुल आया है।"

सुरमा—"क्या कहती है? कौन आया है?"

उमा—"तुम्हारा अतुल आया है। ऐसा क्यों कर रही हो, मां?"

सुरमा उठ खड़ी हुई। डरी हुई बालिकाको अपने पास खींचकर बोली—"तू ही मेरे लिये अतुल है।"

उमा—"ज़रा चलकर देखो तो, कौन-कौन आये हुए हैं।"

सुरमाने फिरकर देखा। देखते ही डरकर मुख फेर लिया और दोनों हाथोंसे मुंह छिपा लिया। क्षण-भर सब चुप रहे। इसके बाद किसीने दोनों हाथोंसे उसका गला पकड़ लिया। आसन्न सन्ध्याकी मलिन निस्तब्धताको कम्पित करते हुए किसीके स्नेह-कातर कण्ठने मूर्च्छना-ग्राममें कहा—"जीजी! इतने दिन बाद मिलनेपर भी तुमने मुंह फेर लिया?" कुछ क्षण और बीत गये। सुरमाको ऐसा मालूम पड़ा, मानों किसीके आंसुओंसे उसका कन्धा भींग रहा है। उसने धीरे-धीरे मुंह फेरा। धीरे-धीरे एक हाथसे चारुकी ठुड्डी पकड़, दूसरेसे उसके आँसू पोंछ दिये और क्षीण कण्ठसे कहा—"चारु! रोओ मत।" क्षण-भर बाद गला साफ़कर बोली—"कब आयी?"

"अभी, चली ही आ रही हूं।" यह कहकर चारुने झुककर सुरमाके पैरोंकी धूल लेकर माथेपर चढ़ायी। चारुके सिरपर हाथ रखकर सुरमाने उसे मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। इसके बाद पूछा—"मुझे तो तुमने आनेके बारेमें कुछ लिखा ही नहीं था। किसके साथ आयी हो?"

चारु—"चाचाजी और बिन्दी दाईके साथ। आनेकी बात लिखती, तो तुम बुलातीं थोड़े ही?"

उमा अतुलको गोदमें लिये हुए आयी और बोली—"और मां! यह देखो कौन है? पहचानती हो?"

सुरमा—"चारु! यह तुमने क्या लड़कपन किया है? उसे भी लेती आयी हो?"

व्यथित और विस्मित चारुने कहा—"यदि उसे लाकर मैंने बुरा किया तो बुरा ही सही। जब मैं आयी, तब उसे कहां छोड़ आती?"

उमा झनझनाकर बोली—"मां! तुम भी धन्य हो! इसी अतुलके लिये तो जान दिये रहती थीं—अभी आंखोंके आंसू सूखे भी न होंगे—और वही धन जब सामने आया तब उसका अनादर कर रही हो। मां! तुम्हारे ढंग भी बड़े विचित्र हैं।"

"चुप रह री पापिन!" कहती हुई सुरमा उसके पास चली आयी।

उमा—"पापिन मैं हूं कि तुम? ऐसा प्यारा मुखड़ा देखकर भी कौन इसे गोदमें लिये बिना रह सकेगा? तुम भी कैसी मां हो?"

सुरमाको पास आते देख, बालकने अपने दोनों हाथ फैला दिये। क्षण-भर तो सुरमा चुपचाप रही। इसके बाद जब वह अपनेको न रोक सकी, तब दोनों हाथ फैलाकर उस बच्चेको गोदमें ले लिया और सबको वहीं छोड़कर दूसरे घरमें चली गयी।

उमाने आंखोंमें आंसु भरे, हंसते हुए कहा—"आओ मौसी, और कुछ न सोचना, मेरी मांका सिर फिर गया है।"

दोनों हाथोंसे उसके गाल पकड़कर चारुने कहा—"तुम कौन हो, माई! तुमने ऐसा हंसता चेहरा कहांसे पाया?"

उमा शर्मसे भर गयी। उसके मुंहपर सुर्खी छा गयी। चारुने फिर पुछा—"तुम कौन हो?"

उमाने हंसते हुए कहा—"माँकी लड़की हूं और कौन?"

चारु—"ऐसी लड़की मांको कहां मिली?"

उमा—"चलो, मांसे ही पूछ लेना।"

दोनों चल पड़ीं। जाते-जाते उमाने फिर कहा—"देखो, मौसी! तुम मेरी मांकी वातोंका कुछ ख्याल न करना।"

उसके गालमें अंगुली गड़ाकर चारुने कहा—"तेरी ही मां हैं, मेरी कोई नही? मेरी भी तो जीजी हैं।" उमा झेंप गयी। दोनोंने कमरेमें आकर देखा कि सुरमा अतुलको गोदमें लिये चुपचाप पलङ्गपर वैठी है। उसकी आंखोंसे मोतीके आसू झर रहे हैं। उन दोनोंको देखकर उसने मुंह फेर लिया। उमा उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। अतुलको पुकारकर बोली—"अरे पगला! मांको चुप क्यों नहीं कराता? वोल--मां चुप हो जाओ,रोओ मत।" अतुल तो घपलेमें पड़ा था कि क्या करे, क्या नहीं, अबकी यह वात सुन सुरमाके गलेमें वांह डाल अपने गालसे उसके आसू पोंछने लगा। उमा हंस रही थी,पर उसकी आंखें डवड-

चायी हुई थी। चारु धीरे-धीरे सुरमाके पास बैठी और बोली—"जीजी !"

"क्या ?" कहकर आंसू पोंछती हुई सुरमाने मुंह फेरकर अतुलको चूम लिया।

तेईसवां परिच्छेद

भाग्य-लिपि

सवेरा हो गया है, तुरन्तके उगे हुए सूरजकी किरणें सफ़ेद महलके कमरोंमे लगे हुए रङ्ग-बिरङ्गे शीशोंपर पड़कर बड़े-बड़े खम्भोंवाले बरामदेकी शोभा बढ़ा रही हैं। चीनी मिट्टीके गमलोंमें उगे हुए पौधोंके फूलोंकी मधुर गन्धसे वह स्थान गहगह-महमह हो रहा है। पिंजड़ोंमें बैठी हुई केनारी, काकातुआ, मैना और हीरामन तोता आदि चिड़ियां सूर्यकी किरणें पड़नेसे जग पड़ी हैं और सब मिलकर आनन्दसे सूर्यका स्वागत कर रही हैं। कमरेमें अतुल लेटा है—बरामदेमें सुरमा टहल रही है।

बड़ी राततक बातोंमें लगी रहनेके कारण चारु भोरको सोयी है, इसीसे थकावटके मारे उसकी नींद नहीं खुलती। उमा भी जबतक जग सकी, जागती रही और उनकी सुख-दुःख-की बातें सुनती रही थी। इसीसे वह भी अबतक नहीं उठी है। उनके सो जानेपर अतुल जग पड़ा था और बहुत दिनपर

पाये हुए अपने अधिकारपर बलपूर्वक दखल जमा बैठा था, इसीसे सुरमा नहीं सो सकी।

बड़ी देरतक फूलों और चिड़ियोंके बारेमें पूछ-तांछ करनेके बाद अतुलने कहा—"हमारे उस घरपर बहुतसी चिड़ियां हैं— ख़रगोश भी हैं—तुम देखोगी?" सुरमाने कहा—"हां।" अतुल बोला—"ये चिड़ियां मुझे नहीं पहचानतीं, वे सब पहचानती हैं। मैना मुझे बाबू-बच्चा कहकर बुलाती है।" सुरमाने हंसकर कहा—"अच्छा तू इस मैनासे पूछ तो कि तू कौन है?" मांकी आज्ञा अतुलने बड़े उत्साहसे मान ली और पूछा—"तू कौन है रे?" मैना उसी बातको दुहराती हुई बोली—"तू कौन है रे?" यह सुनकर उसके अचरजका कोई ठिकाना नहीं रहा। एकाएक किसीकी खड़ाऊंकी आवाज़ सुन सुरमाने ऊपर सिर उठाकर देखा कि उसके पिताजी चले आ रहे हैं। उनके चेहरेसे झुंझलाहट मिली हुई गम्भीरता टपक रही है। सुरमा इसका मतलब समझ गयी —समझते ही उसके हृदयमें दुःख भी हुआ। उसे पितासे बातें करते हुए लज्जा मालूम होने लगी, तोभी सोचा कि चारुके मानकी रक्षाके लिये बात करनी ही होगी। पहले पिता ही बोले, इसलिये सुरमाको और सहारा मिल गया। उन्होंने कहा—"यह सब क्या हो रहा है, सुरमा? तुम क्या नहीं जानतीं कि मुझे इन बातोंसे बड़ा दुःख होता है?" सुरमाने सोचा कि पिताजी यही समझ रहे हैं कि "मैंने ही चारुको बुलाया है।" उसे इस बातसे बड़ा आराम मिला। वह बोली—"बहुत दिनोंसे इन

सर्वस्व-समर्पण
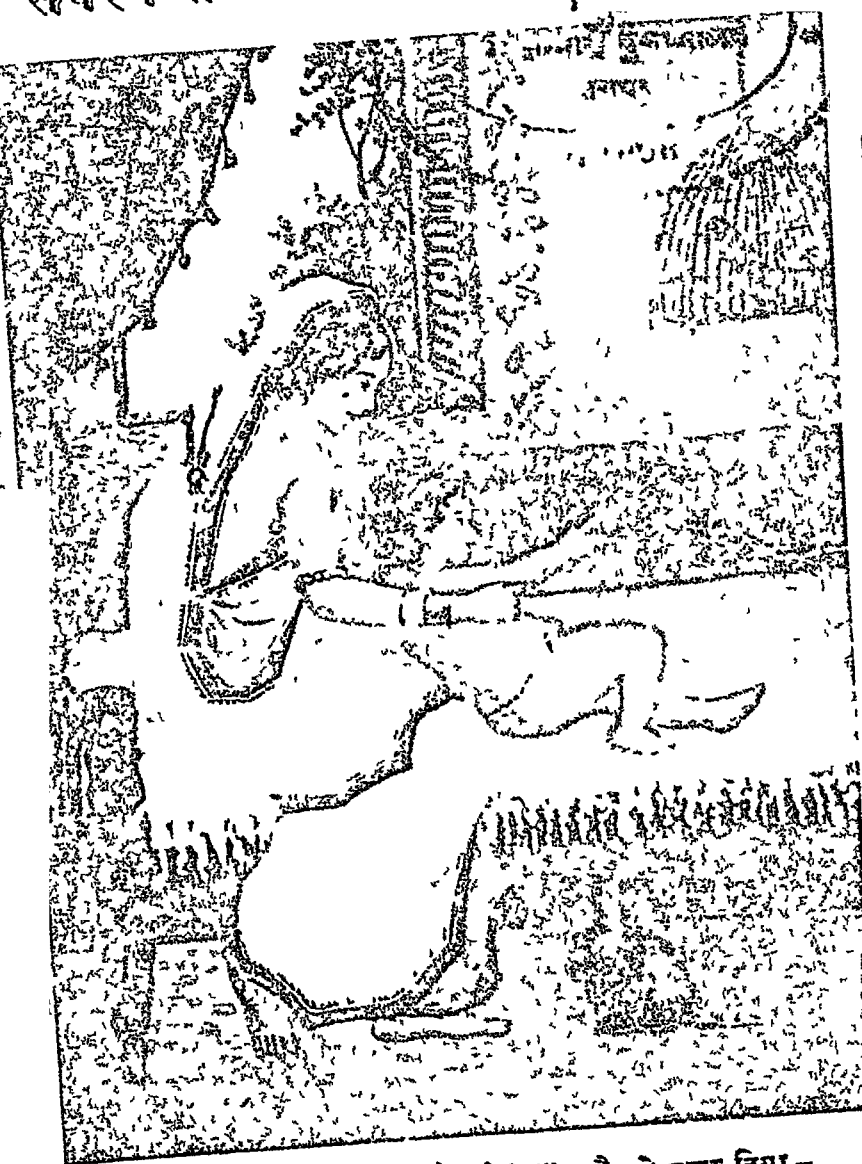
अतुलने मैनासे पूछा – "तू कौन है रे ?" मैनाने उत्तर दिया –
कौन है रे ?" यह सुनकर उसके अचरजका कोई ठिकाना न रहा ।

लोगोंको नहीं देखा था,इससे देखनेकी इच्छा हुई। मैं यह नहीं जानती थी कि इससे आपको कष्ट होगा।"

"पर तुमसी होशियार लड़कीको यह बात जान लेनी चाहिये थी।"

"माफ़ कीजिये। आप क्षमा करें, तो मैं एक बात कहूं। जब ये लोग आ ही गये, तब इनके साथ अच्छा बर्त्ताव करना ही होगा। आप नाराज़ी दिखायेंगे, तो इनके जीमें बड़ा दुःख होगा।"

"इसका ख़याल तो मुझे करना है न? हां, तुम्हें एक बार मुझसे पूछ लेना था।"

सुरमाने सिर नीचा कर लिया। यद्यपि इस बातसे पिताके स्नेहका परिचय मिलता था, तथापि इससे सुरमाके दिलको चोट पहुंची। आज़तक वह कभी किसीके अधीन होकर नहीं रही। उसके ससुरने उसको घरकी मालिकिन ही बना रक्खा था। सौतके ऊपर भी वह राज्य करती रही। पिताके घर आकर भी वह रोबसे ही रही, फिर इतनीसी बातके लिये वह किसीकी आज्ञाकी बाट क्यों देखे? संसारका यह कैसा विचित्र रहस्य है कि पराये घरमें ही आदमीकी प्रभुता अधिक चलती है? उसने मनमें कहा—"यदि मैंने चारुको बुला ही लिया, तो इसमें पिताके नाराज़ होनेकी क्या बात है? मेरी सौत होनेके ही कारण तो वे चारुको फूटी आंखों नहीं देखना चाहते? पर जब-खुद मेरी ही जान इसके लिये छटपटाती है, तब दुनिया

क्यों घबराती है? क्या यह मेरे लिये कोई हंसीकी बात है? यदि यह बात हो तो फिर जिसने स्थानास्थान-विचारशून्य स्नेहप्रार्थी मानव हृदयको बनाया, उसे क्या कहा जाये?"

अतुलने अपनी अनमनी मांका मुंह ऊपर उठानेकी चेष्टा करते हुए पुकारा—"मां! वह कौन है, मां?" सुरमाने सिर ऊपर उठाकर देखा कि उसके पिता चले गये। उसने लम्बी सांस लेकर कहा—"वे मेरे पिता हैं।"

"तुम्हारे पिता कहांसे आये? मेरी मांके तो पिता नहीं हैं—मेरे पिता अलबत्ता हैं।" सुरमाने उसका मुंह चूमकर कहा—"तुम्हारी उस मांके पिता भी यही हैं।"

"सचमुच? तो चलो, मैं मांसे पूछूंगा।" अतुलने बड़ा हठ पकड़ा। लाचार सुरमा उसे लिये हुए चारुके पास आयी। चारु-को सोतेसे जगाकर अतुलने पूछा कि क्या यही तुम्हारे पिता हैं? उसने जब हामी भरी, तब लड़केने कहा—"तुम्हारे पिता अच्छे नहीं हैं—मेरे पिता कैसे अच्छे हैं! मेरे पिताकी दाढ़ी सफ़ेद नहीं है—तुम्हारे पिताके तो सारे बाल सफ़ेद हैं—अच्छे नहीं हैं। राम-राम! छिः छिः!"

एक दासीने कहा—"बाहर जो एक सज्जन आये हुए हैं, वे अभी लौट जाना चाहते हैं, इसीसे मिलनेके लिये आया चाहते हैं।"

सुरमाने विस्मित होकर कहा—"वाह! चाचाजी क्या अभी लौट जायेंगे? आज ही चले जायगे? जाओ, उन्हें अन्दर बुला लाओ।"

थोड़ी देरमें बूढ़े श्यामाचरण राय उस कमरेमें आ पहुचे। चारुने घूंघट काढ़ लिया। उमा भी घूंघट काढ़े उसके पीछे बैठ रही। सुरमाने सिरका कपड़ा ज़रा-सा खींचकर कहा—"चाचाजी! आप अभी चले जा रहे हैं? यह क्यों?"

"बेटी! घरपर कोई नहीं है। छोटी बहू बहुत रोने-धोने लगीं, इसीसे लिवा लाया। मैं अभी चला जाऊंगा। तुम किसी विश्वासी आदमीके साथ बहूको भेज देना।"

सुरमा थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद मृदु स्वरसे बोली—"मेरा जी तो चाहता है कि आपसे दो दिन ठहरनेके लिये प्रार्थना करूं। आपको देखती हूं, तो बाबूजी याद आ जाते हैं।" सहसा श्यामाचरण रायकी आखें डबडबा गयीं। उन्होंने गद्गद्-कण्ठसे कहा—"बेटी! वे होते, तो आज तुम इस तरह हम-लोगोंको छोड़कर चली आती? अथवा इस बुड्ढेको कभी तुम्हारी सूरत देखनेकी नौबत आती? क्या करूं? छोटी बहूने किसी तरह नहीं माना, नही तो मेरी तो आनेकी एकदम इच्छा नहीं थी।" क्षणभर बाद सुरमाने क्षीण कण्ठसे कहा—"मैं चाहे लाख बेजा काम करूं, पर मैं जानती हूं कि आप मुझे माफ़ करते रहते हैं। मुझे प्यार करते हैं।"

"ज़रूर बेटी! मेरा ईश्वर जानता है।"

सब लोग थोड़ी देर चुप रहे। इसके बाद श्यामाचरण विदा हुए। सुरमाने उन्हें प्रणाम कर उनके पैरोंकी धूल ली। उसने पूछा—"चारुको कब भेज दूंगी?"

"जब वे जाना चाहें। पहुंचानेवाला कोई होशियार आदमी है न?"

"हां, है।"

अतुल बोला—"दादाजी! मैं भी चलूंगा। मेरा मन बाबाको देखनेके लिये घबरा रहा है।" दादाने बच्चेको प्यार करते हुए कहा—"मांको छोड़कर जायेगा?" बच्चेने सुरमा को देखकर पूछा—"मां भी चलेगी। क्यों मा?" सुरमाने सिर नीचा कर लिया। अतुल बार-बार पूछने लगा। अपने बचावकी कोई सूरत न देख सुरमा उठ खड़ी हुई, बोली—"तुम लोग बैठो, मैं चाचाजीसे एक बात कहकर आती हूं।"

जब श्यामाचरण रायके पीछे-पीछे सुरमा भी चली गयी, तब उमाने कहा,—"क्यों मौसी! मां अपने घर क्यों नहीं जाना चाहतीं?"

चारुने उदास मुंह बनाये हुए कहा—"भगवान् जानें।"

उमा—"मेरा जी एक बार मौसाजीको देखनेको चाहता है। मैं भी एक बार वहाँ चलूंगी।"

चारु—"अच्छा, चलना।"

सुरमा गोदमें एक छोटीसी लड़कीको लिये हुई लौट आयी और चारुको डांटती हुई बोली—"इतनी देर हुई, लड़की भूखसे परेशान हो रही है। ले, इसे गोदमें ले ले। उमा! तू कहा जायेगी?"

"मौसाको देखने।"

सुरमाने अनमनी-सी होकर कहा—"मौसाको ?"

उमाने हंसकर कहा—"ये मौसी हुई, तो फिर वे मौसा नहीं तो और क्या हुए ? अरे, मैं तो अब उन्हें पिता भी कहूं तो कोई हर्ज नहीं।"

उमा बड़ी दुष्ट है—अब उसे सब कुछ मालूम हो गया है। सुरमाके गाल लाल हो गये। चारुने इस बातको जाने बिना ही कहा—

"तुम्हारी मां क्या तुम्हें जाने देंगी ?"

"क्यों नहीं जाने देंगी ? लड़की क्या अपनी मांकी ही है ? मौसीको नहीं है ? तुम ले चलना।"

सहसा सुरमाने कहा—"तब मैं किसे लेकर रहूंगी ? और तो कोई—"

न जाने क्या कहते-कहते सुरमा चुप हो गयी, उसे स्वयं ही यह बात खटक गयी।

चारुने कहा—"अपने अतुलको रख लेना।"

सुरमा हंस पड़ी। चारुने कहा—"हंसो क्यों ? क्या ऐसा नहीं हो सकता ?"

"सब लोग क्या तुम्हारी ही तरह पगले हैं ?" चारु चिढ़ गयी, बोली—"अच्छा, रहने दो, तुम्हारी तरह बुद्धिमती होनेसे तो पागल होना कहीं अच्छा है। क्या अतुलको भी तुम पराया मानती हो ?"

"पराया नहीं; लेकिन परायेकी चीज़ है।"

"तब तो मैं भी परायी हूं ?"

"लड़का क्या अकेली मांका ही होता है ?"

"ओह ! अब समझी। लेकिन अगर वह पराया आदमी अपने हक़से चाज़ आये ?"

"लेकिन दान सभी थोड़े ही ग्रहण कर सकते हैं ? यदि अयोग्य मनुष्य उच्च दान ग्रहण करे, तो उसे पाप लगता है। यह बात जानती हो ?"

"तो फिर तुम क्या अयोग्य हो ? तब योग्य कौन है ?"

"सो मैं क्या जानूं ? मैं तो समझती हूं कि मैं एकदम अयोग्य हूं।"

"तुम्हारा यह ख़याल ग़लत है। मैं तुम्हारे जीमें यह बात बैठी रहने नहीं दूंगी। जीजी ! तुम ऐसा क्यों समझती हो !"

सुरमाने कातर स्वरसे कहा—"चारु मुझे माफ़ करो।"

चारु चुप हो गयी। क्षणभर बाद बोली—"अच्छा, एक बात और कह लूं तो फिर चुप हो जाऊंगी। तुम अपने जीमें चाहे जो कुछ सोचो, पर हमलोग तो सदा ही जानते हैं और जानते रहेंगे कि हमलोग तुम्हारे ही हैं।" सुरमाने चारुके गलेमें हाथ डाल दिया और आवेगपूर्ण कण्ठसे कहा—"चारु ! मैं यह बात अच्छी तरह जानती हूं। तुम या अतुल दूसरेको चीज़ होनेपर भी मेरी ही चीज़ हो।" चारु सुरमाके इस प्यारसे भी उतनी सन्तुष्ट नहीं हुई—उसने बड़े कष्टसे लम्बी सांस ली।

तीसरे पहर फिर चारु, सुरमा और उमा उसी जगह बरामदे-

ठकर बातें करने लगीं। बहुतेरी इधर-उधरकी बातोंके बाद सुरमाने तनिक हंसकर कहा—"चारु! के दिनकी मियाद है?"

"मियाद कैसी?"

"यहां रहनेकी।"

"अच्छा—तीन दिनकी।"

"तीन दिन? इतनी जल्दी क्यों? तब फिर आयी ही किस लिये?"

"क्या करूं, जीजी! तुमको इतने दिनोंमें कभी नहीं देखा, इसीसे घबराकर चली आयी।" इसके बाद अभिमानसे क्षुण्ण बने हुए स्वरमें बोली—"चाहे एक दिनके लिये हो या तीन दिनके लिये, तुम्हें इससे क्या? तुमने बुलाया थोड़े ही था?"

सुरमा चुप हो रही।

चारुने छोड़ा नहीं, फिर बोली—"अच्छा, जीजी! मैंने तुम्हें कितनी बार पत्र लिखा, पर क्या तुम्हारा मन एक दिनके लिये भी नहीं घबराता था?"

सुरमाने मलिन हंसी हंसकर कहा—"नहीं।"

"चाहे तुम कुछ भी कहो; पर अब तुम मुझे पहलेकी तरह नहीं प्यार करतीं।"

"इसमें आश्चर्य ही क्या है, चारु! हो सकता है।"

चारुने लम्बी सांस लेकर कहा—"यह बात भी मनमें ठीक ठीक बैठ जाती तो एक बात भी थी। जीजी! मैं तुम्हें कभी पहचान न सकी।"

"पहले पहचानती थी। अब भूल गयी।"

उमा बीचमें ही बोल उठी—"अच्छा, इस समय ये सब बातें रहने दो। मौसी तीन दिनके लिये कैलास छोड़कर हिमालयपर सबको रुलाने आयी हैं। इसका क्या होगा? मेरी विजयादशमी तो सप्तमीके ही दिन हुआ चाहती है!"

सुरमाने क्षीण हास्यके साथ कहा—"अरे, यह तो भाग्यकी बात है। जितने दिन हिमालयमें कट जायें, उतने ही सही, फिर तो अन्धकार है ही! सप्तमीको ही क्यों रोती है, री पगली! विजयाके दिन तो रोना ही होगा। उस दिन भरपेट रो लेना! अभी तो हंस ले।"

"नहीं मा! पीछे रोना होगा, यह जानकर भी क्या किसीको हंसी आती है? मुझसे तो नहीं हंसा जाता।"

"मुझसे तो ख़ूब हंसा जाता है। मैं तो इस जीवनमें सदासे ऐसा ही करती आयी हूं। न आता हो तो मुझसे सीख लो।"

"तुम्हारी विद्या तुम्हींको मुबारक हो। मैया री! मैं तो ऐसी हंसीसे बाज़ आयी, मेरा रोना ही अच्छा।" कहते-कहते उमाकी दोनों आंखें भर आयीं। चारुने रुलाई मिली हुई हंसीके साथ कहा—"जीजी! इसे तुम कहां पा गयी?"

उमाका सिर अपनी गोदमें ले उसके बिखरे बालोंको बड़े प्रेमसे सुलझाते हुए सुरमाने स्नेह-भरे विशाल लोचनोंसे चारुकी ओर देखते-देखते कहा—"जहां ऐसा ही एक सच्चे स्नेहसे भरा

हुआ मुखड़ा मैंने पा लिया था, उसी संसारके पथमें मैंने यह मुखड़ा भी पाया है।" इसके बाद उमासे बोली—"अच्छा,यह तो सुन, तूने अभीतक अपने हाथकी मिठाई मौसीको नहीं खिलायी, कल ज़रा बनाकर—" बीचमें ही उमा बोल उठी—"नहीं, मां! मुझसे अब यह सब नहीं हो सकेगा। ये दो दिन तो देखते ही देखते बीत जायंगे। इतने समयको तो मैं मौसी और अतुलके साथ बातें करके ही बिता देना चाहती हूं। मौसीने ऐसी-ऐसी न जानें कितनी मिठाइयां खायी होंगी।"

इसी समय अतुल आ पहुंचा। उसने पुकार कर कहा—"जीजी! चिड़िया लेगी!" उमा उसे बड़े प्यारसे गोदमें लिये शोर मचाती हुई चिड़ियाकी खोजमें चली।

चारुने कहा—"अच्छा जीजी! तुम रंज न हो, तो एक बात कहूं। अच्छा, तुम रंज भी होगी तोभी कहूंगी।"

सुरमाने हंसकर कहा—"इतनी भूमिका किस लिये बांध रही हो? जो कहना हो, कहो।"

चारु—"जीजी! इतने दिन बाद मिलना हुआ, तोभी तुमने मुझसे एक बार यह नहीं पूछा कि वे कैसे हैं!"

सुरमा एकाएक इस बातका उत्तर नहीं दे सकी। उसे चुप देख चारुने फिर कहा—"जीजी तुम ऐसा क्यों करती हो? अपने आदमीको इस तरह पराया क्यों बनाये हुए हो? मुझे तो कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि तुम उनपर अभिमान करके ही यहां चली आयी हो; पर यह बात भी मनमें नहीं जमती,क्यों-

कि इतने दिन बाद तुम ऐसा क्यों करने लगी। अभिमान करना होता तो पहले ही करती। बाबूजीके मरनेके बाद ही यहां चली आती। वैसा न कर, हमलोगोंको अपने प्रबल प्रेम-पाशमें बांधकर अपने आपको भी हमारे प्रेममें फंसाकर, इस प्रकार वह फांस कटाकर कैसे चली आयीं? जीजी! मैं तुम्हारी छोटी बहन हूं, मुझसे कहो। मुझसे कहनेमें क्या सङ्कोच है।"

सुरमाका तो दम ही घुटने लगा। वह न तो चारुकी किसी बातका जवाब दे सकी और न उसे बोलनेसे रोक सकी। मानों वह किसी अंधेरे कुंएमें गिर पड़ी है और हवा न मिलनेसे उसका दम घुट रहा है।

चारु कहने लगी—"जीजी! इसका मतलब क्या है? मैं क्या यह नहीं जानती कि तुम मुझे और अतुलको कितना प्यार करती हो? फिर स्वामीपर तुम क्यों रूठी हुई हो? बात क्या है, यह मैं अच्छी तरह नही समझ सकती। यदि मैं झूठ कहती हूं, तो मुझे माफ़ करो, पर मेरा तो मन यही कहता है कि वे भी तुमको ख़ूब मानते हैं—तुम्हारी प्रतिष्ठा करते हैं। कम-से-कम उस सुखसे भी तुम अपनेको क्यों वञ्चित करती हो? अपने अतुलको गोदमें लिये हुए तुम उनके सामने क्यों न रहोगी। तुम्हें फिर वहां चलना होगा। फिर हमारे वे ही सुखके दिन लौटेंगे। जीजी! लौट चलो। अपने घर चलो। तुम उसी घरकी लक्ष्मी हो—यहां इतना ऐश्वर्य होते हुए भी तुम्हारा मन कभी

लगता होगा। मैं तुम्हें साथ ले जानेको आयी हूं। क्या तुम पराये घरमे टिककर अपने लोगोंको भी पराया बनाये रहोगी? लौट चलो।"

धीरे-धीरे सुरमा अपने आपेमें आयी। मैं ऐसी दुर्बल क्योंकर हो गयी कि चारुकी इन बातोंको हंसीमें न उड़ा सकी, यह सोचकर उसे अतिही अचम्भा हुआ। उसने गला साफ़कर धीरे-धीरे कहा—"अच्छा तो सुनो चारु! मैं भी कुछ कहना चाहती हूं। तुम अब वह चारु नही रही, जो मेरी बातपर पूरा भरोसा किये निश्चिन्त रहती थी। अब तुम बड़ी हुई, तुम्हें बोलने-चालनेका शऊर हो गया है, बात समझने लगी हो। मैं आशा करती हूं, कि मेरी इन बातोंको भी तुम छोटी बहनकी तरह सरल विश्वासके साथ सुनने-समझनेकी चेष्टा करोगी। तुमने यह ठीक ही समझा है कि मैंने उनपर अभिमान नहीं किया है। जब कि तुम्हारे साथ उनका विवाह नहीं हुआ था, उस समय मैं उनको केवल-मात्र अपना जानती थी। उस समयके उन्हीं स्वामीके ऊपर मेरा अभिमान है या नहीं, उनपर कुछ दुःख प्रकट करती हूं या नही, यह बात मत पूछो; क्योंकि यह तो मैं ख़ुद ही नही समझ सकती; परन्तु जबसे मैंने तुमको जाना है, तबसे तुम्हारे स्वामीपर तो मेरा रत्ती-भर भी अभिमान नही रहा। चारु! तुम भी छोटी बहनकी तरह अपनी जीजीके दिलकी बात समझनेकी चेष्टा करो। क्या कोई बड़ी बहन अपनी छोटी बहनके स्वामीपर क्रोध या अभि-

मान कर सकती है? सचमुच, मैं तुमको और अतुलको अपना सब कुछ समझती हूं। सन्तानकी माया क्या है, सो तो मैं नहीं जानती; पर अतुल मेरी जान है, यह जानती हूं। तुम्हें अपनी मांजाई बहन जानती हूं। तुम्हारे स्वामीको भी उसी श्रद्धा, स्नेह, प्रेम और मानकी दृष्टिसे देखती हूं। फिर मैं क्यों, इतने दिन बाद तुम लोगोंको छोड़कर नये परिवारमें चली आयी, यह तो भगवान् ही जानते हैं। यह बात तुम मुझसे मत पूछो। केवल इतना ही जानो कि यही मेरे भाग्यका लेख था। मुझे तो अब यह जीवन इसी तरह बिताना है। तुम सब भी मेरे लिये 'पराये हो गये और मैं भी तुम्हारे लिये परायी हो गयी। तोभी इतना तो अवश्य कह सकती हूं कि यदि कोई भविष्यद्वक्ता मुझे मेरी इस भाग्य-लिपिकी बात पहले ही बतला देता, तो मैं तुम्हारे प्रेम-पाशमें अपनेको कभी नहीं बांधती। अब मुझे क्षमा करो। यदि तुम सचमुच अपनी जीजीकी भलाई चाहती हो तो उसे फिर लौट चलनेको न कहो?"

चारु बड़ी देरतक भौंचक-सी होकर बैठी रही। फिर जब उसे वाक्य-स्फूर्त्ति हुई, तब मृदुस्वरसे बोली—"तो फिर क्या अब कभी वहां न जाओगी? सदाके लिये विदा ले आयी हो?"

"नहीं, अतुलके ब्याहपर जाऊंगी।"

"उसी समय काहेको जाओगी? क्या उस समय तुम्हारी भाग्य-लिपि नये सिरेसे लिखी जायेगी?"

"हो सकता है। चारु! इन बातोंसे मुझे कष्ट होता है, यह जानकर तुम्हें दया नहीं आती ?"

"माफ़ करो, जीजी! मैं और कुछ न कहूंगी। तो अब मुझे भी काहेको रोकती हो? कल ही जाने दो।"

"क्यों चारु! तुम नाराज़ हो गयी ? भाग्यका ही फेर है, नहीं तो आज तुम भी मेरा दुःख क्यों न समझती ?"

"जीजी! इसलिये मै ऐसा नहीं कहती। मन जब निराशामें डूब जाता है, तब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसीसे—" कहती हुई चारु सुरमाके और भी पास खिसक आयी और धीरे-धीरे उसके कन्धेपर सिर रख दिया। सुरमाने बड़े प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरते-फेरते कहा—"आओ, अब कुछ इधर-उधरकी बातें हो, जो बहले। अब उन्हींकी बातें हों, जिनके बारेमें कुछ नहीं पूछनेके लिये तुम मुझे उलाहना दे रही थी। उन्होंने तुम्हें क्योंकर आने दिया? रिश्तेदारीमें आनेसे मना नहीं किया ?"

"मैं चुपचाप चली आयी हूं।"

"चुपचाप, इसका क्या मतलब ?"

"वे घरपर नहीं हैं।;चार-पांच दिनके लिये तारिणी-भैयाके पास गये हुए हैं। जीजी! बड़े दुःखकी बात है—तारिणी-भैया बहुत बीमार हैं—बचेंगे या नहीं, इसमें भी सन्देह है। इसीसे उन्होंने बहुत आरजू करते हुए चिट्ठी लिखी थी। तभी तो वे गये हैं। न मालूम उस बेचारी बिना मांकी लड़कीकी क्या दुर्गति होनेवाली है।"

सुरमा बीचमें ही बोल उठी—"मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। परन्तु चारु! तुमने यह काम अच्छा नहीं किया। वे लौट आनेपर तुमपर बहुत नाराज़ होंगे।"

"मैं हाथ जोड़कर माफ़ी माग लूंगी; बस उनका क्रोध ठढा हो जायेगा।"

बड़ी देरतक चुप रहनेके बाद सुरमाने मलिन मुखसे कहा—"हो सकता है, वे अपने मनमें यही सोचें कि मैंने ही तुम्हें हठ करके बुलाया हो।"

चारुने हंसकर कहा—"तुम मुझे बुलाओगी; यह वे ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं। मैं तुम्हारे पास आनेको लिखा करती थी, इसीसे वे न जाने कितना नाराज़ होते थे।" चारुके चुप हो जानेपर सुरमाने फिर उससे कुछ न पूछा।

क्रमसे विदाईका दिन आ पहुचा। सुरमाने भर्रायी हुई आवाज़में कहा—"चारु! दो दिन और ठहर जाओ।"

चारुने कहा—"नहीं, जीजी! माफ़ करो। मैं उनसे पूछकर नहीं आयी। चाचाजीने कहा है कि उनके लौट आनेके पहले ही मुझे घर आ जाना चाहिये। यदि तुमको साथ ले जा सकती, तो ठहरनेका साहस भी करती।"

सुरमाने अतुलको गोदमें ले, हज़ारों बार उसका मुंह चूमा और फिर उसे चारुकी गोदमें देकर बोली—"इसे हरदम ख़ूब सावधानीसे रखना। और क्या कहूं, चारु! यही मेरा सर्वस्व है।" अतुल मुंह उदास किये देखता रहा। इसके बाद कन्याको

गोदमें ले, उसे आशीर्वाद करती और चूमती हुई बोली—"जब इस लड़कीका ब्याह करना, तब बेटी-दामाद दोनोंको मेरे पास देखनेके लिये भेज देना। भूलना नहीं।"

चारुने सुरमाको एक प्रतिज्ञामें बांध लिया। उसने उससे बराबर पत्र लिखनेकी शपथ करवा ली। उमा तो सबसे अधिक रोयी। वह तो अतुलको गोदसे उतारना ही नहीं चाहती थी। सुरमाके बहुत समझाने-बुझानेसे वह स्थिर हुई; पर ज्योंही चारुने यह कहकर उसका मुंह चूमा कि "उमा-रानी! अब तो मैं चलती हूं" त्योंही वह फूट-फूटकर रोने लगी। चारुकी पद-धूलि सिरपर ले, आंचलसे मुंह ढककर उसने मुंह फेर लिया। चारुने कम्पित कण्ठसे कहा—"जीजी! एक विनती है।"

"क्या? कहो।"

"यही कि एक बार अपनी इस हंसती हुई कमलिनीको मेरे पास भेज देना। मैं दो-चार दिनमें लौटा दूंगी।"

सुरमाने कम्पित कण्ठसे कहा—"इसके लिये विनती करनेका क्या काम है, चारु! मैं जरूर ही भेज दूंगी।"

प्रकाशने जल्दी मचानी शुरू की—वही चारुको पहुंचाने जा रहा है। बिन्दी दाई सुरमाको प्रणाम कर रोती हुई बोली—"अच्छा, तो बड़ी बहू! अब मैं जाती हूं कभी-कभी बिन्दीको भी याद किया कीजिये।" सुरमाने उसे हंसते हुए आशीर्वाद दिया। आशातीत पुरस्कार पाकर बिन्दी बड़ी खुश थी। वह मन-ही-मन यही सोचकर खुशीसे रहीफूल थी कि घर जानेपर

मैं अपने इनामकी बात सुना-सुनाकर अपनी सहयोगिनियोंको खूब जलाऊंगी। तोभी सुरमासे विदा होते हुए उसको कष्ट हो रहा था। आंखें भर-भर आती थीं। चारुको बार-बार चलनेके लिये कहती हुई वह लड़कोको गोदमें ले, गाड़ीमें जा बैठी।

चारुने कहा—"अच्छा, तो अब चलती हूं, जीजी!"

सुरमाने कहा—"अच्छा—"बस इसके आगे उससे कुछ कहा न गया। चारु, दो-तीन बूंद आंसू गिरा, सुरमाके पैरोंकी धूल ले, गाड़ीपर सवार हो गयी। अतुलने मलिन मुंह किये हुए कहा—"मां! मा! घर नहीं चलेंगी?"

चारुने कहा—"नहीं बेटा! तेरी मां यहीं रहेंगी।"

अतुलकी बात सुरमाके कानोंमें पड़ी। वह मुंह फेरकर खड़ी हो रही। गाड़ीकी घड़-घड़ाहट उसके कानोंमें नहीं पड़ी। उस समय उसके कानमें झिनझिनकी आवाज़ सुनाई दे रही थी—सारी देहमें चञ्चल गतिसे बहनेवाले ख़ूनका वेग मानों बन्द हुआ जाता था। घर जाऊं? कौन-सा घर? कैसा घर? मेरा घर अब कहां है? अब वह घर मेरा नहीं है। इस समय पराया घर ही मेरा अपना है। पराये लोग ही मेरे अपने-बगाने हैं। सहसा सुरमाने मुंह फेरकर पुकारा—"अतुल! बेटा!" पर कहीं कोई नहीं था। केवल आंधी चलकर ढेरकी ढेर धूल उड़ाती हुई मानों लम्बी सांस छोड़ रही थी।

——:o——

चौबीसवां परिच्छेद
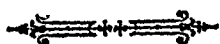
आकस्मिक आघात

प्रकाश चारु वग़ैरहको पहुंचाकर तीन-चार दिन बाद लौट आया। सुरमाने पूछा,—"प्रकाश! तुमने इतनी देर क्यों लगायी?"

प्रकाशने हँसते हुए कहा,—"वे लोग किसी तरह आने ही नहीं देते थे। ख़ासकर तुम्हारा अतुल तो इस तरह आकर गला पकड़ लेता था, कि शायद ही ऐसा कोई कठोर हृदयवाला हो, जो उसे छोड़कर चला आये।"

सुरमाने लम्बी सांस ले मन-ही-मन कहा—"वैसा कठिन कलेजा इस दुनियामें दुर्लभ थोड़े ही है।"

प्रकाश कहता गया,—"अमर बाबूने भी मुझसे ठहरनेके लिये बहुत सूरतसे कहा, इसीलिये लाचार मुझे रुक जाना पड़ा—उनकी बात मुझसे टालते न बनी। सुरमा चुपचाप रही। उसे एक बार यह पूछनेकी इच्छा हुई कि वे (अमरनाथ) चारुके घर पहुंचनेके पहले ही चले आये थे या नहीं, और आनेपर चारुके ऊपर वे कुछ झुँझलायेसे मालूम पड़े थे वा नहीं; परन्तु जबतक वह सिर ऊपर उठाये, तबतक प्रकाश ही फिर बोल उठा—"मैं तो अमर बाबूको अच्छा आदमी नहीं समझता था; लेकिन इस बार बातचीत करनेसे तो वे बड़े ही अच्छे आदमी मालूम पड़े। सच पूछो तो मेरी ही इच्छा ऐसी हो गयी थी कि अगर दो दिन और ठहर जाना पड़े तो अच्छा हो। हम दोनों ससुर--जमाई-

में ख़ूब गहरी छनी !" आख़िर इस बातपर सुरमाको हंसी आ ही गयी। मीठे स्वरमें बोली—"एक तो तुम आज ही पहले सिरके गपोड़े हो, दूसरे यहां एक गप्पियोंके अखाड़ेमें आ पहुंच गये। फिर क्यों न जी लगे ?" प्रकाशने हंसकर कहा—"ऐसी जगहमें रहकर भी तुम भला ऐसी गुरु गम्भीर क्योंकर हो गयी ?"

सुरमा इस बार झुंझलाहटकी हंसी हंसी।

दूसरे दिन तीसरे पहर उमाने आकर कहा—"मां ! मैंने एक चीज़ पायी है। उसे तुम्हें न दूंगी।"

सुरमा उठ खड़ी हुई, बोली—"क्या है, क्या है ?"

उमा—"तुम्हीं बतलाओ न, क्या है ?"

सुरमा—"ला, ला, खिलवाड़ न कर।"

उमा—"चीज़ तुम्हारे कामकी है, यह कैसे समझ गयी ?"

सुरमा—"तू बहुत बक-बक करेगी तो मैं चली आऊंगी।"

उमा—"माफ़ करो मा ! यह लो,मौसीकी चिट्ठी है।"यह कह उसने एक चिट्ठी सुरमाको दे दी। सुरमा उसे लिये हुए एक कोनेमें जा बैठी और बड़े ही उद्विग्न भावसे उसे पढ़ने लगी। लाओ, पहले मैं ज़रा पढ़ लूं। लाओ,दे दो आदि बारम्बार कहने-पर भी जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया, तब उमा नाराज़ होकर चली गयी। सुरमा पढ़ने लगी :—

"जीजीके चरणोंमें प्रणाम। प्रकाश चाचाने हमारे पहुंचनेका सम्वाद सुनाया ही होगा और मैं यहां आते ही झंझटमें पड़

गयी। यह भी तुम्हें मालूम ही हुआ होगा। मेरे यहां आनेके एक दिन पहले ही वे घर पहुंच गये थे। मैं तो घरमें पैर रखते ही डर गयी। मेरे आनेपर जब वे तीन-चार घंटेतक घरके भीतर नहीं आये, तब मेरा भय और भी बढ़ गया। दासी-ने भी कहा कि वे बड़े नाराज़ हैं; पर जब वे खानेके लिये घरके भीतर आये, तब मैंने उनके चेहरेपर नाराज़ीका कोई चिह्न नहीं देखा। अतुलने उन्हें जाकर पकड़ लिया और उन्होंने भी उसे गोदमें उठा लिया। इसके बाद वे उसे लिये हुए उसी कमरेमें आये, जहां मैं एक कोनेमें डरसे कांपती हुई खड़ी थी। उन्होंने हंसकर कहा,—"क्यों? क्या कुछ नाराज़ हो गयी हो? या भूल गयी हो? या पहचानती ही नहीं हो?" उस समय मैंने सोचा कि वे पहले भले ही नाराज़ हुए हों; पर इस समय नहीं हैं। तुम्हें तो उनका स्वभाव मालूम ही है। और मैं तो पग-पगपर भूल करती ही रहती हूं। वे भी माफ़ कर देते हैं, तुम भी माफ़ कर देती हो। इसीसे मेरी भी आदत आजतक नहीं सुधरी।

"मेरी उमा रानीका क्या हाल-चाल है? उसका फूल-सा हंसता हुआ मुखड़ा आंखोंके सामने सदा घूमता रहता है। अच्छा, उसकी चर्चा करते-करते एक और बात याद आ गयी। प्रकाश-चाचाने तुमसे कहा ही होगा कि तारिणी-भैयाकी मृत्यु हो गयी। मैंने उनसे कह दिया था कि वे यह समाचार तुमको सुना देंगे। तुमको इस सम्वादसे ज़रूर ही बड़ा कष्ट होगा।

"ख़ैर, वे अपनी लड़कीको अतुलके बापके हाथमें सौंप

गये हैं। इनके भाग्यमें ही ऐसी लड़कियोंका परिपालन करना लिखा है। लड़की सयानी हो गयी है। तारिणी भैयाको तो इसकी कुछ खोज खबर रहती ही नहीं थी। पीछे, जब उनकी स्त्री मर गयी, तब इसे अपने पास ले आये थे। लड़की चौदह-पन्द्रह सालकी होगी। उसका नाम मन्दाकिनी है। उमाकी बातपर ही इसकी बात याद आ गयी। यह लड़की कुछ अजीब ढङ्गकी है। बहुत शर्मीली नहीं है, तोभी अकाल-पक्वकी तरह गम्भीर है। सदा चुपचाप रहती है। बहुत कम हंसती है। अतुलकी बातपर कभी-कभी हंस देती है, मगर यह हंसी भी ऊपरके ही मनसे होती है। वे कहते हैं कि बापके मर जानेसे इसके दिलमें सोच बैठ गया है; पर मैं जहांतक समझता हूं उसका ऐसा स्वभाव ही है। अतुलको बहुत प्यार करती है। अतुल भी इसे उमा समझकर 'जीजी! जीजी!' कहकर पुकारा करता है। मुझे यह बुरा लगता है; पर न मालूम क्यों मुझे उमाका मौसी कहकर पुकारना इससे कहीं मधुर मालूम पड़ता है। तोभी इसके लिये मेरे हृदयमें बड़ी माया है। जब वे इसे लेकर मेरे पास आये और यह मुझे प्रणाम कर सिर झुकाये दूर जा खड़ी हुई, तब इसका वह कृपाप्रार्थी भाव, जिसे प्रकाशित करनेका इसे साहस नहीं होता था, देखकर मैंने मन ही-मन कहा—"हाय! यह लड़की इसी उमरमें माँ बाप दोनोंको खो बैठी!"

"तुम्हारा अतुल अच्छी तरह है। केवल मां-माकी रट

लगाये रहता है। मैं उसे कितना फुसलाती-बहलाती हूं। और क्या फिर कभी देखादेखी नहीं होगी ? यह या तो ईश्वर जानें या तुम जानो। मेरा प्रणाम स्वीकार करना। हम सब अच्छी तरहसे हैं। इति।

तुम्हारी,

चारु।"

सुरमाने उमाको बुलाकर उसे यह पत्र दिया, तो उसने मारे गुस्सेके मुंह फेर लिया। बहुत मनानेपर हंसी और पत्र लेकर पढ़ने लगी। एक जगह पढ़ते-पढ़ते मुस्कुराकर बोली—"मौसी भी अजब ढङ्गकी हैं—किसीको नहीं प्यार करतीं।" अतुलकी बात पढ़ते-पढ़ते उसकी आंखोंमें आंसू भर आये, बोली—"हो सकता है, दो दिन बाद मुझे एकबारगी भूल जाये।" सुरमाने कहा—"नहीं भी भूल सकता है, क्योंकि उसकी स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र है।"

सांझको उमा ठाकुरजीके घरमें बैठी हुई आरतीके दीप सजा रही थी। एकाएक कानमें किसीके पैरोंकी आहट पड़ी, तो झट 'मां' कहकर पीछे फिरकर देखा कि मा नहीं, प्रकाश है। उसे अचम्भा हुआ कि ऐसे समय यहां प्रकाश किस लिये आया ?

उसने विस्मित स्वरमें पूछा—"क्या है प्रकाश भैया ?" प्रकाश भी चौंक पड़ा, उसने सिर झुकाये हुए उत्तर दिया—"सुरमा कहां है ? मैं उसीसे मिलने आया था।"

उमा—"मिलने ? किस लिये ? कहीं जानेवाले हो क्या ?"

प्रकाश—"हां।"

उमा—"कहां जाओगे ? ताहिरपुर ?"

प्रकाश—"हां, वह कहां है ? ऊपर ?"

उमाने कुछ सोचकर कहा—"हो सकता है, चलो, मैं भी चलती हूं।"

प्रकाश खड़ा हो गया। घड़ी-भरतक करुणा-भरे नेत्रोंसे उस चञ्चल और हलके मेघ-खण्डकी भांति अथवा नील आकाश-में अष्टमीके शीघ्र अस्त होनेवाले चन्द्रमाके समान किशोरीको जाते हुए देखने लगा। मानों उसके अनजानतेमें ही उसके कण्ठसे इतनी बात निकल पड़ी—"उमा ! उमा ! ज़रा ठहरो।" उमा लौट आयी। उसे सुरमाका उपदेश भूला नहीं था ; तोभी वह विस्मय और कौतूहलके वश लौट आयी, दालानके एक सिरेपर खड़ी हो, प्रकाशकी ओर सरल नेत्रोंसे देखते हुए उसने पूछा—"क्यों ? मुझे किस लिये पुकारा ?" प्रकाश कुछ कह न सका, केवल स्थिर दृष्टिसे उसकी ओर देखता रह गया। शायद वह सोच रहा था—"यह क्या केवल-मात्र कुसुम है, जिसमें केवल गन्ध और रूप है—और कुछ भी नहीं है ! यह क्या केवल प्रस्तर-प्रतिमा है, जिसमें केवल सौन्दर्य, और मौन-मधुरता है। शायद इसमें आशा-तृष्णामय मानवका अन्तःकरण नहीं है।"

उमा कुछ डरी, उसने कुछ और भी व्यथित अन्तःकरणसे, चिन्तित भावसे, प्रकाशके और भी निकट आकर मृदु कण्ठसे

कहा—"तुम्हें क्या हो गया है? बोलो, क्या कुछ तबीयत ख़राब है? मांको बुला लाऊं?"

प्रकाश—"उमा! उमा! तुम मुझे बतला दो कि तुम क्या हो? तुम्हें इतने दिनोंसे देख रहा हूं, तोभी तुम्हें अभीतक नहीं समझ सका। क्या तुम केवल मूर्तिमात्र हो? तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं है? यह सरलता, यह शोभा तो सदासे ही देखता आ रहा हूं—कुछ और भी तो दिखाओ। इस हंसीपर तो कभी छाया पड़ती नहीं देखी। तुम क्या आदमी नहीं हो? फिर तुम क्या हो, उमा?"

उमा तो भौंचक-सी हो रही। यह कैसा स्वर है। कैसी बातें हैं। वह सब बातोंका पूरा-पूरा मतलब नहीं समझी, तो भी एक अनिर्दिष्ट आशङ्का और अनुनभूत भावसे उसकी सारी देह कांप उठी। उसे चुप देख प्रकाशने फिर उसी तरह आवेगमें कहना शुरू किया—"चुप क्यों हो रही? बोलो, एक बातका भी तो उत्तर दो। मुझसे तो अब इस सन्देहमें पड़ा रहना पार नहीं लगता। आज फिर ताहिरपुर जा रहा हूं, शायद देरसे लौटूंगा। जितने दिन वहां रहूंगा, उतने दिन स्वजनहीन, माया-ममता-स्नेह-हीन विदेशमें क्या एक बार भी यह बात मैं अपने मनमें न ला सकूंगा कि इस पृथ्वीमें कोई मेरी याद करनेवाला भी है, कोई मेरी बाट जोहनेवाला भी मौजूद है। इस चिर-बान्धव-हीनका भी अपना कोई है।"

उमा चुपचाप खड़ी-खड़ी कांप रही थी। उसको सुनील

सुन्दर आखें एक टक प्रकाशकी ओर देख रही थीं और उनसे मोतीकेसे आंसुओंकी धारा बह रही थी। देखते-देखते प्रकाशने सोचा कि यह उसके उद्धारके लिये प्रेम-मन्दाकिनीकी धारा बह रही है। उसने टूटे फूटे स्वरमें कहा—"उमा! उमा! क्यों रोती हो? मत रोओ। क्या इस अभागेने तुम्हें कोई कष्ट पहुचाया? मुझे क्षमा करो—क्षमा करो। क्या तुम मुझसे एक बात भी न कहोगी? मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि इसी एक विश्वासको साथ लेकर मैं विदेशमे जाकर रहूं। कुछ भी बोलो तो सही।" सिर झुकाये, आंचलसे मुंह छिपाये उमा बोली—"तुम जाओ।"

प्रकाश—"अभी जाता हूं। नहीं जानता, मैं यहां किस लिये आया और क्या कर बैठा, व्यर्थ ही तुम्हें कष्ट दिया। तोभी इसी सुख-स्मृतिको मैं अपना सर्वस्व समझता हूं। यही जानकर मुझे माफ़ कर दो। अच्छा, उमा! अब मैं जाता हूं।"

उमा दोनों हाथोंसे मुंह छिपाये हुए बोली, "जाओ, जल्द चले जाओ। तुमने क्यों यह सब बातें कहीं? यहां क्यों आये?"

प्रकाश—"यह मैं नहीं कह सकता। ईश्वर जानता है कि मैं यह सब कहनेके लिये यहां नहीं आया था। तुम ऐसा कभी न सोचना, नहीं तो मुझे दूना कष्ट होगा। आज तुम्हें देखते ही न जाने क्यों मैं अपने हृदयको उबल पड़नेसे न रोक सका। न जाने क्यों आज—"

उमाने आर्त्तकण्ठसे रोते हुए कहा—"तुम जाओ, मैं और कुछ सुनना नहीं चाहती।"

"जाता हूं, उमा! जाता हूं। हे भगवन्! मैं नहीं जानता कि मैं क्या कर बैठा। यदि तुम मुझे इसके लिये दण्ड देना चाहो, तो भले ही देना, पर उमाको सुखसे रखना।" यह कह प्रकाश झटपट वहांसे चला गया। और वह कातरा बालिका वहींपर निष्ठुर बहेलियेके तीरसे घायल पक्षीकी तरह ज़मीनपर लोट गयी। आज सहसा उसके प्राणोंमें यह कैसी यन्त्रणा हो रही है! कैसा हाहाकार जारी हो गया है! उसने ज़मीनपर सिर पटकते हुए आर्त्तकण्ठसे कहा—"भगवन्! आज मेरा यह कैसा हाल हो गया? दया करके मुझे इस रोगके पञ्जेसे छुड़ाओ।"

जो पक्षी कभी बस्तीमें नहीं आया, वह यदि मनुष्योंके बीच लाकर पिञ्जड़ेमें बन्द कर दिया जाता है तो उसकी कैसी अवस्था हो जाती है, यह बहुतोंको मालूम है। वह मानों उन्मत्त हो उठता है। कभी अधीर होकर पिञ्जड़ेको ठुकराता है, कभी अपने ही अङ्गोंको ठुकराकर खूनसे लथपथ कर देता है। कोई उसपर प्यार जताने आता है, तो उसे काटने दौड़ता है। जो कभी इस संसारके सुख-दुःखमें पूरी तरहसे नहीं डूबा, केवल ऊपर ही ऊपर तैरता फिरा है, वह यदि अकस्मात् थोड़ा-सा भी नीचे चला जाता है, तो उसकी भी हालत ठीक वैसी ही हो जाती है। ज्ञानके अस्फुट आभासके पहले जिसके जीवनकी

आशा-निराशा और दुःख-वेदनाके कारणोंने अपना काम करने-का मौका नहीं पाया है, जिसपर संसारके आघात नहीं हुए, वह सबसे बढ़कर सुखी है—उसका मन:सदा बच्चेके मनकी तरह अमल-कोमल बना रहता है। वह जीवन-कुसुम सदा ही सुन्दर सुगन्ध और नेत्रानन्ददायिनी शोभाके साथ खिला रहता है। थोड़े ही सुखसे वह हंसने लगता है, ज़रासी तकलीफ़से ही उसे रुलाई आ जाती है; फिर थोड़ी ही देरमें वह उसे भूल जाता है। उमाको देखकर लोगोंको दुःख होता था, लोग उसकी बदक़िस्मतीपर आंसू बहाते थे, परन्तु वह इन बातोंको देखकर हंस देती थी। कभी-कभी उदास भी होती थी; परन्तु उसका कारण उसे नहीं मालूम होने पाता था। इसीलिये उसकी उदासी भी बहुत जल्द दूर हो जाती थी। इसी कारण आज इस आकस्मिक आघातसे वह एक बारगी मुह्यमान हो गयी। संसारमें ऐसी भी कोई भयानक वस्तु है, यह वह पहले नहीं जानती थी—आज एक-ब-एक उसके प्रकट होनेसे वह एकदम स्तम्भित हो गयी।

बड़ी देर बाद उसे ऐसा मालूम हुआ मानों उसका सिर किसीने ज़मीनसे उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और धीरे-धीरे उसके बिखरे बालोंको सुलझा रहा है। उमा बिसूर-बिसूर कर रोने लगी।

बड़ी देरतक रोती रहनेके बाद उमा शान्त हुई। धीरे-धीरे सुरमाकी गोदसे अपना सिर हटाकर वह मुंह फेरकर बैठ

रही। सुरमाने बड़े प्यारसे कहा—"चलो, उमा! आरती देख आयें।"

उस समय मन्दिरमें असंख्य आलोकमाला जल रही थी। शृंगार किये देवमूर्त्तिके सामने खड़े हुए पुजारी बड़ी भक्तिके साथ आरती कर रहे थे। उनकी दृष्टि देवताके मुखपर थी, देह सीधी किये खड़े थे और हाथमें उमाकी सजायी हुई आरतीकी थाली लिये हुए थे। उमाने सहसा घुटने टेक, झुककर देवताको प्रणाम किया। इसके बाद उदास नेत्रोंसे देवताकी ओर देखने लगी। उसीकी भक्ति-भरे चित्तसे की हुई सेवा उस समय भी देवमूर्त्तिके अङ्गोंपर शोभा दिखा रही थी—उसीके सजे हुए दीपकी ज्योतिसे वह झलक रही थी—मानों पञ्च-प्रदीपके पांचों मुखोंसे उसीकी ज्वलन्त भक्ति देवताके अङ्गोंमें जाकर मिल रही थी। उमा शान्त और मुग्ध नयनोंसे एक टक देखती रही।

रातको सुरमा उमाको अपनी गोदमें लेकर धीरे-धीरे उसके सिरपर हाथ फेरने लगी। लम्बी सांस लेकर उमाने करवट बदली—आज उसे यह सब लाड़-प्यार अच्छा नहीं लगता था। बड़ी देर बाद सुरमाने स्नेह-भरे स्वरमें पुकारा—"उमा!" पर कोई उत्तर नहीं मिला। उसने फिर पूछा—"उमा! तुझे क्या हो गया है, बेटी? क्या तेरे मनको कोई कष्ट है?" उमाने दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपा लिया। इसके बाद वेदना-भरे स्वरमें बोली—"नहीं, कुछ भी नहीं।" वह स्वर सुरमाको हृदय-

भेदी करुण स्वरके समान मालूम हुआ। उसने पूछा—"क्या हुआ है? तू रोती क्यों थी? क्या किसीने कुछ कहा है?" उमा तनिक उच्च स्वरसे आर्तकण्ठसे बोल उठी—"मैं कुछ भी नहीं जानती। मुझसे कुछ भी न पूछो।" सुरमाने उसे और भी पास खींच लिया। स्नेहपूर्ण कण्ठसे कहा—"क्यों बेटी! तू ऐसा क्यों कर रही है? देख, मुझसे कुछ न छिपा। कह दे, क्या हुआ है?" उमाने कहा,—"कुछ भी नहीं।" और यह कह एक लम्बी सांस ले, वह सुरमाके स्नेहव्यग्र बाहु-बन्धनसे मुक्त होनेकी चेष्टा करने लगी। सुरमा उसे बलपूर्वक पकड़े रही; पर उसने फिर उससे कुछ न पूछा।

सवेरे उठकर सुरमाने देखा कि उमा आंधीसे गिरे हुए फूलोंके गुच्छेकी तरह बिस्तरेके एक कोनेमें पड़ी हुई है। वह समझ गयी कि वह जगी हुई है; पर सोनेका बहाना करके सास रोके पड़ी हुई है। उसने सकरुण हृदयसे अचम्भेमें आकर सोचा,—"आज इस सरला बालिकाको क्या हो गया है? एक ही दिनमे यह मुद्दतोंकी बीमार-सी मालूम पड़ती है। एकाएक यह बात क्योंकर हो गयी? उसे दुःखी होने और रोनेका अधिकार ज़रूर है; पर वह रोदन तो इतना तीव्र नहीं हो सकता। वह तो प्रायः रोती-हँसती रहती है; पर कभी उसे छिपानेकी चेष्टा तो नहीं करती। यह मेरे स्नेह-पाशसे दूर भागना नहीं चाहती; बल्कि और भी स्नेह-प्रार्थी भावसे आकर गोदमें सिर रख देती है। इससे मालूम होता है कि

इसे ज़रूर ही कोई आकस्मिक तीव्र वेदना उत्पन्न हो गयी है। वह आकस्मिक वेदना क्या हो सकती है?" सुरमाने पुकारा,—"उमा! उठो। दिन निकल आया।"

लाचार उमा उठ बैठी। सुरमाने कहा,—"चलो, बग़ीचेमें टहल आयें। इसके बाद तीखी निगाहसे उसके चेहरेकी ओर देखती हुई बोली—"कल रातको प्रकाश ताहिरपुर गया। तुम्हें मालूम है या नहीं?"

उमाके ऊपर मानों बिजली गिर पड़ी, उसने मुंह फेर लिया। उमाने प्रत्यक्ष देखा कि उसकी देह थर-थर कांप रही है। सुरमाके चेहरेका रंग उड़ गया। क्षण-भर सोचनेके बाद उसने बातको और भी ठीक-ठिकानेके साथ समझ लेनेके इरादेसे कहा—"तुमने उससे कल मुलाक़ात क्यों नहीं की? अबकी शायद उसे वहां बहुत दिनोंतक रहना पड़ेगा।"

उमाने दोनों हाथोंसे मुंह छिपा लिया। आर्त्तकण्ठसे बोली—"मैं मुलाक़ात करना नहीं चाहती।" इसके बाद वह फिर बिछावनपर जाकर लेट रही।

बड़ी देर बाद सुरमाने गम्भीर स्वरसे कहा—"चल, स्नान करने जाना है।" इस स्वरमें कही हुई बातको टालना उमाके साहसके बाहरकी बात थी। वह धीरे-धीरे उठ खड़ी हुई। दासीने आकर कहा—"जीजी! क्या मन्दिरमें न जाओगी? पुजारी बाबा बुला रहे हैं।"

सुरमाने कहा—"आज उन्हींको सब प्रबन्ध कर लेनेको कह दे। आज उमाका जी अच्छा नहीं है।"

पचीसवां परिच्छेद
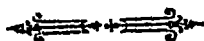
परिचित रोगी

चारुके सुरमाके पास चली जानेसे अमर पहले बहुत नाराज़ हुआ था, किन्तु अन्तमें जब उसने देखा कि यद्यपि उसने एकदम अल्हड़ लड़कीकी तरह बेवकूफ़ी की है, तथापि एक तरहसे उसका अपराध क्षमा करने योग्य है। उसका स्वभाव अत्यन्त स्नेहशील है, इसीसे वह सांसारिक विषयमें ऐसी अनजान-सी है। एक लम्बी सांस लेकर अमरने बड़े स्नेहके साथ चारुसे कहा—"इस तरह सङ्कोच क्यों करती हो? जो कर चुकी, वह तो अब लौटाया नहीं जा सकता। मैं तुम्हारे ऊपर नाराज़ नहीं हूं।"

चारुने उदास मुंह बनाये हुए कहा—"फिर आपने इस तरह लम्बी सांस क्यों ली? ज़रूर आप नाराज़ हो गये हैं।"

अमरने तनिक मुस्कुराकर कहा—"क्या लम्बी सांस लेना नाराज़ीकी निशानी है? नहीं, दुःख होनेसे लम्बी सांस निकलती है।"

चारु—"आपको दुःख क्यों हुआ? मैं आपकी आज्ञाके अनुसार नहीं चलती, इसीलिये?"

अमर—"नहीं, इसीलिये कि तुम इतनी सरल हो कि सबको हदसे ज्यादा प्यार करती हो।"

चारु हंसने लगी। बोली—"इसमें दुःखकी क्या बात है? मैं सबको प्यार करती हूं, यह कहना तो सरासर अन्याय है। मैं आप लोगोंकी तरह सभीको थोड़े ही मानती हूं?"

अमर—"इन आप लोगोंमें कौन कौन हैं?"

चारु—"तुम, अतुल, नन्ही, बच्ची, जीजी, और हालमें एक और लड़की मुझे मिल गयी है—उमा रानी।"

अमर—"तुमने जितने आदमियोंके नाम गिनाये, उन सभीको प्यार करना क्या उचित है?"

चारुने गम्भीर होकर कहा—"आपने इस बातसे जीजीकी ओर इशारा किया है न? इसमें आपने क्या अनुचित देखा?"

अमर—"अनुचित कैसे नहीं है? भला कोई स्त्री अपनी सौतको भी प्यार करत

चारुने लम्बी सांस लेकर कहा—"वह सौत होती तो फिर दुःख काहेका था?"

अमरने आश्चर्य्यके साथ, तनिक मुस्कुराते हुए कहा—"अच्छा! इतना साहस! इतना अहङ्कार अच्छा नही है।"

चारु—"आप इसे अहङ्कार कहते हैं? यह अहङ्कार नही, अनुताप है। आप ही ठीक-ठीक कहिये न, मैं कौन हूं? क्या वही सब कुछ नही है? घर उनका, स्वामी उनके, पुत्र उनका—मैंने ही तो उनका सब कुछ छीन लिया। फिर मैं उस बेचारीको ज़रा प्यार करती हूं, इससे आपको इतना अचम्भा क्यों होता है? आप भी क्या खूब आदमी हैं। अजी, वह मुझे प्यार

करती हैं, यही बात अचम्भेकी है। मैंने उनका ऐसा सुखी जीवन नष्ट कर डाला, यह बात क्या मैं कभी भूल सकती हूं ?"

अमर बड़ी देरतक चुपचाप बैठा रहा। जिस बालिकाको बात करनेका भी शऊर नहीं, वह आज ऐसी युक्ति और सहृदयता-भरी बात कह बैठी, यह देख वह ज़रा चौंक पड़ा। उसके हृदयमें अज्ञात-भावसे ही एक प्रकारका उच्छ्वास उठ रहा था, उसे दबाकर उसने कहा—"यह तुम्हारा भ्रम है। यदि इसके लिये वास्तवमें कोई अपराधी हो सकता है, तो वह मैं ही हूं। मेरी ग्लानि तुम क्यों भोग करोगी ?"

चारु—"आपको उस ग्लानिका कारण भी तो मैं ही हूं ? मेरे लिये आप भगवानके सामने और एक और आदमीके सामने अपराधी हैं। इसके लिये मैं क्यों नहीं ग्लानि उठाऊंगी ?" यह कह उसने सिर नीचा कर लिया—उसकी आंखें भर आयीं।

अमर भी बड़ी देरतक चुप रहनेके बाद अन्तमें बोला—"जो होना था, वह तो हो ही गया—तुम क्यों उसके लिये झूठमूठ पछताती हो। दोषी तो मैं ही हूं। चारु! तुम इसके लिये दुःखित होती हो, यह मुझसे नहीं सहा जाता। और एक बात है। इसे तुम ठीक समझ लेना कि जिसके लिये तुम इतना अनुताप करती हो, वह इस मामलेसे तनिक भी दुखी नहीं है। जीवनके आरम्भमें उसे भले ही दुःख हुआ हो; पर इस

समय तो उसने अपने जीवनको और ही साचेमें ढाल लिया है। वह अब मेरी-तुम्हारी साधारण मित्रताकी भी चाह नहीं रखती। यदि उसे यह इच्छा रहती, तो वह इस तरह कैसे नाता तोड़ सकती थी?"

चारु—"आप कहते क्या हैं? मैं जिसे प्यार करती हूं उसके हृदयमें भी अवश्य ही मेरा प्यार होगा, नहीं तो प्रेम हो ही नहीं सकता। जो कुछ भी नहीं चाहता, उसे प्यार करना और गुड़ियों-को प्यार करना एक-सा है। यदि आप अपनी बात कहें, तो मैं जहांतक समझती हूं, वह आपके ऊपर अभिमान किये बैठी है।"

अमरने बड़े ज़ोरसे कहा—"चारु! यह तुम्हारी समझकी भूल है। सरासर भूल है! अभिमान किसपर किया जाता है? जिस-पर अपना प्यार होता है।"

चारु—"तो आप मुझे यह बतलाना चाहते हैं कि उसने कभी आपको प्यार नहीं किया। भला ऐसा कभी हो सकता है? हाँ, आजकल उसके मनमें तुम्हारा स्नेह न रह गया हो, यह बात दूसरी है। आपहीने उसको कभी प्यार नहीं किया—वह आपको प्यार ज़रूर करती थी।"

अमर फिर चुप हो रहा। क्षण-भर बाद लम्बी सांस ले बोला—"दिन बहुत चढ़ आया। अब ज़रा जाकर देखता हूं कि अतिथिशालामें जो दो रोगी बहुत बीमार पड़े हैं, वे कैसे हैं।"

अमरके बाहर चले आनेपर श्यामाचरण रायने कहा—"दो-

चार ज़रूरी काग़ज़पत्र हैं। उन्हें अभी देख लो। सवेरेके सब काम कर चुके या नहीं ?"

अमरने व्यस्तभावसे कहा—"नहीं, अभी रहने दीजिये। बिना उन दोनों रोगियोंकी ठीक-ठीक व्यवस्था किये मैं और किसी काममें हाथ नहीं डाल सकता। मैं आज खाने-पीनेके बाद और कहीं नहीं जाऊंगा, आपका ही काम देखूंगा।"

श्यामाचरण राय अपने काममें चले गये और अमर भी जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ फाटककी ओर चला। सदर दरवाज़ेपर ज्योंही पहुचा, त्योंही अतिथिशालाके अध्यक्षने आकर प्रस्ताव किया और कहा—"एक भला आदमी अतिथिशालाके दरवाज़ेपर आकर पड़ा हुआ है। वह बहुत बीमार मालूम पड़ता है। अच्छी तरह बातें भी नहीं कर सकता। आप शीघ्र चलिये।"

अमरने उत्कण्ठित होकर कहा —"यह और नयी आफ़त आ पहुंची। ख़ैर,यह तो बतलाओ कि पहलेवाले रोगियोंकी क्या हालत है ?"

"अच्छी ही तो मालूम पड़ती है।"

"तब चलो, पहले इसी नये आये हुए रोगीको ही देखूं।

अमरने अतिथि-शालामें पहुचकर देखा कि एक खाटपर पड़ा हुआ भला आदमी ज्वरकी अधिकताके कारण छटपटा रहा है। अच्छी तरहसे उस रोगीको नाड़ी और अवस्थाकी परीक्षा करनेपर अमर बड़े आश्चर्यमें पड़ा। उसने कहा, "यह तो परिचित ही मालूम पड़ता है। बहुत अच्छी तरह परिचित

है, पर बहुत दिनोंसे नहीं मिला, इसीलिये मैं ठीक-ठीक याद नहीं कर सकता कि कौन है?" अन्तमें उस रोगीके बिलकुल पास आकर अमरने व्याकुल कण्ठसे कहा—"देवेन्द्र! देवेन्द्र! भाई! तुम ऐसी हालतमें यहां कैसे आ पहुंचे?" उस व्यक्तिने कोई उत्तर नहीं दिया। अमरने उसे और भी दो-चार बार पुकारा; पर जब वह नहीं बोला, तब अध्यक्षसे झटपट एक पालकी और ढोनेवाले कहार बुलवा लेनेको कहा और अन्यान्य रोगियोंको देखकर उनके लिये व्यवस्था लिख दी। आज और कुछ करनेका मौक़ा नहीं मिला। पालकी आते ही वह अपने मित्रको लेकर घर चला आया। फिर तो अमरको चार-पांच दिनोंतक और कोई काम देखनेका मौक़ा नहीं मिला। बड़ी दवादारू और तीमारदारी करनेपर रोगी कुछ-कुछ अच्छा होने लगा। उसके एकदम अच्छा होनेमें दो सप्ताह लग गये।

अब देवेन्द्रके बदनमें काफ़ी ताकत आ गयी है। दोनों मित्र रोज़ शामको बाग़ीचेमें टहलने जाते हैं, अतुलको गोदमें लेकर खिलाया करते हैं। अमर देवेन्द्रको पाकर सहसा अप्रत्याशित आनन्दसे उत्फुल्ल हो गया है, मानों वह नयी जवानीकी मौजके दिन फिर फिर आये हैं!"

आज भी दोनों जने बाग़ीचेमे टहलने आये थे। अमर देवेन्द्रको धिक्कार दे रहा था। उसने कहा—"तुमने मुझे पहलेही ख़बर क्यों नहीं दी? भिखमङ्गेकी तरह अतिथिशालाके दरवाज़ेपर आकर पड़ रहे!"

देवेन्द्रने हंसकर कहा—'कैसे ख़बर देता? तुम कभी मेरी खोज-ख़बर लेते थे? चारुको लेकर जो तुम गये, उसके एकाध महीने वाद तुमने लिखा कि मैंने उसके साथ विवाह कर लिया है। इसके वाद तो मैंने कितने पत्र दिये। उनमेंसे अधिकांशका कोई उत्तर ही नहीं आया। फिर जव तुम मुझे भूल गये, तव मुझमें क्या भूलनेकी शक्ति नहीं है?"

अमरने हंसकर कहा—"फिर किस अपराधपर मेरी याद आयी?"

देवेन्द्र—"अपराध एक नहीं, अनेक हैं। पश्चिम जानेपर भी जव मुझे आराम नहीं हुआ, तव मैं घर लौट आया। वहां आकर सुना कि तुम हालमें वहुत दिनोंके वाद इस गांवमें आये थे। चारुका वह जो कैसा भाई लगता था उसका हाल सुना। जो तुमसे मिलनेके लिये अकुला उठा। सुना कि तुम भी मेरी खोजमें गये थे।"

अमर—"फिर मेरे घर न आकर अतिथिशालामें क्यों गये?"

देवेन्द्र,—"ज़रा दिल्लगी करनेके लिये, पर मज़ा न मिलकर सज़ा मिल गयी। न जाने किधरसे मुझे ज़ोरके मलेरिया-ज्वरने धर दवाया।"

अमर—"ख़ैर, यह सव वातें इस समय रहने दो। अव तुम्हें कुछ दिन यहां जमकर रहना पड़ेगा। यद्यपि मैं इस वातपर ज़ोर नहीं दे सकता, क्योंकि तुम पश्चिममें सव जगह घूम आये, इस गंवई-गांवमें—"

देवेन्द्र—"रहने दो, दूरके ढ़ोल सुहावने होते ही हैं। पच्छिममें क्या धरा है? वङ्ग-माताकी श्यामल शोभा और कहां देखनेको मिलेगी? पच्छिममें तो ख़ाली धूल फांकनेको मिलती है। कहीं-कहीं तो सहारा-मरुभूमिकेसे लम्बे-चौड़े मैदान दिखाई देते हैं। और इस हमारे बङ्गालमें कितनी हरियाली है, कितना अन्न पैदा होता है, कितनी नदियां बह रही हैं। तरह-तरहके पक्षियोंके मीठे बोल सदा कानोंमें पड़ते रहते हैं। यह सौन्दर्य भला और कहां है?"

अमरने हंसकर कहा—"आज, देवेन! बहुत दिनोंके बाद ऐसा मालूम होता है कि हम दोनों फिर कालेजके छात्र हैं और गोल-दिग्धीके किनारे बैठे हुए काव्यालोचना कर रहे हैं।"

अमरकी ओर देखते हुए देवेन्द्रने मुस्कुराकर कहा,—"मुझे क्या मालूम था कि तुम इसी उमरमें बूढ़े हो गये हो? मैंने अपने बत्तीस वर्षके हृदयको अभी तक इतना सबल बनाये रक्खा है और तुम तो मुझसे उमरमें दो-एक वर्ष छोटे ही होगे, तोभी मेरे दादाके हृदयको मात कर रहे हो, यह तुम्हारी बहादुरी है!"

अमर—"उमरसे क्या होता है, भाई? मनुष्यका मन ही बूढ़ा होता है, मन ही जवान होता है।"

देवेन्द्रने बनावटी गम्भीरताके साथ कहा—"तुम्हारे मनमें घुन लगनेका भी तो कोई कारण नहीं है। बड़े आदमीके लड़के हो, दूध-घी खानेको पाते हो, उपन्यास-वर्णित हृदयमे भी कोई खुटाई नहीं है। फिर घुन क्योंकर लग गया? यदि हमजैसोंके

मनमें घुन लगे, तो सम्भव भी है; क्योंकि दूसरोंको गुलामी करते-करते कमर टेढ़ी हुई जाती है, भर पेट खाना नहीं मिलनेसे पेट पीठमें सट गया है और सर्दीमें पैदल चलते-चलते वात-श्लेषका प्रकोप हो रहा है।"

अमरने बात काटकर कहा—"तुम लोग ऐसा ही सोचते हो कि ज़मींदारोंके लड़कोंको बड़ा आराम है; पर जब अपने सिरपर बोझ आ पड़ता है, तब उस आरामका सूद समेत बदला वसूल होने लगता है। यह भी कोई जीवन है? न काममें किसी प्रकारकी मोहिनी शक्ति है, न पूरा-पूरा उत्साह है, न कोई मूल-तत्व है। सब काम योंही एकसे चलते रहते हैं—जो होता है वह होता है। फिर भी गधेकी तरह मिहनत करनी पड़ती है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि अगले जन्ममें मैं तुम्हीं लोगोंकी अवस्थामें रहूं। मेरी तो कभी-कभी यही इच्छा होती है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर कहीं चला जाऊं।"

देवेन्द्र—"तुमने जो कुछ कहा है, वह कुछ सच है, कुछ झूठ। तुम ज़मींदार हो, चाहो तो दुनियांका कितना काम कर सकते हो, कितने आदमियोंकी भलाई कर सकते हो, कितने दुःखी आदमियोंका दुःख छुड़ा सकते हो; पर जब तुम्हारे दर-वान और बूढ़े-बूढ़े कर्मचारी तुम्हें सलाम करते हैं, तब मुझे मालूम होता है कि सचमुच यह भी एक तरहका कर्मभोग ही है और जब लोग 'महाराज! महाराज' कहकर पुकारने लगते हैं, तब तो मुझे बड़ी ही हंसी आती है।"

अमर—"देवेन्द्र! तुम्हें तो अभीतक हंसी आती है; पर मेरी हंसी तो कबकी गायब हो गयी। और तुमने जो अच्छे-अच्छे काम करनेको कहा है सो वैसा करनेको मेरा मन तो कितनी दफे हुआ; पर फिर मैं यह सोचने लगता हूं कि मेरी इस मामूली सहायतासे ही क्या संसारभरके अनाथोंकी रक्षा हो जायेगी? एक आदमी कितने आदमियोंका उपकार कर सकता है? जब भगवान् सबकी सुध लेते हैं, तब इन बेचारोंकी भी लेंगे। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह केवल कर्म-भोग-मात्र है।"

दोनों ही मित्र फिर टहलने लगे। सहसा देवेन्द्रने रुककर कहा-"अमर! देखो, कुछ और न सोचने लगना। मैं तुमसे दो-तीन बातें पूछना चाहता हूं। यदि तुम मुझे फिर पहलेका-सा अधिकार दो तो अलबत्ता साहस करके—"बात काटकर अमरने हंसते हुए कहा—"यह सब भूमिका छोड़ो, असल बात कह सुनाओ।"

"मैं तुम्हारे ही घरकी बातें कहना चाहता हूं।"

"कहो न, तुमसे मेरे घरकी कौनसी बात छिपी हुई है?"

देवेन्द्रने चेष्टा करके अपने मनसे सङ्कोचको दूर हटाते हुए कहा—"क्या तुम्हें याद है, तुम्हारी पहली शादीकी बात मुझे नहीं मालूम होनेके कारण मैं कितनी बड़ी गलती कर बैठा। अन्तमें मैंने तुम्हारी बातके भावसे यह ताड़ लिया कि तुम उस शादीसे सन्तुष्ट नहीं थे और मेरे सामने अपनेको अपराधी समझते थे, इसीसे तुमने मुझसे वह बात नहीं कही। यद्यपि मैंने उस समय

चारुकी माताको प्रलोभन नहीं दिया था। तथापि तुम ऐसा ही समझते थे। इसके बाद जब चारुके साथ विवाह कर लेनेके बाद तुमने मेरे साथ एकबारगी नाता तोड़ दिया, तब मैंने सोचा कि तुम ख़ूब लुब्से हो। क्यों; मेरा अनुमान ठीक था न?"

अमरने लम्बी सांस ली। देवेन्द्रने आज उसकी स्मृतिके सागरके जलदेशको आन्दोलित कर दिया। उसे कितनी बातें याद आने लगी, इसका ठिकाना नहीं। केवल ऊपरके मनसे उसने कहा—"प्रिय देवेन्द्र! उस समय मैंने क्यों सभी बन्धु-बान्धवोंका साथ छोड़ दिया था, वह क्या बतलाऊं? पिताका त्याज्य पुत्र होकर इस संसारमें कौन किसीके सामने मुंह दिखला सकता है? इसके बाद जब दो साल बीतनेपर पिताने मुझे क्षमा किया और क्षमा करके ही मुझे इस भंवर-जालसे भरे हुए संसार-समुद्रमें असहाय छोड़कर चल बसे, तबसे लेकर आजतक मेरे जीवनमें कितने उलट-फेर हुए, मैं कितनी बार ऊपर चढ़कर नीचे गिरा और पटखने खाये, वह तुम्हें कहांतक बतलाऊं? उस भंवरमें पड़कर यदि मैं अपनेको भूल सकता तो अवश्य अपने आपको भी भूल जाता।"

थोड़ी देर सोच-विचार करनेके बाद देवेन्द्रने एक लम्बी सांस लेकर कहा "मैं क्या बतलाऊं कि किसका दोष है? मेरा, तुम्हारा या भाग्यका। नहीं तो आज ऐसी घटना क्योंकर होती? दो सौतिनोंवाले घरमें कभी किसीको सुख नहीं होता।"

अमर मुस्कुरा दिया। उसके गाल और कान लाल हो आये।

उसने कहा—"नहीं देवेन्द्र! यह बात यहां बिलकुल ही नहीं है।'

झुंझलाकर देवेन्द्रने कहा—"फिर तुम्हें संसारसे इतना वैराग्य क्यों हो रहा है? चारुको तो हमलोग बचपनसे ही जानते हैं। वह एक बात तो ठीक-ठिकानेसे बोल ही नहीं सकती। उससे किसीको कष्ट हो ही नहीं सकता। और वे भी तो बड़े घरकी लड़की हैं!"

अमर फिर हंस पडा, बोला —"किसकी बात कह रहे हो? घरमे सिवा चारुके आजकल और कोई नहीं है।"

देवेन्द्रने विस्मयके साथ कहा—"क्यों, तुम्हारी पहली स्त्री कहां गयीं?"

अमर—"पीहर गयी है।"

देवेन्द्र बड़े अचम्भेमें पड़ा, बोला—"पीहर? किस लिये? सौतका डाह नही सहा गया होगा। वे वहां कबसे गयी हुई हैं?"

अमर—"सालभरसे अधिक ही हुआ।"

देवेन्द्र—"उसके पहले तो यहीं थीं?"

अमर—"हां।"

देवेन्द्र—"इतने दिनोंमें भी तुम लोगोंसे उनकी पटरी न बैठी?"

अमरने सिर झुकाये हुए कहा—"नही।"

देवेन्द्रने तनिक अप्रसन्न होकर कहा—"तुम लोगोंको उनके साथ अच्छा व्यवहार करना उचित था। चारुको मैं अपनी बहन-की तरह मानता हूं—उसी अधिकारसे मैं कहता हूं कि चारुको यह बात विचारकर चलना चाहिये था।"

अमर—"देवेन्द्र! इसमें चारुका कोई अपराध नहीं है। अगर पटरी नहीं बैठनेके लिये किसीको दोष दिया जा सकता है, तो वह—मैं हूं।"

देवेन्द्रने भौंहें सिकोड़कर कहा—"छिः। आप! यह तो बड़े अन्यायकी बात है। ईश्वरने मुझे भी इस पापका हिस्सेदार बनाया। मालूम होता है वे इसीलिये अभिमानके मारे यहांसे चली गयीं।"

अबकी अमरने बात काटकर कहा—"देवेन्द्र! अभिमान किस चिड़ियाका नाम है? वे अभिमानसे नहीं—घृणासे चली गयी हैं।"

मनका दुःख प्रकट करनेवाली हंसी हंसकर देवेन्द्रने कहा "क्या स्त्रियां स्वामीपर केवल घृणा ही करती हैं? उसमें अधिक भाग अभिमानका ही होता है।"

अमर—"कैसा स्वामी? जिसने स्वामीका अधिकार खो दिया वह भला स्वामी कैसा है?"

देवेन्द्रने दुःखित भावसे सिर हिलाकर अविश्वास प्रकट करते हुए कहा—"वाह! यह भी कोई पानीपरका चिह्न थोड़े है? यह तो ईश्वर-दत्त बन्धन है। इसे कौन तोड़ सकता है?"

अमर—"देवेन्द्र! अब उन बातोंसे कोई मतलब नहीं है। पानीपरका चिह्न नहीं, पत्थरपरकाही दाग़ समझो, पर पत्थरपर दाग़ करनेके लिये तेज़ हथियारके साथ-साथ चतुर कारीगर भी चाहिये। परन्तु उस पत्थरपर कोई चिह्न अङ्कित करनेके पहले

ही यदि वह तोड़-फोड़कर फेंक दिया जाय तो फिर उसे जोड़-कर कोई उसपर शिल्प-कार्य थोड़े ही कर सकता है ?"

देवेन्द्र—"नहा; पर पहले यह भी तो देख लेना चाहिये कि वह पत्थर टूट ही गया या साबित बचा है।"

अमर—"अब इस जन्ममें तो इस बातकी जांच होती नहीं दिखाई देती, अगले जन्मके लिये बाक़ी रखे देता हूं। अब तो इस जीवनको तुम लोग किसी तरह गोलमालमें ही बीत जाने दो। कल शिकार खेलने चलोगे ?"

देवेन्द्र—" शिकार? तुम यह क्या कह रहे हो? भला मैं इस लटकते हुए मांसवाले, क्षीण-दृष्टि, यौवनमें ही वृद्धके साथ शिकार खेलने जाऊंगा ? तुम बन्दूक़ उठा सकोगे ?"

अमरने हंसकर कहा—"कोशिश करनेसे।"

—०—

छब्बीसवां परिच्छेद

सैरका प्रस्ताव

घने पत्तोंवाले आम, कटहल, पीपल और बड़के पेड़ोंकी घनी छायासे स्थान दिन-दोपहरके समय भी अंधेरा और शीतकी प्रबलताके कारण बर्फ़की तरह ठंढा मालूम होता है। वृक्षोंके बीचसे छन-छनकर आनेवाली सूर्य्य-किरणें उस जङ्गलमें जो थोड़ा-बहुत प्रकाश पहुंचाती हैं, वह भी रोगीके मुखड़ेपरकी फ़ीकी हंसी-सी मालूम होती है। जाड़ेसे कांपते हुए पक्षी

शायद धूप खानेके लिये इधर-उधर चले गये हैं, इसीसे उस जगह पूरा सन्नाटा छाया हुआ है। केवल बीच-बीचमें झिल्ली आदिकी झनकार और कहीं-कहीं पके हुए वांसोंकी कुञ्जका आर्त्त मर्मररव सुनाई देता है। इसी सुनसान जङ्गल अथवा बहुत दिनोंसे मनुष्योंद्वारा त्यागे हुए उद्यानको सचकित और शब्दित करते हुए अमरनाथ और उसके मित्र, दोनों शिकार खेलने आये हैं। दोनोंके पास एक-एक बन्दूक और टोटे आदि सामान हैं। वे पासमें जलपानकी सामग्री और पानीकी बोतल भी रखे हुए हैं; पर दोनोंमेंसे किसीके पास कोई शिकार नहीं नज़र आता। दोनों इसी विषयमें बातें कर रहे हैं। अमर कोई शिकार न पानेके कारण देवेन्द्रकी हंसी उड़ा रहा है। देवेन्द्र उसके उत्तरमें कहने लगा—"भाई! इन घरेलू चिड़ियोंको मारनेको तो जी नहीं चाहता। हमारे देशमें तो शिकार खेलनेकी इच्छा करना ही बुरा है। पहाड़पर पहाड़ी पक्षियोंको देखते ही क्रोध-सा होता है। ऐसा मग्लूम होता है कि कहीं किसी दिन वे मनुष्यसे भी ऊंची श्रेणीवाले न हो जायं, इसलिये उन्हें मार ही डालना चाहिये। फिर वे होशियार इतने होते हैं कि पृथ्वीके लोगोंको सदा सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं। उनके तो झुण्डके-झुण्ड मार डालनेपर भी गुस्सा ठंढा नहीं होता। और हमारे यहाके नहर या नदीके किनारे या बांसका झाड़ियोंमें रहनेवाले इन निर्बोध और छोटे-छोटे सरल पक्षियोंको तो कभी मारनेको जी ही नहीं चाहता।"

अमरने हंसते हुए कहा—"पहलेकी बात याद करके देखो कि आजसे आठ-नौ वर्ष पहले तुम्हारी क्या हालत थी ?"

देवेन्द्र—"अरे भाई ! घरमें बैठे रहनेसे घरका मोल नहीं मालूम पड़ता। जब आदमी विदेशमें जाता है, तभी उसकी मधुरता मालूम होती है। प्रचण्ड-मार्त्तण्ड-तापित, धूलि-कङ्कर-मय, वृक्ष-लता-शून्य पश्चिमी नगरोंमें जो नहीं रह आया, वह इन घने पल्लवोंवाले आम्रकाननों, छोटी-छोटी स्वच्छ जलवाली तलैयोंकी महिमा क्या समझेगा ? उसे क्या मालूम कि घनी छहियोंवाले छोटे-छोटे गावोंमें कितनी मधुरता छिपी हुई है। आजसे आठ वर्ष पहले मैं जेसा था, उसे याद करके मुझे शर्म आती है; परन्तु भाई ! तुम भी तो एक वार अपने शिकारोंका फल सोच लो कि क्या हुआ ?"

अमरने मीठी हंसी हंसकर कहा—"भला वह कभी भूलनेकी बात है ?"

"भाई ! सच कहा है कि भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्। हम दोनों ही शिकार खेलने चले थे। मैं विद्या या पौरुषमें तुमसे कुछ कम नहीं था; तोभी भाग्यने कैसा पक्षपात किया, इसे तुम्हीं सोच देखो।"

"भाग्य-देवीने तुम्हें वरमाला पहनानेमें कृपणता तो नहीं की थी। भैया बने ही हुए थे, इच्छा करते तो और भी भाग्य-वान् बन जाते।"

देवेन्द्रने बन्दूक अमरके सिरपर तानकर कहा—"चुप रहो, बेहया कहींके ! फिर दिल्लगी करने लगे ?"

इसपर दोनों ही बड़े ज़ोरसे हंसने लगे।

बातें करते-करते दोनों नदीके किनारे आ पहुंचे। शीतकालकी नदी बहुत दूर खिसककर चली गयी है, केवल दूरतक फैली हुई बालूकाभूमि सूर्यकी किरणोंसे चमक रही है। बड़ी दूरपर फूले हुए राई-सरसोंके खेत कमलाके सुहावने अंचलकी तरह शोभा दिखा रहे थे। नदीके अल्प जलमें छोटे-छोटे पक्षी मीठी बोलियां बोलते हुए नहाते और उड़-उड़कर फिर पानीपर आ बैठते थे। दोनों मित्र एक टूटे हुए वृक्षके तनेपर बैठकर बड़ी देरतक काव्यालोचना करते हुए उस दृश्यका आनन्द लेते रहे। क्रमसे दिन ढल चला। शीतकालकी निस्तेज धूप नदीके थोड़ेसे जलमें कुछ देरतक क्रीड़ा करनेके बाद क्रमशः तीरपर, फिर तीरसे बालूके मैदानपर, वहांसे वृक्षोंकी फुनगियोंपर पहुंचकर अदृश्य होने लगी। सायंकालका आकाश लाल रङ्गमें रंग गया। यह देख पक्षी अपने-अपने घोंसलोंमें चले आये। नदीके उस पारवाले ग्रामकी गौएं धीरे-धीरे घरको लौटीं।

देवेन्द्रने कहा—"अमर! अब घर चलो।"

अमरने कहा—"घर तो चलना ही होगा; पर सन्ध्याका समय तो यहीं बिताओ।"

देवेन्द्र—"नहीं, नहीं, घर चलो।"

जाते-जाते देवेन्द्रने गाना शुरू किया—

"साझ भई घर ना आये मोहन।

सूर्य-किरण हो गयी अस्त सब त्रस्त

पक्षि घर आये।

गौएँ चरकर घर फिर आयीं,
तुम कहँ विलम्ब लगाये।"

अमरने देवेन्द्रकी पीठ ठोकते हुए कहा—"वाह भाई, वाह ! यह मज़ा तो बहुत दिन बाद आया है। कान और प्राण दोनों ही सुखी हो गये।"

दोनों ही नावपर सवार हो इस पार चले आये और घरकी ओर आने लगे। उस समय सन्ध्याकी अंधियारीसे सब जल-थल एक हो रहे थे। रास्तेमें सन्ध्याकी अंधियारी फैली हुई थी। ज़मींदारके मकानमें अभी-अभी चिराग़ जलाये गये हैं ? देवेन्द्र बाहर बैठकख़ानेमें आराम करने लगा। अमर घरके अन्दर चला आया। वहां पहुंचकर उसने देखा कि चारुको तो बड़े ज़ोरका बुख़ार आ गया है। लड़की दाईकी गोदमें पड़ी रो रही है। अतुल भी महा विपद्में पड़ा हुआ इधर-उधर भटक रहा है। पिताको देखते ही वह दौड़ा हुआ चला आया। अमर जाकर चारुके पास बैठ रहा। चारु उस समय बड़े ज़ोरका बुख़ार होनेके कारण, बेतरह कांप रही थी। अमरने पूछा—"चारु! तुम्हें इस बार फिर क्यों ज्वर हुआ ?"

कई दिन बाद चारुकी तबीयत ज़रा अच्छी हुई; पर कम-ज़ोरी तो दूर होनेका नाम ही नहीं लेती थी। अमरने कुछ सोच-विचार कर कहा—"चलो, मैं तुम्हें पश्चिमकी सैर करा लाऊं। नहीं तो तुम्हारी तबीयत जल्दी अच्छी होती नहीं दिखाई देती।" चारुने बड़े आनन्दसे यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

सताईसवां परिच्छेद

खोज

पश्चिमकी यात्राकी तैयारी होने लगी। यह निश्चय हो गया कि देवेन्द्र भी साथ जायेगा। उनके परिवारमें एक आदमी और बढ़ गया था। अमरकी समझमें नही आता था कि उसके विषयमे क्या किया जाये? वह थी बालिका मन्दाकिनी। उसे बुलाकर अमरने पूछा—"मन्दाकिनी! हमलोग पश्चिम जा रहे हैं, तू अकेली घरपर रह सकेगी?"

मन्दाकिनीने मृदुस्वरसे कहा—"हां।"

"अकेलेमें जी तो नहीं घबरायेगा?"

"नहीं।"

"मैं सब इन्तज़ाम करके जाऊंगा। तुझे कोई कष्ट नहीं होने पायेगा।"

"अच्छा।"

परन्तु यात्राके समय अतुलने बड़ा शोर-गुल मचाया। वह अपनी जीजीको छोड़कर जानेको किसी तरह तैयार नहीं हुआ। चारु बहुत घबरायी। मन्दाकिनीने अतुलको कितना दुलारा-पुचकारा, पर वह माननेवाला लड़का नहीं था। लाचार, अमरने कहा—"अच्छा, मन्दाकिनी! तु भी साथ ही चल। देखता

हूं, अतुल तुझे छोड़कर नहीं जाना चाहता।" अमर, चारु और देवेन्द्रके साथ मन्दाकिनीने भी पश्चिमकी यात्रा की।

पहले गया, फिर क्रमसे प्रयाग, आगरा, वृन्दावन, मथुरा, जयपुर आदि स्थानोंकी सैर हुई। महीने-डेढ़-महीने बाद सब-लोग काशी आ पहुंचे। पण्डों, गङ्गापुत्रों और यात्रियोंकी दोनको आ जानेवाले उनके नौकरोंको घूंसा दिखाकर देवेन्द्रने उनसे अपना पिण्ड छुड़ाया और दुर्गाजीके पास ही एक बढ़िया-सा मकान किरायेपर ले लिया। कुछ दिन काशीमें रहना ही निश्चित हुआ।

उस दिन निर्मल सूर्य-किरणोंसे नहायी हुई बड़ी-बड़ी अटारियोंवाली नगरी दूरपर हंसती हुई मालूम होती थी। कई दिनकी बादल-बूंदीके बाद आज थकी-मांदी प्रकृति मानों चैनकी सांस ले रही है। मानों चारों ओर हास्य-उल्लासके झरनेसे झर रहे हैं। अमरने कहा—"चलो, आज विश्वनाथ-जीकी आरती देखने चलें।" चारु भी जाना चाहती थी; पर गोदकी लड़कीकी तबीयत कुछ ख़राब थी, इसीसे नहीं जा सकी। दोनों मित्र ही बाहर निकले।

रास्तेमें बड़ा कीचड़ हो रहा था। देवेन्द्र तो गिरते-गिरते बचा। यह देख, अमरने हंसकर कहा—"यार! देखता हूं, तुम काशीमें आकर हाथों-हाथ मुक्ति लेना चाहते हो!"

ख़ैर, किसी-किसी तरह काशीकी कीचड़भरी गलियोंकी निन्दा करते हुए दोनों जने अन्नपूर्णाके मन्दिरके पास पहुंचे। वहां उन्हें

मालूम हुआ कि अभी विश्वनाथजीकी दोपहरकी आरतीमें देर है। देवेन्द्रने कहा—"चलो, तबतक अन्नपूर्णाकी ही गृहस्थी देखी जाये। अभी बाबा विश्वनाथके पास जानेसे भीड़के मारे पिस जानेका डर है। दोनों ही मित्र कभी गौके गालपर हाथ फेरते, कभी मोरकी पूंछ पकड़कर हिलाते और कभी हरिण-का सींग पकड़नेकी चेष्टा करके उसे खिझाते। इसी तरह नाना प्रकारसे वहांके पालतू जानवरोंको प्यार करते हुए वे घूमने लगे। हां, उन्होंने उन जानवरोंको खिलानेमें भी क़सर नहीं की। बड़े बड़े सांड़ोंको बालककी तरह प्यार और आहार ग्रहण करनेका कौशल देख वे उनकी तारीफ़ करने लगे। सांड़ोंका सीधापन और मोरोंका निडरपन देख देवेन्द्रने कहा—"यार! देखना, नन्दी भाई कहीं सींग न चला दें।"

अमरने हंसकर कहा—"सङ्ग-दोषसे जो न हो जाये!"

सहसा देवेन्द्रने अमरको पुकारकर कहा—"अरे यार! वह देखो, क्या मामला है?"

दोनोंने देखा कि पण्डे, उनके नौकर-चाकर और असंख्य भिखमङ्गे एक मोटेताजे और लम्बी तोंदवाले आदमीको चारों ओरसे घेरे हुए हैं और बहुतेरे लोग यह तमाशा देखनेके लिये इकट्ठे हो रहे हैं, इसलिये भीड़ क्रमशः बढ़ती ही जाती है। वह आदमी पैसेवाला मालूम होता था, क्योंकि उसके साथ कई लठैत जवान भी थे; पर स्वामीका उद्धार करनेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। चारों ओरसे बिना मांगे आशीर्वादोंकी वर्षा करनेवाले हाथ
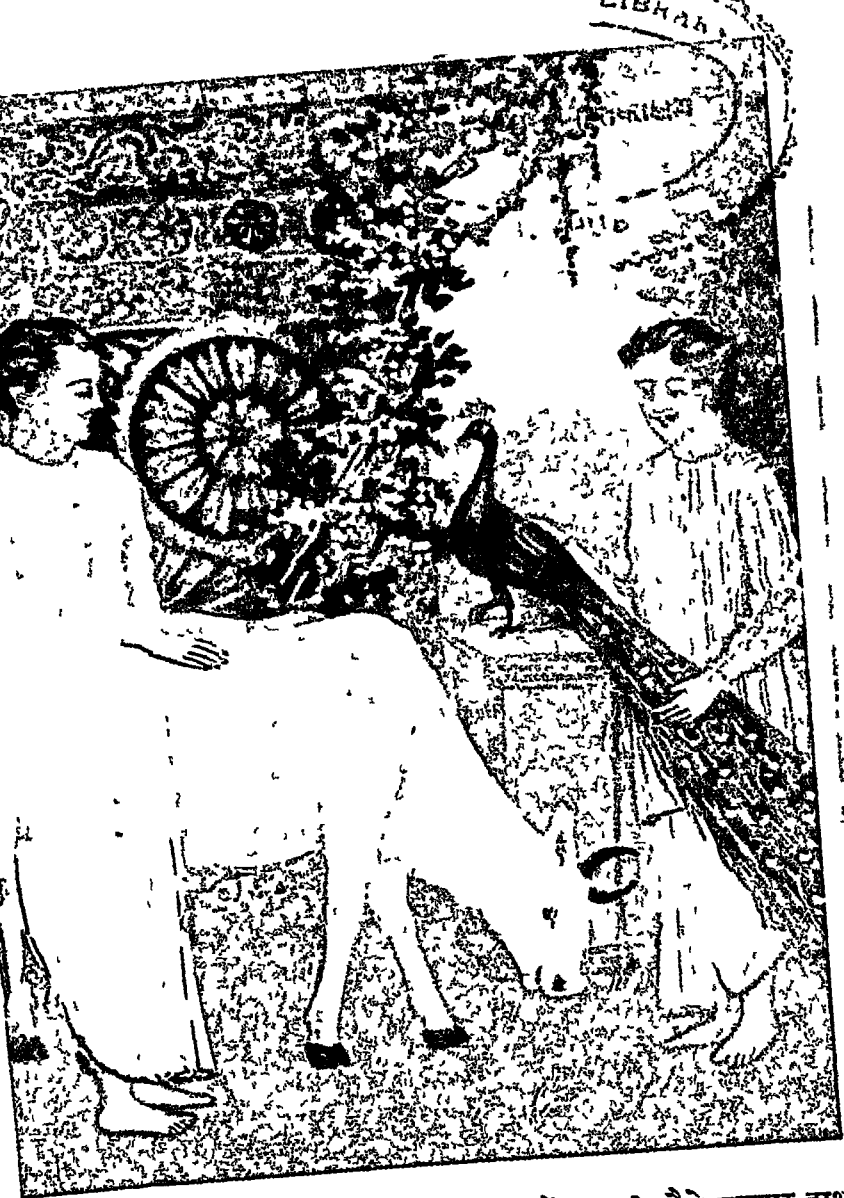
दोनों मित्र अन्नपूर्णाको गृहस्थी देख रहे हैं। कभी गौके गालपर हाथ फेरते, कभी मोरकी पूंछ पकडकर हिलाते-खिझाते हैं। (? ३१०?)

उसके केशहीन मस्तकपर पड़कर मानों रहे-सहे बाल भी नोच लेना चाहते थे। देवेन्द्रने कहा—"चलो, यार! ज़रा हम भी उसीके पीछे-पीछे चलकर मज़ा देखते चलें।"

"अरे यार! उन सबको आगे बढ़ जाने दो। भीड़में क्यों घुसोगे?"

"चलो न, जहां मैं हूं, वहां डर काहेका है?"

"कौन जाने जो लोग उसके पासतक नहीं पहुंचने पाते, वे हमारे ही ऊपर टूट पड़ें। थोड़ा ठहर कर चलना।"

देवेन्द्र ने कहा—"यार! मुझे तो उस आदमीकी हालतपर तरस आता है। इच्छा होती है कि घूसे-थप्पड़ोंके बलपर उसका उद्धार कर डालूं।"

अमरने रोकते हुए कहा—"परदेशमें आकर इतनी मर्दानगी दिखलानेकी कोई ज़रूरत नहीं है। यहां तो पण्डोंका ही राज्य है। पर भाई, मुझे तो ऐसा मालूम होता है, मानों मैंने इस आदमी को कहीं देखा है।"

देवेन्द्रने कहा—"इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? कोई तुम्हारा भाई-बन्धु होगा। ज़मींदारी करते-करते बेचारेने तोंद तो बेतरह बढ़ा ली है। तुमने अभी इतनी तरक़्की नहीं की है। यही इतना फ़र्क़ है।"

"अच्छा, अब चलो, नहीं तो फिर जगह नहीं मिलेगी।"

"जगह बहुत मिलेगी। ज़रा जेबसे कुछ पैसे निकाल लूं।"

भारी भीड़ होनेपर भी देवेन्द्रकी चतुराईसे उन दोनोंको

मन्दिरके दरवाज़ेपर ही जगह मिल गयी। दोपहरकी आरती शुरू हो गयी थी। नौ ब्राह्मण एक स्वरसे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए, नौ वृहत् शाखाओंवाले आरती-प्रदीप लिये आरती कर रहे थे। धूप और कर्पूरके धुएंसे चारों ओर अंधेरा-सा हो रहा था। पुष्प और चन्दन आदिकी सुगन्धसे सारा स्थान सुगन्ध-मय हो रहा था। असंख्य बाजोंके एक साथ बजते रहनेसे बड़ा शोर हो रहा था—मालूम होता था, मानों एक गम्भीर उदात्त स्वरकी सृष्टि करनेके लिये ही इतने शब्दका प्रयोजन हुआ है। दोनों ओर दो पण्डे खड़े-खड़े विश्वनाथजीके ऊपर चँवर डुला रहे थे। अमरको यह सब देखकर कविकी यह उक्ति याद आ गयी:—

"रवि-चन्द्रके दीपक जलें, थाली गगन है बन रहा।
इन तारकोंकी ज्योतिसे मोती लजाकर मर रहा।
है मलय-मारुत् धूप-सम, यह पवन चँवर डुला रहा।
इन जङ्गली पुष्पोंकी डाली कौन नित्य सजा रहा?
हे विश्वनाथ! प्रकृति तुम्हारी, नित्य करती आरती।
नहिं काम बाजोंका यहां अनहदकी भेरी बाजती।"

जब सारा विश्व ही विश्वनाथके चरणोंमें निरन्तर आरती कर रहा है, तब फिर मनुष्य क्यों माने? वह भी उनकी उचित रीतिसे आरती करनेके लिये व्यग्र हो रहा है। फिर आरतीमे छोटी-बड़ीका कोई भेद थोड़े ही है?

सहसा सामने किसीपर दृष्टि पड़ते ही अमर चौंक पड़ा।

यह क्या ? यह मुखड़ा तो परिचित-सा मालूम पड़ता है। नज़र
पड़नेके साथ ही अमरने उस ओरसे नज़र फेर ली, क्योंकि उधर
औरतोंकी भीड़ बहुत थी। पर न जाने क्यों :दिलमें खटका-सा
पैदा हो गया,उसने और भी निश्चय कर लेना चाहा। पर सङ्कोच
छोड़ते न बन पड़ा। उसने विश्वनाथजीकी ओर देखा तो उन्हें
फूल और बेलके पत्तोंसे ढंका पाया। चारों ओर बड़े उत्साहसे
आरतीके बाजे बज रहे थे। बाजों और मनुष्योंके कोलाहलसे
कानोंके परदे फटे जा रहे थे। अमरनाथने धीरे-धीरे फिर
सामनेकी ओर देखा—वही सदाका परिचित मुखड़ा है! रेशमी
साड़ी पहने है, मुंहपर आधा घूंघट पड़ा है, केश खुले हुए हैं,
उनके बीचसे मुखड़ा साफ़ पहचाना जाता है। उसकी आंखें
नीचेको झुकी हुई हैं, दृष्टि एकटक आरतीपर जा लगी है, गलेमें
आंचल लपेटे हुए है, दोनों हाथ जोड़े मानों आराधनाकी साक्षात्
मूर्त्ति बनी हुई विश्वनाथके सामने खड़ी है। देवेन्द्रने अमरको
धक्का देकर कहा—"देखते हो, उस तुन्देलको यहां बैठनेके लिये
चौकी मिल गयी है, पर यहां भी कुछ पण्डे उसका पिण्ड पकड़े
हुए हैं—पीछा नहीं छोड़ते। ख़ैर, बेचारेको यहां ज़रा चैन तो
मिला, नहीं तो उसकी क्या दुर्गति हो रही थी!"

अमरने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह अब अच्छी तरह
पहचान गया था कि यह व्यक्ति कौन है। देवेन्द्रने कहा—"यार!
चलो न, हम भी उसीके पासवाली चौकीपर दख़ल जमा दें और
उसके दुःखसे हमें कितना दुःख हुआ था, यह बात उसे अच्छी

तरह समझा दें।" अमर राज़ी नहीं हुआ। देवेन्द्र उसे दिक़ करने लगा। लाचार अमरने कहा—"पास जानेका कोई काम नहीं है। यह व्यक्ति मेरा परिचित-सा मालूम पड़ता है।"

देवेन्द्र—"तो फिर डर क्या है? तुम्हें विश्वनाथजीका प्रसाद समझकर खा तो जायेगा ही नहीं?"

अमर—"इसमें आश्चर्य ही क्या है। ऐसी जगह जान-पहचान करनेका क्या काम है?"

देवेन्द्र—"अच्छा, यह तो बतला दो कि यह आदमी कौन है?"

अमर—"पीछे बतलाऊंगा।"

तबतक आरती हो ही रही थी, भीड़के मारे देवेन्द्र और अमर एकदम एक-दूसरेसे सटे जा रहे थे। देवेन्द्रको भी दृष्टि सामने दरवाज़ेकी ओर गयी। उसने मृदुस्वरसे अमरसे कहा—"यार! हम बड़ी बुरी जगह आ पड़े हैं, सामने देखनेका भी मौक़ा नहीं मिलता।" इस बातपर सहसा अमरके गालोंपर सुर्ख़ी छा गयी—उसे वहांसे खिसक पड़नेकी इच्छा होने लगी, पर कहीं देवेन्द्र कुछ सोचने न लगे, इसीसे उसे ही हटानेकी इच्छासे बोला,—"चलो न, देखो, उस चौकीपर जगह मिलती है या नहीं।"

देवेन्द्र—"तब तो मैं बेचारेके साथ पूरी सहानुभूति दिखलाता।"

अमर—"इसमें हर्ज ही क्या है? परन्तु देखना, भले आदमी-की तरह बातें करना, असभ्यता मत प्रकट करना।"

'शिव-शिव' करता हुआ देवेन्द्र भीड़को चीरता हुआ, बाहर हो गया। अमरने फिर बड़ी मुश्किलसे सामनेकी ओर देखा—वैसी ही दृष्टिसे देखा, जिस दृष्टिसे लोग परायी नारीको बड़े सङ्कोचके साथ देखते हैं—देखनेकी इच्छा भी नहीं होती और कौतूहलके मारे मन व्याकुल हुआ जाता है। अमरने देखा, वही दृश्य है। वह अनन्यचित्ता, आरतीपर ध्यान लगाये, स्थिर-धीर पाषाण-मूर्त्ति अनादि-देवताके सामने चतुर कारीगरकी गढ़ी हुई पूजा-रता मर्मर-मूर्त्तिकी भांति खड़ी है।

आरती समाप्त हो गयी। जो जनता अबतक चित्र-सी बनी हुई थी, उसने बाबा विश्वनाथको प्रणाम करनेके लिये सिर झुका दिया—साथ ही वह एकटक दृष्टि भी स्थान-च्युत होकर ऊपरको उठी। इसके बाद प्रणाम करनेके लिये झुकी; पर आधे ही रास्तेमें रुक गयी। शायद वह भी अपने किसी परिचित स्थानपर आकर अड़ गयी। अमर सहसा घूमकर खड़ा हो गया। उसने पुकारा—"देवेन्द्र!" देखा कि देवेन्द्र पीछे नहीं है—वह थोड़ी दूरपर भीड़को ठेलठालकर आगे बढ़नेकी चेष्टा कर रहा है। अमरको उधर ही देखते देखकर देवेन्द्रने हाथके इशारेसे उसे बुलाया। अमर ज्योंही आगे बढ़ने लगा, त्योंही उसे स्मरण हुआ कि उसने देवताको तो प्रणाम किया ही नहीं। उसने थोड़ा पीछे फिरकर दोनों हाथ जोड़े हुए देवताको प्रणाम किया। इतनेमें मुद्रा पाकर प्रसन्न हुए पण्डेने उसके गलेमें गेंदेके फूलोंकी माला पहना दी। यह अयाचित अनुग्रह

किसका है—देवताका या पण्डाजीका,—यह समझमें नहीं आया। उसने हंसकर एक बार फिर देवताके सामने सिर झुकाया। दो-एक आदमियोंको ठेलकर दो-तीन पग पीछे जाकर उसने एक बार फिर सामनेकी ओर देखा। सामने बहुत-सी स्त्रियां खड़ी थीं, पर कोई परिचित नहीं मालूम पड़ती—यह देख उसने सोचा कि कहीं मैं भ्रममें तो नहीं पड़ा; परन्तु तुरत ही पण्डा-राहुसे घिरे हुए उस तोंदवाले शरीरको देखते ही उसने सोचा कि बात ठीक है, भ्रम नहीं है।

देवेन्द्रने कहा—"यार! यह आदमी तो बड़ा बेढब है। मैंने बड़े ही विनय-भरे वचनोंसे उसकी तोंदकी तारीफ़ करते हुए उससे जान-पहचान कर लेनी चाही,पर उसने तो मुझे पास भी नहीं फटकने दिया—पण्डे और भिखारियोंके ही शोरगुलमें मस्त रहा। बड़ा बेढब आदमी है। कौन है, यार?"

"सुनकर क्या करोगे?"

"करना क्या है? जाननेका कौतूहल हो रहा है। भला जिसे इस तोंदका परिचय नहीं मिला, उसका तो जीवन ही व्यर्थ चला जायेगा।"

अमरने हंसते हुए कहा—"यार! तुम इतनी बढ़-चढ़कर बातें कर रहे हो; पर कहीं वे नातेमें अपनेसे बड़े हुए तो फिर पछताओगे।"

"बड़े! बाप रे बाप! मैं तो एकदम डर गया। कहीं कोई नज़दीकी नाता है क्या?"

"नज़दीकी नहीं भी हो सकता है।"

"फिर भी ज़रा सुनूं तो सही।"

"लोग कहते हैं कि वे मेरे ससुर लगते हैं।"

"अरे यार! तुम यह क्या कह रहे हो?"

अमर चुप हो रहा। देवेन्द्रने कहा—"यार! तुमने पहले ही क्यों नहीं कह दिया? धत् तेरीकी।"

"इसीसे तो कहता हूं कि चुप रहो।"

"तुमने तो मेरी अक़्ल ही गुम कर दी।"

"अक़्ल गुम करनेका काम नहीं है। चलो, यहांसे भाग चल।"

"चलो। हां, भीड़में मैंने कितनी ही स्त्रियोंको भी देखा। ख़ैरियत हुई जो मैंने उनमेंसे किसीको कुछ नहीं कहा, नहीं तो कोई उनमें भी नातेदार और नातेदारीमें भी बड़ी-बूढ़ी निकल आती, तो मुश्किल होती।"

अमरने देवेन्द्रको पीठपर एक घूंसा जमाकर कहा—"उनको मरे एक ज़माना हो गया।"

"तब हो सकता है कि ससुरजीको लड़की ही आयी हों। सुना है कि वे अपने बापकी इकलौती लड़की हैं।"

"हां।"

"हां क्या? वे बापकी इकलौती लड़की हैं, इसपर तुमने हामी भरी है या इस बातपर कि वे भी इसी भीड़में हैं?"

"दोनों ही बातोंपर।"

"अमर! तुम यह क्या कह रहे हो? तुमने देखा है क्या?"

अमर चुप हो रहा। बहुतसा रास्ता तै करनेके बाद सहसा देवेन्द्रने कहा—"यार! मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुमने मुझे सब बातें अभीतक नहीं बतलायीं।"

"इसमें कहने-सुननेकी क्या बात है?"

"है—ज़रूर है।"

"कुछ भी नहीं।"

"यार! तुम कहते हो कि यह गार्हस्थ्य-चित्र है; पर मुझे तो यह ख़ासा Romantic Novel (काल्पनिक उपन्यास) मालूम पड़ता है।"

अमरने बड़े ज़ोरसे हंसकर कहा—"तब समझ लो कि यह एक प्रहसन-मात्र है।"

देवेन्द्र—"तुम बड़े छलिया हो। तुम्हारे लिये जो प्रहसन है, वह मेरे लिये एक बहुत बड़ा काव्य है। समझे? यह सारा जीवन—कोई कहता है कि कामेडी (संयोगान्त-काव्य) है और कोई कहता है कि ट्रेजिडी (दुःखान्त-काव्य) है। बस, इतना ही फ़र्क़ है। फिर तुम इसे प्रहसन क्यों कहते हो?"

अमर—"इस जीवनको जो काव्य कहता है, वह बड़ा भारी मूर्ख है। यह काव्य, नाटक या उपन्यास नहीं है। अवश्य ही प्रहसन कहा जा सकता है।"

दोनोंने घर आकर देखा कि चारु अभिमान किये बैठी है। चारुने कहा—"बच्चोंको बुख़ार—बुख़ार तो आया नहीं, योंही

मुझे साथ नहीं ले जानेका एक बहाना था।" उन लोगोंने, जानेमें कितनी असुविधा थी, यह सब बतलाते हुए कितना समझाया; पर समझानेसे चारुका दुःख और बढ़ता ही गया। अन्तमे फिर किसी दिन ले चलनेकी प्रतिज्ञा करनेपर ही उसका गुस्सा ठण्ढा हुआ।

भोजन आदि कर लेनेपर अमर जब सोने आया, तब चारु उसके पास आ बैठी। उसने पूछा—"आरती कैसी हुई?"

"ख़ूब अच्छी।"

"सन्ध्याकी आरती तो और अच्छी मालूम होती होगी?"

"होती होगी।"

"तो मुझे किसी दिन सांझको ही ले चलियेगा। ले चलियेगा न?"

"हां।"

"इस समयकी आरती भी बड़े ठाटकी थी, क्यों?"

"हां।"

चारु झल्ला उठी। बोली—"यह क्या बात है? आपको क्या हो गया है?"

"नींद आ रही है।"

"दोपहरमें नींद आती है? वाह! हाथमें कोई किताब भी नहीं दीखती। क्या सचमुच नींद आ रही है?"

"ऐसा ही तो मालूम होता है।"

चारुने तकियेपर कोहनी रखकर झुके हुए स्वामीके ललाट-

पर अपना कोमल हाथ फेरते हुए कहा—"अच्छा,तो सो रहिये।"
अमरने आंखें मूंद लीं।

प्रायः आध घण्टे बाद स्वामीको सोया हुआ जानकर चारु चुपचाप उठ खड़ी हुई। बस, झटसे अमरने आंखें खोल दीं। चारु तुरत उलटे पांवों लौट पड़ी और हंसकर बोली—"बस, यही नींद आ रही थी।"

अमर भी हंसने लगा। बोला—"नहीं नींद आती तो क्या करूं।"

"तो किसने ज़बरदस्ती सोनेको कहा था?"

"नींदको नहीं बुलाता, तो तुम इतनी देर बैठती कैसे? कभी-की भाग जाती।"

"मुझे तो अबतक नींद आ गयी होती।"

"तुम ऐसी निश्चिन्त हो, यही देखकर तो मुझे तुम्हारे ऊपर डाह होता है।"

"तो आपको ऐसी चिन्ता काहेकी है।"

अमर हंसने लगा। चारुने आग्रहसे कहा—"क्यों, हंसे क्यों? अच्छा, आपको इतनी चिन्ता काहेकी है सो बतलाइये। केवल बड़ी चिन्ता है, बड़ी चिन्ता है, कहनेसे ही तो काम नहीं चलेगा?"

अमरने हंसकर कहा—"यह बात तुमसे कौन कहता है?"

"आपही तो कह रहे हैं।"

"अच्छा, तो बड़ा बेजा हुआ। चारु! मैं सच कहता हूं,

मुझसा सुखी आदमी शायद ही कोई और होगा। मैं भला काहेको चिन्ता करने लगा ?"

"मुझे तो यह भी नहीं मालूम होता कि आपको काहेकी चिन्ता है; परन्तु आज मुझे ऐसा मालूम होता है कि आप किसी सोचमें पड़े हैं।"

अमरने ज़रा चौंककर कहा—"यह तुमसे किसने कहा ? मैं काहेको सोच करूंगा, तुम्हीं बतलाओ।"

"आप नहीं बतलायेंगे, तो मैं कैसे बतलाऊं ? आपकी बातों-से ही मालूम होता है कि आप किसी सोचमें हैं। आप जब उसे छिपानेकी चेष्टा करते हैं, तभी वह बात प्रकट हो जाती है। बोलिये, क्या हुआ है ?"

अमरने देखा कि यह अन्याय हो रहा है, क्योंकि सम्भव है, यह बात पीछे चारुको मालूम हो जाये; तो फिर यह सोचेगी कि इसे छिपानेकी स्वामीको क्या ज़रूरत थी ? और भी न जाने क्या-क्या सोचेगी। अमरने कम्पित कण्ठसे कहा—"और कोई बात नहीं है। आज मैंने मन्दिरमें दो-एक परिचित आदमियोंको देखा है।"

"कौनसे परिचित आदमियोंको देखा है।"

"कालीगञ्जके ज़मींदारको।"

"अच्छा, आपने पिताजीको देखा है ? राम-राम ! ऐसी बात कर रहे हैं, मानों उनसे आपका कोई नाता ही नहीं है। उन्होंने आपको देखा या नहीं ? और उनके साथ कौन-कौन हैं ? जीजी आयी हैं या नहीं ?"

"सम्भव है, कि हो।"

"सम्भव क्या? निश्चय नहीं कह सकते? आपने उनको नहीं देखा?"

अमरने गला साफ़ करते हुए कहा—"देखा है।"

"फिर? आप इतना छिपाते हैं? अच्छा, उमारानी भी आयी है? प्रकाश भी आया है?"

"और किसीको मैंने नहीं देखा।"

"उन लोगोंने आपको नहीं देखा?"

"नहीं।"

"तब कैसे उनसे देखादेखी होगी? किस तरह जीजीको यह सम्वाद दिया जाये कि हमलोग भी यहीं हैं?"

"देखा जायगा।"

"सो नहीं होगा। आपको मेरे सिरकी क़सम है, कोई तरकीब लड़ाइये। बोलिये, कोई उपाय करेंगे या नहीं?"

"अच्छा करूंगा।"

"आपको मेरी क़सम है।"

"अच्छा।"

इसके बाद दो-तीन दिन बीत गये। चारुकी उतावली देख, अमर उसे सच-झूठ कह-कहकर फुसलाने लगा। वह कहता—"कहीं पता ही नहीं चलता तो क्या करूं?"

तब चारुने एक तरकीब सोची। उसने देवेन्द्र भैयाकी शरण ली। बोली कि उन लोगोंको खोजो। अमरकी शिकायत

करनेसे भी बाज़ न आई। कर्त्तव्य समझकर देवेन्द्र उसी दिन विश्वनाथके मन्दिरकी ओर चला। उसने सोचा कि जिन पण्डाजी महाराजने अमरके ससुरको चौकी दिलवायी थी, उन्हींसे पूछूँगा।

अट्ठाईसवां परिच्छेद

प्रायश्चित्त

सुरमा बड़े अचम्भेमें पड़ी और घबरायी हुई मन्दिरके आंगनमें उतर आयी। इसके बाद वह पिताके साथ बहुतसे लोगोंके बीचसे होकर डेरेकी तरफ़ जाने लगी। उमा उसके पीछे-पीछे जा रही थी। उस समय सुरमाको किसीसे कुछ कहने या पूछनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। विस्मयकी तो कोई बात नहीं थी, तोभी इस तरहका एक अप्रत्याशित व्यापार होनेसे वह अकचका गयी थी। वह जब अन्नपूर्णाके मन्दिरमें पहुंचकर देवीको प्रणाम करने लगी, तब उसे इस बातका स्मरण हुआ कि उसने विश्वनाथको प्रणाम ही नहीं किया। वह आज हृदयके समस्त श्रेष्ठ द्रव्योंको विश्वेश्वरके चरणोंमें समर्पण कर एकान्तनिर्भरताके साथ भक्ति-भरे चित्तसे उन्हें प्रणाम करने गयी थी; किन्तु उसी समय एक ओर आदमीको देखकर उसका वह आत्मसमर्पणकारी भक्तिव्याकुल

हृदय सहसा विस्मयसे स्तम्भित हो गया। शायद वह यथा-स्थानमें निवेदत नहीं हुआ, इसीसे विश्वनाथने उसके अर्घ्यको स्वीकार नहीं किया। अब वह उस हाथमें लिये हुए, निवेदित और सज्जित अर्घ्यको कहां फेंक दे? उसके लिये कौनसा स्थान है? वह कुसुमका हलका-सा बोझा—अति कोमल अर्घ्य—जो देवताको ही देने योग्य है—इस समय पत्थरकी तरह उसके कलेजेपर बैठ गया है। अब क्या यह देवताके योग्य रह गया? अब तो यह ज़मीनपर ही डाल देने योग्य है। इसीसे सुरमा लौटकर विश्वनाथको प्रणाम नहीं कर सकी—सबके साथ ही वह भी घर लौट आयी। सभी लोग आनन्दके साथ आरतीके सम्बन्धमें बातचीत कर रहे थे। उमाने भी आनन्दित हो प्रसन्न हास्यके साथ कहा—"मां! कैसी बढ़िया आरती हुई? सब लोग आनन्दसे बावले हो जाते हैं, मानों देवता स्वयं ही आकर पूजा ग्रहण करते हैं। वहां पूजा करनेमे तो ऐसा आनन्द आया कि मालूम पड़ता था, मानों सभी ईश्वरके चरणोंमे लीन हो रहे हैं।" केवल सुरमा ही मन-ही-मन कह रही थी, कि आज मेरी सारी पूजा—सारा आयोजन व्यर्थ हो गया।

उस दिन सवेरे ही सब लोग काशी आये थे, इसलिये सब चीज़ें तितर-बितर पड़ी हुई थीं। किसी-किसी तरह सबने खाया-पीया। राधिका-बाबूने कहा—"बेटी! क्या पान नहीं मंगाये गये?"

सुरमाको याद आया कि उसने घरसे चलते ही समय सब

चीज़ें साथ ले ली थीं, जिसमें पहुचनेके साथ हो किसी चीज़का अभाव न खटकने लगे। पिताके लिये पान कतरनेकी कतरनी लाना भी वह नही भूली थी। उसने ज़रा अनमनी-सी होकर पिताको पान लगाकर दिये। प्रकाशने आकर कहा—"अभीतक भाईजीके लिये सोनेका इन्तज़ाम नही किया गया ?" सुरमा झटपट बिस्तर लगाने चली गयी।

तीसरे पहर वह अत्यन्त अन्यमनस्क भावसे नयी गृहस्थी बांध रही थी। उमाने आकर कहा—"मां ! भैया पूछते हैं कि तुम केदारनाथके दर्शन करने चलोगी ?"

आलस्य-जड़ित कण्ठसे सुरमाने कहा—"आज नहीं, कल।"

कई काम करनेके बाद सुरमा दूसरे कमरेमें चली गयी। प्रकाश आधी खुली हुई खिड़कीके पास बैठा हुआ अनमना-सा देख रहा था। सुरमाने उसके पीछेसे आकर कौतूहलके साथ खिड़कीके बाहर दृष्टि दौड़ायी, तो देखा कि उमा बरामदेमें बैठी राधिका-बाबूकी पूजाके लिये पञ्चपात्र, कटोरी, आचमनी आदि बर्त्तन मांज रही है। उसे यह नहीं मालूम कि दूसरे कमरेमें बैठा हुआ प्रकाश उसकी ओर देख रहा है। पर सुरमा देखते ही ताड़ गयी। और किसी दिन वह उसी समय प्रकाश-को उसका अन्याय बतला देती, उसे डांटती-फटकारती; पर आज कहनेके लिये जाकर भी कुछ न कह सकी, धीरे-धीरे वहांसे खिसक पड़ी। प्रकाशके ध्यानमें बाधा डालते हुए आज उसके हृदयमें न जाने क्यों कैसी व्यथा उत्पन्न हुई।

दो दिन और देवताओंके दर्शन करनेमे बीत गये। तब राधिका-बाबूने सुरमासे पूछा—"क्या प्रकाश आज ही घर जायेगा ?"

"हां, जाने दीजिये।"

"शायद उसे कुछ असुविधा होगी।"

"कुछ भी असुविधा नहीं होगी। पिताजी! सब यहीं रहेंगे तो वहांका काम बिगड़ जायेगा। एक आदमीको वहां जाना ही चाहिये।"

"तब जाने दो।"

राधिका-बाबूने कुछ उदासीके ही साथ इस बातकी सम्मति दी; क्योंकि सुरमाके बहुत आपत्ति करनेपर भी वह उसे चार दिनके लिये अपने साथ ले आये थे। उन्हें भय होता था कि कहीं उसे रास्तेमें कुछ तकलीफ़ न हो। उन्होंने सोचा था कि जब प्रकाश साथ-साथ चला जायेगा, तब उसके रहनेसे कन्याको सुविधा मालूम पड़ेगी और वह फिर उसे लौटानेका हठ न करेगी। परन्तु कन्या मानती ही नहीं, तब वह क्या कर ?

प्रकाशके जाते समय सुरमाने उसके साथ भेजनेके लिये बहुतसे अमरूद वगैरह फल मँगाये और प्रकाशको बुलाकर बतलाया कि किस-किसके यहां कौन-कौनसी चीज़ देनी होगी। प्रकाशने कहा—"परन्तु मालूम होता है कि मेरा आज जाना नहीं हो सकेगा।"

"क्यों ?"

"कम-से-कम कलतक तो मेरा जाना हो ही नहीं सकता।"

सुरमाने भौंहें चढ़ाकर कहा—"क्यों? क्या हुआ है?"

"अमर-बाबूके कोई मित्र हैं। उनका नाम देवेन्द्र-बाबू है। उन्हें तुम जानती हो?"

"हां, होंगे कोई। उससे क्या?"

"वे लोग काशी आये हुए हैं। अतुल आदि भी आये हुए हैं। उन्हीं देवेन्द्र-बाबूने आकर तुम्हें संवाद देनेको कहा है। कल मैं तुमको साथ लेकर उनके डेरेपर जाऊंगा। वे बहुत आग्रहके साथ कह गये हैं और अपने डेरेका पता बतला गये हैं।"

"अच्छा, तो तुम्हारे जानेमें यही एक बाधा है?"

"हां।"

"उससे कोई हर्ज नहीं—तुम अपनी गठरी-मोटरी बांधो, घर गये बिना काम नहीं चलेगा।"

"अच्छा, तो मैं चला ही जाऊंगा; पर तुम वहां जाओगी न? उन लोगोंको यहां आते हुए सङ्कोच मालूम होता है। समझीं? उन्हें भय है कि कहीं भैया उनके आनेसे झल्लाने न लग जायें। तुम ज़रूर जाना। समझीं?"

सुरमाने हंसकर कहा—"अच्छा।"

"शायद तुम नहीं जाओगी?"

"उन्हें आते शर्म लगती है, मुझे क्यों नहीं लगेगी?"

"यह कैसी बात है? तुम्हारा तो अपना घर है।"

वात वदलकर सुरमाने कहा—"तुम तो आज जा रहे हो न ?"

"विना गये गुज़ारा नहीं है, नहीं तो मेरी वड़ी इच्छा थी कि एक वार अमर-वावूसे मिल आता।"

"यह इच्छा मन-की-मनमें ही रहने दो। इसके वाद सुनते हो, तुम्हारे साथ मेरा एक वातके लिये झगड़ा होगा।"

"झगड़ा ? अच्छा, तो आरम्भ करो—अव समय भी कम ही है।"

"मैं दिल्लगी नहीं करती। सच-सच वतलाओ, क्या तुम जीसे यह नहीं चाहते कि यहां दो-चार दिन और रह जाओ ?"

प्रकाश चुप हो रहा। थोड़ी देर वाद धीरेसे वोला—"अच्छी जगहमें कौन नहीं रहना चाहता ?"

"वस, केवल इसीलिये रहना चाहते हो ? प्रकाश ! मेरी ओर देखकर सच-सच कहो, क्या तुम सिर्फ़ इसीलिये यहां रहना चाहते हो ?"

प्रकाश तो एकदम डर गया—सुरमाकी तीखी नज़रोंको देखते ही वह सिहर उठा। उसने क्षीण कण्ठसे कहा—"और भला किस लिये रुकना चाहूंगा ?"

"क्या मैं वह वात नहीं जानती ? तुम वहुत वड़े अपराधी हो। आज मैं तुम्हारे अपराधका विचार करना चाहती हूं। क्या तुम जानते हो कि तुमने कितना वड़ा अन्याय किया है ?"

प्रकाशको तो ऐसा मालूम होने लगा, मानों उसके

पैरोंके नीचेसे मिट्टी खिसकी जा रही है। उसके कानोंमें झनझनाहटकी आवाज़ मालूम होने लगी—स्तम्भित और मुह्यमान प्रकाशके मुंहसे कोई वात नहीं निकली।

सुरमाने फिर पूछा—"क्या तुम जानते हो कि तुमने कितना बड़ा अन्याय किया है? वालिकाके सरल मनमें तुमने कैसा ज़हर डाल दिया है? वाल-विधवाके पवित्र हृदयमें पापका कैसा विष वोनेकी चेष्टा की है?"

प्रकाश धीरे-धीरे बैठ गया। उसने अस्फुट कण्ठसे कहा—"पाप! कैसा पाप!"

"यह क्या पापकी वात नहीं है? तुम क्या यह भी नहीं जानते कि पाप-पुण्य किसे कहते हैं? सरल मनमें गरल डाल देना, वालिकाको प्रलोभनमें डालना क्या पाप नहीं है?"

"प्रलोभन? नहीं, नहीं, ऐसी बात न कहो——" प्रकाशकी वोलती बन्द हो गयी।

सुरमाने उत्तेजित कण्ठसे कहा—"इसे क्या प्रलोभन नहीं कह सकते? क्या प्रलोभन एक ही तरहका होता है? प्रेम जताना क्या प्रलोभन नहीं है? तुम उसे जंचाना चाहते हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं। वह नन्ही-नादान लड़की, जिसने जन्मसे ही प्यार नहीं पाया, स्वामी क्या है, स्वामीका प्यार कैसा होता है, यह भी जो नहीं जानती, उसे प्रेमके फन्देमें पड़ते कितनी देर लगती है? इस उमरमें लोग आप-से-आप स्नेह करने और वदलेमें स्नेह पानेके लिये उत्सुक

हो जाते हैं। यह मनुष्यके हृदयकी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वह अभी क्या जानती है कि यह स्नेह अच्छा है या बुरा? फिर इस प्रेमके आदान-प्रदानसे उसकी कितनी बड़ी बुराई हो सकती है, यह बात यदि वह नहीं जानती, तो तुम तो जानते हो? उसकी-सी सांसारिक बुद्धिसे हीन, सरला और चिर-दुःखिनीको तुम ग्लानिके इतने बड़े अग्निकुण्डमें डालना चाहते हो, इस बातसे क्या तुम्हें शर्म नहीं आती? छिः, तुम कैसे आदमी हो?"

प्रकाश गिड़गिड़ाता हुआ बोला—"माफ़ करो—मुझे माफ़ करो। और कुछ न कहो।"

सुरमाकी बातोंका तार नहीं टूटा—वह कहती चली गयी—"प्रकाश! तुम इतनेसे ही घबरा गये? तुम पुरुष हो, पढ़े-लिखे हो, लड़के नहीं हो, पूरे युवा हो। तुमसे तो ये दो-चार बातें नहीं सही गयीं, फिर वह फूल-सी कोमल बालिका किस प्रकार इतनी बड़ी ग्लानि सह सकेगी? जब उसकी अन्तरात्मा उसे अशुद्ध-चित्त देखकर धिक्कार देने लगेगी, उस समय उससे कैसे सहा जायेगा? जब सभी लोग उसे—"

बात काटकर प्रकाशने कहा,—"उसका कोई अपराध नहीं है, सारा दोष मेरा ही है। उसे कोई क्यों धिक्कार देगा? उसे ग्लानि छू भी नहीं गयी—"

सुरमा—"ईश्वर करे, उसके मनपर इसका कोई असर न पड़े; परन्तु तुमने अपनी ओरसे क्या किया? तुम्हारे लिये कौनसा प्रायश्चित्त है?"

प्रकाश—"तुम जो कहो।"

सुरमा—"उसे करनेके लिये तैयार हो?"

प्रकाश—"हां, अभी।"

सुरमा—"देखो, फिर बात न पलटना, याद रखो, इसके साक्षी भगवान् हैं।"

प्रकाश—"बोलो, मुझे क्या करना होगा?"

सुरमा—"तुम्हें ब्याह करना होगा, एक दूसरी स्त्रीको प्यार करना होगा। उसके मनमें सपनेमें भी यह बात नहीं आने देनी होगी कि तुम किसी दिन उसे प्यार करते थे या अब भी करते हो।"

प्रकाश चुपचाप मुंह उदास किये उसकी ओर देखता रह गया। उसका गला सूख रहा था, मुखसे बात नहीं निकलती थी।

सुरमाने फिर कहा—"प्रकाश! तुम चुप क्यों हो गये? तुमने अपने प्रायश्चित्तकी बात सुन ली न?"

प्रकाश—"हां, सुन ली, सुरमा! यह तुमने बड़ा कठोर दण्ड दिया। तुम स्त्री होकर भी इतनी निर्दय हो? और कुछ कहो।"

सुरमा—"और कुछ नहीं, तुम्हारे लिये यही दण्ड ठीक है। तुम्हें इस दण्डको भोगनेके लिये शीघ्र ही तैयार हो जाना पड़ेगा। जितनी देर करोगे, उतना ही बुरा होगा। बोलो, क्या कहते हो? पाप करके उसका दण्ड भोगते हुए इतना घबराते हो? तुम पुरुष हो? छिः!"

प्रकाश—"क्षमा करो, सुरमा! क्षमा करो।" यह कह

प्रकाश वालिकाकी भांति ज़मीनमें लोट् गया। सुरमा निजल आंखोंसे उसकी ओर देखती हुई विधाताकी भांति कठिन हृदय किये अटल स्वरसे बोली—"क्षमा नहीं मिल सकती। तुम घर जाओ। यह याद रखना कि तुम्हें शीघ्र ही प्रायश्चित्त करना होगा। हां, यदि डरपोक, कायर, पापीकी तरह पाप करके उसका दण्ड भोग करनेका साहस नहीं होता, तव जहां जी चाहे, वहां चले जाओ। अपने दिलकी आगमें आपही जल-भुन जाओ, एक निर्दोष वालिकाको अकारण ही पापके सन्तापमें चिर-जीवनके लिये डुबाकर सुखी हो रहो; परन्तु याद रखना, दण्डदाता विधाताके हाथसे तुम्हारा छुटकारा नहीं है। मैं तुम्हें मामूली दण्ड ही देना चाहती हूं; पर उससे सौगुना कड़ा दण्ड विधाता तुमको देंगे।"

यह कह, सुरमा चुप हो गयी। प्रकाश भी वड़ी देरतक चुप रहा। इसके वाद आंखोंमे आंसूभरे मृदुकण्ठसे वोला—"क्या इसके विपरीत और कुछ नहीं हो सकता?"

"नहीं।"

"क्या कुछ दिनोंकी मुहलत भी नहीं मिलेगी?"

"नहीं। उसके सरल मनमें यह भ्रमपूर्ण संस्कार और अधिक दिन नहीं रहने देना होगा।"

प्रकाशने ज़रा तेज़ीके साथ कहा—"मैं जानता हूं कि वह जलकी तरह निर्मल है। इस विश्वाससे उसकी क्या हानि होगी?"

सुरमाने सोचा कि प्रकाश शायद इसी बहाने यह जानना चाहता है कि उमा उसे चाहती है या नहीं। सुरमाने स्थिर किया कि उसे इस सुखसे भी वञ्चित ही रखना होगा। वह बड़ी कठोर विचारक थी, उसने कहा,—"क्षति होते क्या देर लगती है? मैं वह लड़कोंको फुसलानेवाली बातें नहीं सुनना चाहती। अब तुम क्या कहना चाहते हो, वह कहो। बोलो, कुछ कहनेका साहस होता है? इतनी शक्ति है कि नहीं?"

टूटे हुए दिलसे प्रकाशने कहा—"हां, तुम जो कहती हो, वही होगा। लेकिन वह प्रायश्चित्त कब होगा? आज ही? तो मैं भी तैयार ही हूं।"

सुरमा धीरे-धीरे खिड़कीके पास आ खड़ी हुई। उससे आंखोंके आंसू छिपाते न बन पड़े। बड़ी देर बाद वह आंखें पोंछ, घूमकर खड़ी हुई। उसने देखा कि प्रकाश दोनों हाथोंसे मुंह छिपाये बैठा है। धीरेसे उसके पास जा, उसके कन्धेपर हाथ रखकर उसने पुकारा—"प्रकाश!"

प्रकाशने बिना कुछ कहे-सुने सिर ऊपर उठाया। सुरमा भी चुपचाप खड़ी रही। सहसा चकित भावसे खड़े होकर प्रकाशने कहा—"अब तो जानेका समय हो चला—मैं चलता हूं।"

"जाओ, भगवान् तुम्हें शान्ति दें। सुखसे रहो। प्रकाश! मैं सच्चे जीसे यही मनाती हूं कि तुम्हें फिर कोई कष्ट न हो।"

रुंधे हुए गलेसे प्रकाशने कहा—"तुम रोती क्यों हो, सुरमा? मैं तुम्हारी बात तो भूल ही गया था। तुम्हारा आदर्श

आंखोंके सामने मौजूद रहते हुए भी मेरी आंखें नहीं खुलीं। आज मैंने समझा कि तुम क्यों अपने स्वामीको छोड़ आयी हो।"

"यह तुम्हारी भूल है, प्रकाश! तुम मेरी तुलना क्यों करते हो? तुम मेरी तरह दुखी नहीं हो। मेरे सब कुछ है, तोभी मैं ऐसी अभागिन हूं कि कुछ भी मेरे भोगमें नहीं आता। जिसे कुछ भी नहीं होता, उसे तो मनको ढाढ़स देनेके लिये यह बात होती है कि मैं भगवान्के ही द्वारा सबसे वञ्चित हूं। मेरे इतना बड़ा राजसी ऐश्वर्य है, तोभी मैं कङ्गालिन हूं। अच्छा, प्रकाश! अब तुम जाओ।"

प्रकाश आगे बढ़ा। सुरमाने कहा—"प्रकाश! पहुंचनेपर पत्र लिखना।" प्रकाशने सिर हिला दिया। सुरमाने कहा—"मुझसे कुछ भी मन छिपाना। मुझे अपनी भलाई चाहनेवाली समझना।"

प्रकाश धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया, सुरमाने फिर पुकारा—"प्रकाश! सुनते जाओ।"

प्रकाश खड़ा हो गया। पास आकर सुरमाने धीरेसे कहा—"एक बार मिल लोगे?"

प्रकाशने बड़े ज़ोरसे कहा—"नहीं, नहीं, अब किसलिये मिलूं? अब सब ख़तम हो गया। वह भी तो मुझे बड़ा भारी पापी और अपराधी समझती होगी। छिः! अब मैं उसे अपना मुंह कभी न दिखाऊंगा।"

यह कह प्रकाश चला गया। आंखोंमें आंसू भरे हुई सुरमा

सोचने लगी—"प्रकाशने उससे भेंट नहीं की, यह अच्छा ही किया। यदि वह मिलने जाता, तो उमाके हक़मे बुराई ही होती। मैंने जो यह बात कही, वही बुरा किया। न मालूम मेरे कठिन हृदयमें यह दुर्बलता किधरसे आ घुसी! भगवान्‌ने ही रक्षा की।"

उस समय उमा न जाने क्या कर रही थी। सुरमा उसे घड़ी-भर भी बिना कामके नहीं बैठने देती थी। रातको बिस्तरेपर पड़ी-पड़ी रामायण-महाभारत पढ़-पढ़कर सुनाया करती है और उसके चित्तको उन प्राचीन ऊंचे आदर्शोंके चिन्तनमे ही लगाये रहती है। जब बिलकुल नींद आ जाती है, तब छोड़ देती है। सारा दिन बहुत परिश्रम तो नहीं करना पड़ता; पर कोई-न-कोई काम उमाके हाथमें हरदम ही रहता है।

सुरमाने जाकर पुकारा—"उमा!" उमाने सिर ऊपर उठाकर मीठे स्वरमें कहा—"क्या है?"

सुरमाने फिर पुकारा—"उमा!"

विस्मित भावसे उमाने कहा—"क्यों? क्या कहती हो?"

"तुम क्या कर रही हो?"

"चन्दन-धूरेमें दीमक लग रही थी, उसे ही उठाकर-धूपमें रख रही हूं।"

सुरमाने पास आकर दोनों हाथोंसे उसका सिर पकड़कर दो-एक बार उसका मुंह चूम लिया।

तनिक शर्माकर उमाने अपना 'सिर' हटा लिया। उसके जीमें आया कि पूछूं तो कि मांकी आंखोंमें आंसू क्यों भरे हैं; परन्तु फिर न जाने क्या सोचकर उसने कुछ नहीं पूछा।

उन्तीसवां परिच्छेद
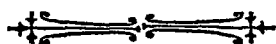
मन्दाकिनी

दिनके लगभग बारह बजे होंगे। उमा पूजा करके बरामदेमें आ खड़ी हुई। उसके बाल भींगे हैं, न सुखानेसे सुरमा बहुत बिगड़ेगी। एक हाथसे बालोंके बीचमें खोंसे हुए पूजाके फूलको लेकर नचाते हुए, वह दूसरे हाथसे बाल झाड़नेकी चेष्टा कर रही थी, पर हाथ वहांतक नहीं पहुचता था। वह बहुत ही अनमनी-सी हो रही थी। सुरमा घड़ी-भरके लिये भी उसे चिन्ता नहीं करने देती, इसीसे जहां वह थोड़ी देरके लिये भी अकेली या निकम्मी बैठ जाती है कि एकदम अनमनी हो जाती है। आज भी निर्माल्यका फूल हाथमें लिये उसे उस दिन देवताके घरवाली घटना याद आ गयी। उसे अच्छी तरह याद आया कि उसे उस दिन कैसी दारुण यातना हुई थी। उसका कारण सोचते-सोचते, उसे प्रकाशकी वे सब बातें भी याद आयीं। वे बातें याद आनेपर

भी उसे वैसी वेदना नही होती। तो उस दिन उसे क्या हो गया था? प्रकाशको भी उस दिन न जाने क्या हो गया था, नहीं तो वह तो कभी बातें भी नही करता था, फिर वैसी बातें क्योंकर कह बैठा? अभी-अभी जो प्रकाश उससे मिले बिना ही चला गया, उससे बालिकाको दुःख हुआ; पर साथ ही लज्जाके मारे उसकी सारी देह कांप उठी। परन्तु मिलनेमे क्या बुराई है? सभी तो एक-दूसरेसे मिलते हैं, फिर मेरे ही बारेमें ऐसा क्यों कहा जाता है? अनजानतेहीमे उसके मुंहसे एक लम्बी सांस निकल पड़ी। उसने समझ लिया कि उन्ही बातोंके कारण प्रकाश उससे मिलने नहीं आता और वह भी मिलने नहीं पाती। छिः! प्रकाशने ऐसा काम क्यों किया? यदि ऐसा नही करता, तो यों नाता-तोड़ नहीं होता। एकदम पराये आदमीको जो अधिकार है, वह भी उसको प्राप्त नही है।

सुरमाने घरके भीतरसे पुकारा—"उमा! चल, खा ले।" उमा बोली—"आ रही हूं।" सुरमाने बड़े ज़ोरसे कहा—"आ रही हूं क्या, जल्द चली आ। पानी तो ला ज़रा।" उमाने झटपट आज्ञाका पालन किया।

खा-पीकर दोनों बरामदेमे आ बैठीं। हाथमे रामायण लेकर सुरमाने कहा—"आज सीताके वनवासकी कथा होगी। खूब मन लगाकर सुनना। बड़ी मनोहर कथा है। सुनते-सुनते दुःखसे जी भर जाता है।" सुरमा सुरके साथ पढ़ने और उमा मन लगाकर सुनने लगी। जिस समय रामके हृदयमें छिपे

हुए दुःख और सीताके शोकसे उसका हृदय व्याकुल होने लगा था, उसी समय दासीने आकर कहा—"गाड़ीपर एक लड़की और एक लड़का आया है।" "यह कौन आये?" कहकर सुरमाने पुस्तक बन्द कर दी। उमाने आग्रहके साथ कहा—"कोई हो, मां! तुम पढ़ती जाओ।" सुरमाने कहा—"जा पगली! ज़रा देख तो कि कौन हैं।"

"यह लो, वे तो आ ही गये।" कहकर उमा विस्मित भावसे आनेवालोंकी ओर देखती रह गयी। सुरमाने देखा कि एक दासीकी गोदमें अतुल है और साथ ही एक किशोरी बालिका भी है। सुरमाने अनुमानसे उसे पहचानकर उठकर खड़ी होते-होते कहा—"आओ, बेटी!" इसके बाद ज्योंही उसने अपने दोनों हाथ फैलाये, त्योंही अतुल उसकी गोदमें लपककर चला आया और चुपचाप उसके कन्धेमें मुंह छिपा लिया। सुरमा धीरे-धीरे उसके सिरपर हाथ फेरने लगी। थोड़ी देर बाद उसने उस लड़कीकी ओर फिरकर कहा—"शायद] तुम्हारा ही नाम मन्दाकिनी है?" बालिकाने चुपचाप उसे प्रणाम किया और सिर झुकाये बैठी रही। अतुलने मानों माताका भ्रम दूर करनेके लिये कहा—"यह मेरी जीजी है।" सुरमाने हंसकर कहा—"और यह कौन है?" बालकने बड़े विस्मयसे उमाकी ओर देखा और उसने तुरत ही उसे पहचानकर "जीजी!" कहते हुए उसकी गोदमें जानेके लिये अपने दोनों हाथ फैला दिये। उमाने अतुलको गोदमें ले लिया और उसकी नज़रोंके सामनेसे मुंह

फेर लिया—न जाने क्यों उसे बड़ी रुलाई आ रही थी। सुरमाने कहा—"जा, उसे अन्दर दिखा ला।" उमा भी यही चाहती थी। अतुलकी मीठी आपत्तियोंको पुचकारकर उड़ाती हुई वह उसे लिये हुई दूसरे कमरेमें चली गयी। सुरमाने बालिकाका हाथ पकड़कर उसे पास बैठाते हुए कहा—"तुम्हारी बुआ क्या कर रही हैं?" बालिकाने मृदु कण्ठसे कहा—"योंही बैठी हैं। हमको उन्होंने आपको साथ ले चलनेके लिये भेजा है। उन्होंने आपको आज ही बुलाया है।"

बालिकाके धीर-कण्ठसे प्रसन्न होकर सुरमाने कहा—"मैं भी तुम्हारी बुआ ही हूं, यह मालूम है?"

"हां।"

"कैसे मालूम हुआ?"

"बुआने ही कहा है।"

"तुमने पहले भी कभी अपनी बुआको देखा था?"

"नहीं, कैसे देखती?"

सुरमाको यह सब हाल मालूम था; पर किस तरह इसके साथ जान-पहचान और घनिष्ठता पैदा की जाये, इसीसे वह इन बातोंकी चर्चा कर रही थी।

सुरमाने कहा—"तुम्हारे पिता हमारे यहां रहते थे। बड़े अच्छे आदमी थे। हमारे यहां वे बहुत दिनतक रहे।"

बालिका चुप रही। सुरमाने फिर कहा—"तुम्हारे पिता तुम्हें खूब प्यार करते थे?"

"हां।"

"उन्हें तुमने कब देखा था?"

"मैं जब बहुत छोटी थी, तब एक बार उन्हें देखा था और अबकी बीमार होनेपर देखा।"

"वे क्या पहले तुम्हारी खोज-ख़बर नहीं लेते थे?"

"नहीं।"

"तब यह कैसे जाना कि वे प्यार करते थे?"

"वे मेरे ही सोचमें पड़े-पड़े इस संसारसे चल बसे। वे मुझे ख़ूब प्यार करते थे।"

"तुम्हें किसने पाला-पोसा?"

"नानीने। जब वे मर गयीं, तब मामा-मामीने।"

"बापके मर जानेपर फिर ननिहालवालोंने तुम्हें अपने यहां नहीं रखा?"

"नहीं।"

"क्यों?"

बालिकाने सिर झुका लिया। सुरमा उसके और पास चली गयी और उसका हाथ थामे हुए बोली—"यदि तुम्हें कहनेमें कष्ट होता हो तो मत कहो। तुम मुझे नहीं पहचानती—मैं भी तुम्हारी बुआ लगती हूं।"

बालिकाने सिर झुकाये हुए कहा—"मामा-मामीने कहा कि अब हम इतनी बड़ी सयानी लड़कीको, जो ब्याह करने लायक़ हो गयी, अपने यहां नहीं रख सकते। वे और भी न जाने क्या-क्या कह रहे थे।"

"तुम जितने दिन मामाके घर रहीं, उतने दिन बड़े कष्टसे रहीं?"

"कष्ट तो कुछ भी नहीं था। केवल यही कष्ट था कि पिताका कोई समाचार नहीं मिलता था। मैं वहां सब कुछ करती-धरती थी।"

"तुम्हें क्या-क्या काम करना पड़ता था?"

"जो काम सभी औरतें करती हैं—धान उबालना, बर्त्तन मांजना, झाड़-बुहार करना—यही सब।"

"कोई कष्ट नहीं होता था?"

"नहीं, मुझे अभ्यास हो गया था।"

"आजकल तो कोई कष्ट नहीं है?"

"नहीं, वहां तो यह आशा भी रहती थी कि पिताजी आयेंगे; पर यहां आनेके पहले ही वह आशा भी जाती रही।"

सुरमाने आंखोंके आंसू पोंछकर कहा—"उसके लिये दुःख मत करो—वे स्वर्ग चले गये।"

"मैं दुःख नहीं करती। बीमारीमे उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा था। ईश्वर करे, वे स्वर्गमें सुखसे रहें।"

"तुम्हारे फूफा और बुआ तुम्हें कैसा मानते हैं?"

"बुआ बड़ी दया करती हैं। फूफा भी बहुत मानते हैं।"

"दोनोंमें कौन अधिक मानता है?"

"दोनों ही एक-सा प्यार करते हैं।"

"अतुल तुमसे ख़ूब हिल-मिल गया है न?"

"हां।"

"तुम्हारी बुआ तुम्हारी शादीके लिये चेष्टा नहीं करतीं? बोलो, बेटी! शर्माती क्यों हो? चेष्टा करती हैं?"

बालिका चुप हो रही।

सुरमाने कहा—"नहीं करतीं?"

"मैं नहीं कह सकती। करती होंगी।"

सुरमा और कुछ पूछना चाहती थी; पर मन्दाकिनीने पूछनेका मौक़ा ही नहीं दिया। बोली—"आप नहीं चलेंगी?"

"आज नहीं, किसी दिन और चलूंगी। अपनी बुआसे यही कह देना।"

मन्दाकिनीने कहा—"बुआने पूछा है कि आप वहां चलेंगी या वे ही यहां आयें?"

सुरमाने कुछ सोचकर कहा—"उसे कल विश्वनाथके दर्शन करनेके लिये आनेको कहना, मैं भी दर्शन करने जाऊंगी।"

"अच्छा।"

"तुम भी आना।"

"मैं अतुलको लिये घरपर ही रहूंगी। उसे भीड़में तकलीफ़ होगी।"

सुरमाने उमाको पुकारा। देखा कि अतुल उसकी गोदमें बड़ा उदास हो रहा है। वह सुरमाको देखते ही उसकी गोदसे नीचे उतर आया और पास ही बैठ रहा। उसने सन्देहाकुल नेत्रोंसे उमाकी ओर देखते हुए कहा—"वह तो जीजी नहीं है।"

सुरमाने हंसकर कहा—"उमा! अतुल यह क्या कह रहा है?"

उमा सूखी हंसी हंसकर बोली—"शायद अच्छी तरह नहीं पहचानता।"

सुरमा ज़रा गम्भीर हो रही। उसने सोचा कि सचमुच उमाकी वह सरल निर्मल मुस्कान जो उसकी ख़ास पहचान थी, इस समय उससे विदा हो गयी है। सुरमाने कहा—"उमा! देख तो कैसी अच्छी लड़की है!"

उमाने उसकी ओर देख मृदुस्वरसे कहा—"बड़ी ही अच्छी लड़की है।"

"इससे बातें क्यों नहीं करती? यह तेरी ही उम्रकी होगी। क्यों मन्दा?"

मन्दाने मृदुस्वरसे कहा—"शायद मैं ही कुछ बड़ी हूंगी।"

"बड़ी नहीं हो। वह ऐसी ही अल्हड़ है। बिटियासी मालूम पड़ती है। जाओ, दोनों जनी आपसमे बातचीत करो।"

मन्दाकिनीने चकित होकर एक बार उमाकी ओर देखा। उमाका अनिच्छा-कुण्ठित मुख देखकर कहा—"बुआने जल्दी ही लौट आनेको कहा है।"

"तुम्हारे साथ और कौन है?"

"देवेन्द्र बाबू आये हैं। वे बाहर बैठे हैं।"

सुरमा घबराकर उठ खड़ी हुई। बोली—"राम-राम! मुझे क्या हो गया है? बेचारेको जलपान भी नहीं कराया गया। अच्छा, उमा! तू बैठ। मैं जलपानका बन्दोबस्त करती हूं।"

सुरमा अतुलको गोदमें लिए चली गयी। लाचार, उमा सिर झुकाये बैठी रही। मन्दा भी चुपचाप बैठी रही।

सुरमाने जाकर देखा कि देवेन्द्र-बाबू गाड़ी ले आये हैं और अतुलको पुकार रहे हैं। अतुलसे बहुत सूरतसे कहलाकर उसने देवेन्द्र-बाबूको जल-पान कराया। पिताको संवाद देनेकी उसे इच्छा नहीं हुई; क्योंकि वह जानती थी कि यह सब उनको अच्छा नहीं लगता। इसीसे सुरमाने चारुको भी नहीं बुलवाया। मन्दाको जल-पान करनेके लिये बुलाने गयी, तो देखा कि वे दोनों अबतक चुपचाप बैठी हुई हैं। उमा सोच रही है कि यह अच्छा नहीं हो रहा है, तोभी उसकी समझमें नहीं आता था कि किस तरह बातें करूं। इसीलिये मन्दा भी लाचार चुपचाप बैठी थी।

सवेरे ही उठकर सुरमा उमा और एक नौकरको साथ लेकर, विश्वनाथके दर्शन करने चली। पिताने कहा,—"आज मत जाओ, कल मैं भी चलूंगा।"

सुरमाने कहा—"आज तो मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि जाऊं।"

"तो चली जाओ।"

विश्वनाथजीको प्रणामकर सुरमाने उस दिनकी बात याद कर मन-ही-मन उनसे क्षमा मांगी; परन्तु उसे ऐसा मालूम हुआ, मानों सभी विफल ही हुआ; क्योंकि अनुतापके अन्तमें क्षमा-प्राप्ति करके जो निर्मल शान्त भाव प्राणोंके भीतर आ जाता है वह तो नहीं आया। उसने उमाकी ओर नज़र डाली, तो देखा कि देवताको प्रणाम करते ही उसके नील-तारा-शोभित श्वेत पलाशोंसे झर-झर करके शिशिर-बिन्दु झर पड़े। सुरमा समझ गयी कि

वह इसी तरह अपना कष्ट देवताके चरणोंमें निवेदित कर रही है, वह क्षमा पा गयी है। सुरमाने उमाके अनजानतेमें ही उसके सिर-पर धीरेसे हाथ फेरकर उसे आशीर्वाद दिया। चारु भी वहीं दीख पड़ी। उसने सुरमाको प्रणाम कर स्नेह-करुण मुखसे कहा—"मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि फिर इतना जल्द भेंट होगी।"

सुरमाने उसे आशीर्वाद दिया और अतुलकी ओर देखकर बोली—"इसे भी लेती आयी हो?"

"तुम्हारे आनेकी बात सुनते ही यह मचल गया, किसीके मनाये न माना। वे लोग रामनगर गये हैं। यह उनके साथ नहीं गया।"

"मन्दा क्यों नहीं आयी?"

"वह कहीं ज़्यादा आना-जाना पसन्द नहीं करती।"

"बड़ी अच्छी लड़की है।"

"ओह! बेचारी लड़कीने जन्मसे कभी किसीसे भरमुंह प्यार नहीं पाया।" यह कह चारुने उमाके पास जा, एक हाथ उसकी गरदनमें डाल दिया और दूसरेसे उसकी ठोड़ी पकड़कर बोली—"क्यों उमारानी! पहचानती नहीं हो क्या?"

उस समय उमाका मन कुछ कुछ शान्त-स्निग्ध हो गया था—वह लजाकर हंसने लगी।

चारुने कहा—"अरी, बोलती क्यों नहीं?" उमा चुपचाप रही। चारुने उसकी ओर देखते-देखते कहा—"बेटी! तू ऐसी क्यों हो गयी? एक बार मुझे मौसी कहकर भी नहीं पुकारा?"

तोभी उमा कुछ कह न सकी—केवल सिर झुकाये मीठी

हंसी हंस दी। चारुने सुरमाकी ओर देखते हुए कहा—"जीजी! तुम्हारा यह प्रभाती फूल सूख कैसे गया? इसके चेहरेपर वह पहलेकी-सी हंसी कहां है? तुम्हारी वह उमा क्या हो गयी?"

उमाने चारुकी गोदमें मुंह छिपा लिया। उसकी आंखें डबडबा आयी थीं।

सुरमाने गम्भीर मुंह बनाये हुए कहा—"आदमीमें सदा लड़कपन थोड़े ही रहता है? इस समय उमाको बुद्धि हो गयी है, अब वह अल्हड़ उमा नहीं रही।"

"यह तो अच्छा नहीं हुआ। इसका तो वही मुखड़ा, वही हंसी अच्छी लगती थी।"

सुरमाने इस बातको दबा देनेके इरादेसे कहा—"यहां अब और कितने दिन रहना होगा?"

"दो महीने। अब तो मैं तुम्हें बुलाऊंगी ही नहीं। बीच-बीचमें मिलनेका क्या इन्तज़ाम रहेगा?"

सुरमाने हंसकर कहा—"बुलाओगी क्यों नहीं?"

"अब यह—पूछकर क्या करोगी?"

"अच्छा, कभी-कभी अतुलको भेज देना।"

"बहुत ख़ूब। तो फिर मेरे साथ मुलाक़ात करनेकी कोई ज़रूरत नहीं है। क्यों?"

सुरमा उसी तरह हंसती हुई बोली—"दो दिनके लिये माया फैलानेसे क्या काम है?"

"माया मत करना, भेंट करनेमें क्या हर्ज है?"

"ख़ैर, जाने दो, अब जिस दिन दुर्गाजी या बटुक-भैरवके दर्शन करने जानेकी इच्छा हो उस दिन मुझे ख़बर दिलवा देना।"

चारु चुप हो रही। सुरमाने कहा—"और कभी-कभी मन्दाको भी भेज दिया करना।"

"अच्छा,जीजी! दो दिनके लिये उमाको मेरे साथ जाने दो।"

सुरमा उमाकी ओर देख, कुण्ठित मुखसे बोली—"आजकल उसकी तबीयत बड़ी ख़राब है। अभी तो तुम यहीं हो—किसी दिन भेज दूंगी।"

चारु उदास हो गयी। इसके बाद और भी कई तरहकी बातें हुईं—सुरमाके पीहर और पिताकी बातें चलीं। चारुने भी अपनी बीमारी, लड़कीकी बीमारी और घर-गृहस्थीका हाल बतलाया। अमरके बारेमें न सुरमाने कुछ पूछा, न चारुने बतलाया। थोड़ी देर बाद एक-दूसरीसे बिदा हुईं।

उसी दिन शामको अतुलको लेकर मन्दा घूमती-फिरती आयी। चारुकी चंचलता और उत्सुकताका अनुभव कर सुरमा उदास भावसे ज़रा मुस्कुरायी। अतुल अपनी जीजीका हाथ पकड़े आया और बड़े विज्ञकी भाँति बोला—"देखो, मां! मैं जीजीको पकड़े लिये आता हूं।"

सुरमाने इसके लिये उसे कुछ पुरस्कार दिया और उमाको बुलवा कर पूछा—"और यह कौन है रे?"

बड़ी देरतक उसकी ओर आंखें गड़ाये देखनेके बाद अतुलने कहा—"यह तो जीजी नहीं है।"

और कोई समय होता, तो उमा मारे अभिमानके मुंह फुला लेती, पर इस समय उसने ज़रा उदासीके साथ मुस्कुरा दिया। वह अतुलको गोदमें लेने गयी; पर वह आया ही नहीं—दोनों हाथोंसे मन्दाका आँचल पकड़े खड़ा रहा। मन्दा झुंझलाकर बार-बार कहने लगी—"जा, जा, वही तेरी जीजी हैं।"

अतुलने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, तू ही जीजी है। मैं तुझे कभी ससुराल नहीं जाने दूंगा।"

सभी हंसने लगे—मन्दाने शर्मसे सिर झुका लिया। सुरमाने अतुलको प्यार करते हुए कहा—"तो क्या तेरी जीजी ससुराल जायेगी ही नहीं?"

"नहीं, मैं नहीं जाने दूंगा।"

सुरमाने उसका मुंह चूम लिया। इसके बाद मन्दाकी ओर देखती हुई बोली—"क्या वे लोग तेरी शादीकी बातचीत कर रहे हैं? चाचने तो मुझसे कुछ भी नहीं कहा।"

मन्दाने सिर झुकाये हुए कहा,—"बुआने आज यही कहकर उसे डरा दिया था, इसीसे वह डर गया है।"

अन्यान्य बातोंके बाद सुरमाने उमासे कहा—"तुम दोनों बैठी बातें करो—मैं अभी आती हूं।"

अतुलने कहा—"मैं बन्दर देखूंगा।"

"चल तुझे बन्दर दिखा दूं। मन्दा! उमाके साथ बातें करो।"

सुरमा अतुलको लिये चली गयी। मन्दाने दो-एक-बार उमाकी ओर देखा। फिर सिर नीचा किये चुपचाप बैठी रही। उमाने

सोचा कि इसे बातें करनेका साहस नहीं होता, अब मैं इससे बातें न करूंगी, तो बड़ा बुरा होगा। अनुतप्ता उमाने मृदु स्वरमें पूछा—"तुम्हारे पिताका घर कहां है?" इस जीवनमें उस बेचारीको हम-जोली, मुंहबोली सहेली नहीं मिली थी। इसीसे वह मूर्खकी तरह प्रश्न कर बैठी। मन्दाने उसकी ओर देखते हुए कहा--"मैं बापका घर तो जानती ही नहीं, हां, मेरा ननिहाल कुसुमपुरमें है।"

"तुम्हें अपनी मांकी याद आती है?"

"नहीं, जबसे मुझे होश हुआ, तबसे मैंने मांको कभी नहीं देखा?"

उमा करुणासे पसीज गयी। बोली—"मामा-मामी तुम्हें प्यार करते थे या नहीं?"

मन्दाने सिर झुकाये ही कहा—"वाह! मानते क्यों नहीं थे?"

"फिर मौसीने मांसे यह क्यों कहा कि इस बेचारीने जन्मसे कभी किसीका प्यार नहीं पाया?"

उमाके इस बेवक़ूफ़ीसे भरे हुए सवालको सुनकर मन्दा झुंझलाई नहीं, केवल मलिन हंसी हंसकर बोली—"वे मुझे बहुत प्यार करती हैं, इसीसे ऐसा कहती होंगी।" उमाने सरल भावसे कहा—"मां भी तुम्हें बहुत मानती हैं। तुम्हारी बड़ी तारीफ़ करती हैं।"

मन्दाने उसकी ओर देख, हंसते हुए कहा—"बुआ भी तुम्हारी ही चर्चामें दिन-रात रहती हैं। मैं तुम्हारी तरह न हो सकी, इसका मुझे कभी-कभी बड़ा दुःख होता है।"

उमाने कहा—"क्यों ?"

"तब बुआ मुझे और भी प्यार करतीं।" उमासे यह विनय-भरी बात भी कहते न बनी कि मैं क्या तुमसे अच्छी हूं ? अथवा राम न करे, कोई मुझ-सी हो। वह बिना आपत्तिके ही निर्बोधकी भांति अपनी प्रशंसा सुनकर पचा गयी। बोली—"तुम्हें मौसी अधिक मानती हैं या तुम्हारे मामा-मामी अधिक मानते थे ?"

सिर झुकाये कुछ सोचकर मन्दाने कहा—"सब लोग मुझे बराबर ही मानते हैं।"

"वे तुम्हें इतना कष्ट देते थे, तोभी तुम कहती हो कि सब लोग बराबर ही मानते हैं ?"

अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंसे उमाकी ओर देखती हुई मन्दा बोली—"उन्होंने मुझे बचपनसे पाला-पोसा, मांके मर जानेपर मुझे खिला-पिलाकर बड़ा किया, थोड़ा-बहुत कष्ट भी हो तो कैसे कहूं कि वे मुझे कम मानते थे ? फूफा-फूफीने मुझे बड़े आरामसे रखा है। यदि ये इतना आराम न भी देते तो मैं यह कैसे समझ लेती कि ये मुझे कम मानते हैं ? बिना हृदयमें स्नेह हुए कोई निस्सहाय मनुष्यको अपने यहां आश्रय देता है ?"

उमाकी नीली आंखोंमें आंसू भर आये। वह मन्दाके और पास खिसक आयी तथा उसका एक हाथ थामकर बोली,—"तुम्हारा हृदय बड़ा ही सरल है।"अपने दूसरे हाथसे उमाका हाथ पकड़कर मन्दाने कहा—"अपने-दिलसे जानिये. पराये दिलका हाल।

तुम आप जैसी हो, वैसी ही सबको समझती हो।" उमाने अपनी आंखें पोंछकर कहा—"अच्छा, अब मामा-मामीके लिये तुम्हारा जी घबराता है या नहीं?"

"मैं मनको घबराने ही नहीं देती।"

"क्यों?"

"वे मुझे अपने घरमें रखकर जिस चिन्तामें पड़े थे, जिस तरह बक झक करते रहते थे, उसे देख-सुनकर मुझे अपने ही जीवनपर घृणा होती थी। भगवान्‌ने इस समय मुझे एक दूसरी जगह आश्रय दे दिया और उनकी चिन्ता दूर कर दी, यह भगवान्‌की मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा है।" उमा समझ न सकी, बोली—"चिन्ता कैसी बहन?" थोड़ी देर चुप रहकर मन्दाने मलिन हंसी हंसते कहा,—"समझीं नहीं? लडकी सयानी हो जानेपर उसका व्याह करनेकी बड़ी चिन्ता हो जाती है।"

"चिन्ताकी क्या बात थी? वे व्याह कर देते।"

"कौन व्याह करता? मुझ जैसी लड़कियोंको कौन पूछता है?"

"क्यों? तुम तो इतनी सुन्दर हो!"

'यह बात छोड़ दो। मेरे मा-बाप जो नहीं हैं! मैं अनाथिनी जो हूं! विना पूरा-पूरा दहेज लिये कौन लड़की लेना चाहता है? मेरे बाप कुछ छोड़ भी तो नहीं गये?"

उमा कुछ देर सोचकर बोली—"अब यहां तो वह चिन्ता नही रही?"

मन्दा उदासीके साथ बोली—"मैं जहां जाऊंगी, वहीं चिन्ता-

साथ लिये जाऊंगी। फूफा भी कभी-कभी इसी सोचमें पड़े दिखाई देते हैं।"

"तुम्हें तो यह बड़ी इच्छा होती होगी कि सबको इस चिन्तासे छुड़ा दूं?"

"इसमें क्या शक है? परन्तु पृथ्वीमें कौन ऐसा है जो मुझ-सी अनाथिनीको सदाके लिये निश्चिन्त कर दे? इसीसे इच्छा करनेपर भी बहुत नहीं सोचती। यही सोचकर रह जाती हूं कि इस समय भगवान्‌ने मुझे ऐसी अवस्थामें रक्खा है, इससे असन्तुष्ट होना कृतघ्नता है।"

मन्दाकी सभी बातें समझमें न आनेपर भी उमाने लम्बी सांस लेकर कहा—"मालूम होता है, तुम बड़ी दुखिया हो।"

मन्दा कुछ न बोली; चुपचाप उमाके पराये दुःखसे दुःखी मुखड़ेकी ओर देखती रही। शायद वह मन-ही-मन यही सोच रही थी कि—"दुःखके समुद्रमें आप डूबी हुई होनेपर भी तुम पराये दुःखको ही पहाड़ समझ रही हो। हां एक विषयमें तुम बहुत सुखी हो। वह यह कि भगवान्‌ने तुम्हें अपनी अवस्थाका अनुभव करने की शक्ति ही नहीं दी।"

मन्दाने आश्रयहीना उमाके बचपनमें ही विधवा हो जानेकी बात चारुसे सुनी थी। मन्दा जानती थी कि ज्ञान ही दुःखका मूल है। जिसने इस पेड़का फल खाया, वही दुःखी हुआ, नहीं तो सुख-दुःखमें फर्क बहुत थोड़ा है।

मन्दा और अतुलके चले जानेपर सुरमाने उमासे पूछा—"क्यों, उमा! तूने उस लड़कीसे बातें कीं या नहीं?"

"की हैं।"

"कैसी लड़की है ?"

"बड़ी दुखिया है।"

"और कुछ नहीं देखा ? अच्छी है या नहीं ?"

"हां, खूब अच्छी है।"

"बड़ी बुद्धिमती और बड़ी ही धीर-स्थिर है। अपनी अवस्थासे ही सन्तुष्ट है। क्यों उमा ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें उमाने उससे वे सभी बातें एक-एक करके कह सुनायीं, जो उन दोनोंमें हुई थीं। सुनकर सुरमा चुप हो रही। वह दिन इसी बात-चीतमें कट गया।

दो दिन बाद सुरमाने उमासे कहा—"उमा! आज दुर्गाजी-का दर्शन करने चलेगी ?"

"अभी उसी दिन तो गयी थीं ?"

"आज वहां चारु भी जानेवाली है।"

"आज तो मैं नहीं जा सकती।"

"चल, वहां मन्दासे तेरी मुलाक़ात हो जायेगी।"

उमाने कुछ सोचकर कहा—"और किसी दिन चलूंगी। आज जी नहीं चाहता।"

सुरमा अकेली ही चली गयी।

तीसवां परिच्छेद

प्रकाशका विवाह

दुर्गाजीके मन्दिरके भीतर जो गोल वरामदा है, उसीके एक कोनेमे बैठकर चारुने कहा—"आओ, यहीं थोड़ी देर बातचीत की जाये।"

सुरमाने कहा—"लोग क्या कहेंगे?"

"जो जीमें आये, कहें। इसके सिवा और क्या उपाय है?"

"मन्दाको क्यों नहीं लेती आयीं? बड़ी अच्छी लड़की है।"

"उन्होंने लाने नहीं दिया। उसके व्याहकी बातचीत चल रही है।"

"मन्दाका व्याह हो रहा है? कहां लड़का ठीक हुआ है?"

"यहींका है। बातचीत पक्की हो जानेपर देखने आयेगा।"

सुरमाका जी न जाने क्यों उड़ गया। उसने कुछ सोचकर कहा—"लड़का कैसा है?"

"अच्छा है; लेकिन मोल-तोल बहुत हो रहा है।"

"तुम लोग उतनेपर राज़ी हो गये हो?"

"व्याह तो करना ही है। राज़ी होना ही पड़ेगा।"

"व्याह यहीं होगा?"

"हां, वे कहते हैं कि अब इसके व्याहमें अधिक देर करना ठीक नहीं। यहीं कई लड़कोंके सम्बन्धमें बातचीत हो रही है, देखें कौनसा ठीक होता है।"

सुरमा कुछ सोचकर बोली—"कुछ दिन बाद करनेसे नहीं चलेगा ?"

"क्यों ? लड़की कुछ कमसिन थोड़ी ही है ?"

"मेरी इच्छा है कि इस लड़कीको मैं ले लूं।"

"तुम लोगी ? किसके लिये ? प्रकाश चाचाके लिये तो नहीं ?"

"हां।"

चारुने आनन्द-गद्गद्-कण्ठसे कहा—"अरे, उसके ऐसे भाग्य कहां ? कहीं तुम हंसी तो नहीं करतीं ?"

"नहीं, ठीक कह रही हूं। तब बात यह रही कि कुछ दिन और ठहर जाना ठीक होगा।"

चारुने निराश स्वरसे कहा—"तब तो नहीं होगा, जीजी। मैंने उनसे प्रकाश-चाचाके बारेमें कहा था, इसपर उन्होंने कहा कि यदि उन लोगोंकी तरफ़से बात आयेगी, तो मैं स्वीकार करूंगा। अब भी स्वीकार कर सकते पर अब बहुत देर न करेंगे। उसका ब्याह करके वे कुछ दिन सैर-सपाटा करेंगे। लड़का भी बिना बहुत खोजे-ढूंढ़े ही मिल गया है। देर होनेसे तो वे किसीकी बात ही नहीं मानेंगे।"

सुरमा थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद बोली—"कहां जाने-वाले हैं ?"

"मैं क्या जानूं, जीजी ! अबकी राजपूतानेकी तरफ़ जानेकी बात कह रहे थे।"

सुरमाने हंसकर कहा,—"देखना, सङ्ग न छोड़ना, इसी तरह बहुतसे देश देख लेगी।"

"इसमें क्या कहना है ? जिस आदमीको अपनी देहकी भी सुध नहीं रहती, उसे अकेले कैसे छोड़ा जा सकता है ?"

"कितने दिनकी सैर होगी ?"

"यह नहीं कह सकनी। कहते हैं कि अबकी कहीं जाकर बस जायेंगे और डाकृरी शुरू करेंगे—घरमें बैठे-बैठे अच्छा नहीं लगता।"

"सचमुच ? फिर जगह-ज़मीन कौन देखेगा ?"

"चाचाजी देखेंगे। ज़रूरत पड़नेपर खुद भी चले आया करेंगे।"

सुरमाने और कुछ न पूछा। चारुने कहा—"अच्छा, जो बात हो रही थी, उसके विषयमें क्या कहती हो ?"

"अच्छा ! मन्दाके व्याहकी बात ! हां,उसे तो मैं ही लूंगी।"

"फिर इसी महीनेमें व्याह करना होगा।"

"क्या करूंगी, लाचारी है। कन्या-पक्ष राज़ी है न ?"

"ज़रूर। ऐसा लड़का पाकर भी कौन राज़ी नहीं होगा ? तब यह बतलाओ कि कन्या-पक्षवाले वर-पक्षवालेके पास व्याहके दिन-बार और लेन-देनके बारेमें ठीक-ठीक करनेके लिये किस दिन आयें ?"

सुरमाने हंसकर कहा—"वर-पक्षके मालिक तो मेरे पिता हैं। मैं उनसे जाकर सब बातें कहूंगी। तुम अपनी ओरसे देवेन्द्र-बाबूको उनके पास भेज देना। लेन-देनकी क्या बात है ? मैं लड़कीको चाहती हूं। लड़का तुम्हारा ही है। बोलो, लड़कीको मुझे दोगी न ?"

चारु हंसने लगी ।

इसी समय मिश्रजी (रसोइया) की गोदमें चढ़े हुए अतुल बाबू आ पहुंचे । उन्होंने रोते-रोते नालिश की कि पाजी बन्दर अतुलसे भुने हुए चने खानेपर भी मेरी हाथी-दांतकी सुन्दर छड़ी लेकर भाग गये, मिश्रजी या लछुमिनियाने कुछ भी नहीं किया। सुरमाने उसे बहुत ढाढ़स देकर समझाया कि इन पाजी बन्दरोंकी पूंछ काटकर तेरे ससुरके जोड़ दी जायेगी,तभी इसका बदला पूरा होगा ।" यह सुन अतुलको बड़ा धैर्य हुआ ।

मिश्रजीने कहा—"माजी अब चलनेमें और कितनी देर है ?"

"अब देर नहीं है ।"कहकर सुरमा उठ खड़ी हुई । लाचार चारु भी उठी । सुरमाने कहा—"अब मुझे कन्या-पक्षवालोंकी राय कैसे मालूम होगी ?"

"मैं कल मिश्रजीके हाथ चिट्ठी भेजूंगी । अब इस तरह बार-बार तो मिलना होगा ही नहीं । वे दिल्लगी करते हैं कि यह तीर्थ तो तुम्हारे लिये महातीर्थ हो रहा है ।"

सुरमाके गालोंपर सुर्खी छा गयी । उसने अपनी उदासी छिपाते हुए हंसकर कहा—"तुम भला-बुरा नहीं समझती, पर वे तो समझते हैं, इसलिये कहा ही चाहें । तीर्थ करने आयी हो, कहां तो दोनों मियां-बीबी इधर-उधर दर्शन करने जातीं, कहां तुम जीजीके लिये दौड़ी फिरती हो !"

चारु शर्मा गयी । हंसती हुई बोली—"ठीक है, पर मैं उस तरह राह-राह घूमना पसन्द नहीं करती ।"

"कल ज़रा मन्दाको भी भेज देना, मैं उससे दो-चार बातें करूंगी।"

"क्यों,जीजी ! मेमोंकी तरह लड़कोकी राय पूछोगी क्या ?"

"हां।"

"नहीं, उससे पूछना नहीं होगा।"

"तुम्हारा माल खरा है, इसीलिये तुम्हें कोई डर नहीं है, पर मुझे कुछ खटका है। भेज देना—समझी ? मैं उसे ज़रा पिताजी-को दिखाऊंगी।"

"यदि वह पिताजीको पसन्द नही हुई ?"

"इस बारेमें तुम सोच-फ़िक्र न करो।"

सवेरे ही सुरमाके पास चारुकी चिट्ठी आयी कि स्वामीकी राय हो गयी है; पर वे कहते हैं कि इसी महीनेमें ब्याह कर देना होगा। उसी दिन तीसरे पहर अतुलके साथ मन्दा घूमती-फिरती आ पहुंची। आज अतुल उमाको देखते ही उसके पास चला गया; पर फिर तुरत ही मन्दाके पास चला आया। मन्दा उमासे बातें करने गयी तो देखा कि वह न जाने क्या बुन रही है। उसे अनमनी-सी देखकर मन्दा धीरेसे खिसक आयी। सुरमाने ही उसे उमाके पास भेजा था, इसलिये उसे तुरत लौटते देख सुरमाने मलिन हसी हंसकर कहा—"मालूम होता है कि इस समय उस पगलीको बातें करना अच्छा नहीं लगा। मन्दा ! वह तुम्हें कैसी मालूम पड़ती है ?" मन्दा सङ्कोचमें पड़ गयी—कुछ उत्तर न दे सकी। सुरमा समझ गयी—बोली—"इसमें लज्जाकी

क्या बात है ? मेरा स्वभाव पड़ गया है कि लोगोंसे ऐसा सवाल पूछ बैठती हूं। मैं तुम्हें अपनी ही लड़की समझती हूं, इसीसे ऐसा पूछ रही हूं। वह लड़की कैसी है ?"

मन्दाने मृदु स्वरसे कहा—"बड़ी सरल है और..."

"और क्या ?"

"बड़ी अल्हड़ है। उसे अभीतक दुनियाका कुछ ज्ञान नहीं है।"यह कह मन्दाने सकुचायी-सी होकर सुरमाकी ओर देखा। उसने सोचा कि कहीं मेरी इस बातसे वह असन्तुष्ट तो नहीं होगी, परन्तु सुरमा असन्तुष्ट नहीं हुई, बल्कि एक लम्बी सांस लेकर बोली—"मैं तो भगवानसे यही मनाती रहती हूं कि वे उसे सदा ऐसी ही अल्हड़ बनाये रक्खें।"

मन्दाकिनी कुछ न बोली।

क्षण-भर बाद सुरमाने कहा—"सुनो, मन्दा ! मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हू ।"

मन्दाकिनी सुरमाको ओर टुकुर-टुकुर देखने लगी। सुरमाने कहा—"एक लड़का है, जो नातेमें मेरा चाचा लगता है। मैं उसीके साथ तेरा व्याह कर देना चाहती हूं। तुम्हारी बुआ और फूफा भी राज़ी हैं। अब तुम अपनी राय बतलाओ।"

मन्दाकिनी शर्मा गयी, उसके मुंहसे एक बात भी नहीं निकली। तोभी जब सुरमा बार-बार उससे एक ही सवाल करने लगी, तब लाचार बोल उठी—"मुझसे क्यों पूछती हैं ? मैं उन लोगोंकी मर्जीके ख़िलाफ़ थोड़े ही कुछ करूंगी।"

"वे तो तुम्हारा व्याह करके ही छुट्टी पा जायेंगे; पर उसके बाद तो सारा जीवन तुम्हें ही बिताना होगा। इसीसे मैं तुम्हारी राय पूछती हूं।"

स्थिर नेत्रोंसे सुरमाकी ओर देखती हुई मन्दा मृदु कण्ठसे बोली—"आप कहती हैं कि व्याहके बाद जीवनका बोझ मेरे ही सिर आ पड़ेगा; पर यदि आप मुझे उस भारके योग्य ही नहीं समझतीं, तो फिर मुझसे क्यों पूछती हैं?"

सुरमाने स्नेहपूर्ण कण्ठसे कहा—"बेटी, यदि मैं तुम्हें अयोग्य समझती, तो क्यों तुम्हें चाहती? मेरा मतलब यह है कि यदि मैं तुम्हारे योग्य पात्र न दे सकी, तो क्या होगा?"

मन्दा थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद वह लज्जासे लाल मुंह किये बोली—"मुझे आपकी बात सुनकर आश्चर्य होता है। बुआ कहती हैं कि मैं ही किसी योग्य नहीं हूं—मेरी तरह—" वह और कुछ न कह सकी। चुप हो रही। सुरमा समझ गयी और स्नेह-भरे स्वरमें बोली—"तुम्हारे फूफाने दूसरी जगह सम्बन्ध करना चाहा था। हो सकता है, वह लड़का प्रकाशसे अच्छा हो, तुम उसको पाकर अधिक—"बात काटकर मन्दाने कहा—"क्या आपने नहीं सुना कि वे तीन-चार हज़ार रुपये मांग रहे हैं? वे बिना इतना रुपया गिनाये मुझसी लड़कीके साथ अपने लड़केका व्याह न करेंगे।"

"रुपये देनेको तो तुम्हारी बुआ और फूफा तैयार ही हैं।"

मन्दाने अवनत मुख और विजड़ित कण्ठसे कहा—"वे भले

ही तैयार हों; परन्तु मुझे ही अच्छा नहीं लगता। उन लोगोंने मुझे पाला-पोसा है, इसीका उनको यह दण्ड दिया जा रहा है। क्या ऐसा कोई नहीं है, जो उनकी तरह मुझे आश्रय देनेको तैयार हो ?"

क्रमशः मन्दाका अस्फुट कण्ठ बन्द हो गया। सुरमाने उसे अपनी गोदमें ले, स्नेह-भरे कण्ठसे कहा—"मैं आशीर्वाद करती हूं कि तुम प्रकाशको पाकर सुखी हो। वह भी तुम्हें पाकर सुखी हो, शान्ति पाये। वह भी अभीतक एकदम भोला-भाला लड़का है—संसारका कुछ हाल ही नहीं जानता। यदि वह तुम्हें नहीं पहचान सके, तो तुम उसको आश्रय देना, प्रेम करना और सम्पद्-विपद् सभी दिनोंमें मान-अभिमान त्यागकर उसकी चिरसङ्गिनी बनी रहना।"

मन्दाने सुरमाको प्रणाम कर उसके पैरोंकी धूल अपने सिरपर चढ़ायी। सुरमाने मन्दाकी ठुड्डी पकड़कर उसकी अंगुली हाथमें ले, चूम ली और प्रेम पुलकित स्वरसे बोली—"चलो, मेरे पिताको प्रणाम कर आओ।"

उस समय शाम हो गयी थी और राधिका-बाबू टहलने जानेकी तैयारी कर रहे थे। मन्दाकिनीको प्रणाम करते देख बोल उठे—"यही लड़की है ? वाह ! बड़ी सुन्दर लड़की है !"

सुरमाने पूछा—"आपको कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

राधा-बाबूने कहा—"वाह ! आपत्ति कैसी ? हां, काम बड़ी जल्दीमें हुआ। खैर, क्या किया जायेगा ? कह दो कि कल उधरसे कोई आकर बातचीत पक्की कर जाये।"

जिस घरमें अपनी लड़की .देकर वे कन्याका दुःख देख-देखकर पछता रहे हैं, और अपना अपमान समझ रहे हैं, वे ही लोग अबकी अपनी लड़की देनेके लिये उनके सामने सिर झुकाने आ रहे हैं, यह सोचकर राधिका-बाबूके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। और सुरमाने सोचा कि यदि विधाता और कोई दुर्घटना न घटाये, तो बेचारा प्रकाश अवश्य ही किसी दिन सुखी हो जायेगा।

दोनों ओरकी बातें पक्की हो गयीं। दिन ठीक हो गया। हां, इस मामलेमें देवेन्द्र आगे बढ़कर सब काम कर रहा था; क्योंकि न जाने क्यों अमरको ससुरसे मिलनेमें भी बड़ी शर्म मालूम होती थी। क्रमशः दिन निकट आ पहुंचा। केवल जिसका विवाह है, वही अबतक नहीं आया है। उसने राधिका बाबूको पत्र लिखा, "अभी मेरे हाथमें बहुत काम है। पहले आना तो मुश्किल है। हां, जिस दिन ब्याह होगा, उसी दिन सुबहकी गाड़ीसे वहां पहुंच जाऊंगा।"

सुरमाने उमासे कुछ भी नहीं कहा। परन्तु और-और लोगोंके मुंहसे उमा यह समाचार सुन चुकी है; यह बात उसे मालूम थी। इसीसे वह उमाकी नज़र बचाकर कभी-कभी उसके चेहरेको ओर बड़े ग़ौरसे देखा करती थी। उमा पहलेसे भी अधिक चुप्पी साधे रहती है; वह इस समय बड़ी दुर्बल और दुःखित मालूम होती है। घरमें ब्याहकी धूमधाम है, दूल्हे प्रकाशका नाम सबकी ज़बानपर चढ़ा ही रहता है, इसी

लिये शायद वह ज़्यादातर घरके कोनेमें ही बैठी रहती है। वह चाहती है कि प्रकाशका नाम उसके कानोंमें न पड़े। उसके हृदयमें इतना बल नहीं है कि बार-बार उसका नाम सुनकर जो जलन होती है, उसे चुपचाप सह ले। मानों उमाकी गृहस्थी दुवारा उजड़ रही है। न मालूम प्रकाशके आनेपर इसकी क्या अवस्था होगी, यही सोचकर सुरमा बड़ी चिन्तामें पड़ गयी।

ब्याहको अब केवल एक दिन बाक़ी है। सुरमा पिताके पास धरना दे बैठी। बोली—"बहुतसे जान-पहचानके आदमी वृन्दावन जा रहे हैं। दो दिन बाद वहां बड़ा भारी पुण्य-योग है। मैं भी दर्शन करनेके लिये जाना चाहती हूं।" उसके पिता तो यह बात सुनते ही अकबका उठे। उन्होंने कहा—"वाह! प्रकाशके ब्याहको अब केवल एक ही दिन रह गया है। ऐसे समय तुम्हारा .सा प्रस्ताव है तुम्हारे बिना यहांका काम कैसे चलेगा?" सुरमाने उन्हें समझाना शुरू किया कि यह कोई लड़कीका ब्याह तो नहीं, जो बिना रहे काम नहीं चलेगा।? अभी यहां तो कुछ अधिक धूमधाम होती नहीं, घर जाकर ही वधूकी पाकस्पर्श आदि रस्में होंगी। आपलोग कल जाकर ब्याह करा आइये, जबतक घर जाना होगा- तबतक मैं लौट ही आऊंगी। यदि न भी आ सकूं, तो आपलोग चले जाइयेगा। मेरे साथ भवचरण-भैया और बिन्दो दाई रहेंगी। हमलोग भी जहांतक हो सकेगा, जल्द ही घर पहुंच जायेंगे।

इतना निकट आकर भी यह पुण्य-योग हाथसे जाने देना तो बड़े दुःखकी बात है। ऐसी-ही-ऐसी बहुत-सी बातें उसने पिताको सुझायीं। तोभी मालिकने नहीं माना। तब सुरमाने उन्हें समझाना शुरू किया कि मुमकिन है कि मेरी सौत व्याहके दिन मुझे बुलाने आये, फिर त मुझे मुलाहिजेमें आकर जाना ही पड़ेगा। इसकी अपेक्षा तो पहले ही खिसक जाना कहीं अच्छा है। इस युक्तिको सुनकर राधिका-बाबू उसे जाने देनेको तैयार हो गये। उनके एक कर्मचारी भवचरण, एक दरवान और बिन्दी दाईने बड़ी उदासीके साथ गठरी-मोटरी बांधी। उमाने भी अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर यह तैयारी होती देखी; पर मुंहसे कुछ भी न बोली। यह निश्चय हो गया कि आज रातको गाड़ीसे ये सबलोग जायेंगे और कल सवेरे प्रकाश यहां आयेगा। कल ही रातको उसका विवाह होगा।

सुरमाने चारुके नाम एक पत्र लिखकर भेज दिया। उसमें उसने लिखा—

"चारु!

आश्चर्यमें न पड़ना। तुम जानतो हो कि मैं प्रकाशको कितना मानती हूं; तोभी कई अनिवार्य कारणोंसे मुझे ऐसा करना पड़ा। और लोग चाहे जो सोचें, तुम कुछ मत ख़याल करना। मैं समझती हूं कि प्रकाश भी इससे दुःखी

नहीं होगा; क्योंकि वह मुझे अच्छी तरह जानता है। वृन्दावनसे लौटनेपर मैं तुमसे मिलकर ही घर जाऊंगी।

तुम्हारी, जोजी।"

वह एक चिट्ठी प्रकाशके नाम भी लिख गयी। उसमें उसने लिखा—

"प्रकाश!

कल तुम्हारा व्याह है और आज मैं वृन्दावन जा रही हूं। व्याहकी धूमधाम ख़तम हो जानेपर ही मैं तुमसे मिलूंगी। जज फांसीका हुक्म देता है सही; पर ख़ुद किसीको फांसी-पर लटकते देखने नहीं जाता। दूसरा कारण भी तुम समझ ही गये होगे। कहीं उसके दिलको गहरी चोट न लगे, इसीलिये मैं उसे लेकर भाग रही हूं। मैं तुम्हें प्रतिज्ञापर डटे हुए देखकर बहुत ही प्रसन्न हूं। मैं यह नहीं समझती थी कि तुम इतनी जल्दी तैयार हो जाओगे। ईश्वर तुम्हारा अपराध क्षमा करेंगे। उनके आशीर्वादसे जिसे तुम लोहेका तौक़ समझकर गलेमें डाल रहे हो, वही फूलकी माला बन जायेगी। मैं जानती हूं कि तुम मुझे इस विवाहमे ख़ुशियां मनाते नहीं देखकर सन्तुष्ट ही होगे। इसी भरोसेपर मैंने सबके सामने यह निन्दनीय काम किया है। मैं ईश्वरसे यही प्रार्थना करती हूं कि वे तुम्हें सुखी करें, शान्ति दें।"

इकतीसवां परिच्छेद

अन्तिम राम-राम

प्रकाश और मन्दाकिनीके व्याहकी धूमधाम मिट गयी।

देवेन्द्रने अमरसे कहा—"अव यहां किसलिये टिके हो? चलो, घर चलें। यहांका हवा-पानी वहुत ले चुके। कहीं वदहज़मी न हो जाये।"

अमरने कहा—"क्यों वदहज़मीके कुछ लक्षण देख रहे हो क्या?"

"सो तो नही देखता। इसीसे तो डर होता है कि कहीं ज़मींदारी वोंद एकदम दमामी वन्दोवस्त न कर वैठे।"

"सो तो अच्छा ही है। और देखो, चारुकी तवीयत भी यहां विलकुल वहाल हो गयी है।"

"सो तो है; पर क्या इसीलिये अव देश लौटकर जाओगे ही नहीं?"

"एक वार तो ज़रूर ही जाऊंगा। इसके वाद सव वन्दोवस्त करके एक वार काम-काजी आदमी वननेकी चेष्टा करूंगा?"

"रहने भी दो। काम-काजी आदमी वनना सवके वूतेकी वात नहीं है। कम-से-कम उसका तो निकम्मा ही रहना अच्छा, जिसके ज़रासी सर्दी लगते ही सिरमें गुलूवन्द लपेटनेके लिये तीन नौकरोंकी ज़रूरत हो।"

"गुलूबन्द बांधनेवाले नौकर भी साथ रहेंगे और काम-काजी भी वना जायेगा।"

"आरामसे पड़े-पड़े रहा नहीं जाता?"

इसी समय चारु भी वहां आ पहुंची और यह बात सुनकर बोली—"पहले जीजीको आने दीजिये, इसके बाद कहीं जानेकी बात कहियेगा। वे आकर मिलनेकी बात कह गयी हैं।"

अमरने तानेके तौरपर कहा—"उसके आनेकी राह देखता हुआ कौन बैठा रहेगा?"

चारु—"इससे क्या इज़्ज़त घट जायेगी?"

अमर—"तो क्या बढ़ जायेगी?"

चारु—"बेइज़्ज़ती ही क्या होगी?"

अमर—"मैं तुम्हारे साथ बहस नहीं कर सकता। तुम्हारी जबतक इच्छा हो, ठहरो। सिर न झुकाओ।"

इसी समय मिश्रजीने आकर कहा—"एक चिट्ठी आयी है।"

अमरने हंसकर कहा—"लो, समाचार आ गया।"

"रहने दीजिये, दिल्लगीका काम नहीं है।" यह कह चारु चिट्ठी पढ़ती, गम्भीर मुंह बनाये, उठकर जाने लगी। अमरने पुकारकर कहा—"अरे, क्या मामला है, कुछ सुनाओ भी तो। मुझसे क्या कोई सरोकार ही नहीं है? बोलो,किसकी चिट्ठी है?"

"आपको इससे क्या काम है?"

"अरे, सुनो भी तो।"

"मैं नहीं सुनना चाहती। मिश्र! जाकर जल्दीसे एक गाड़ी ले आओ।"

"गाड़ी क्या होगी ? कहां जाना होगा ?"

"समधीके यहां जाना होगा।"

"समधीके यहां ? नये नातेकी ओर तो बड़ा अनुराग है!"

"क्यों न हो ? पुराना नाता तो टूट ही गया, अब तो नया नाता ही जोड़ना होगा।"

अमर चुप हो गया और एक किताब पढ़ने लगा। सुरमाने चारुको लिखा था कि यदि तुम आओ, तो बड़ा अच्छा हो। घरपर सिर्फ़ मैं ही हूं और मेरे साथ उमा, नौकर और एक दाईके सिवाय और कोई नहीं है। मैं भी दो-तीन दिनमें घर चली जाऊंगी। अमरनाथने चारुके जानेमें बाधा नहीं डाली।

भेंट होनेपर पहले तो दोनों ब्याहके ही बारेमें बातें करती रहीं। चारुने बड़ी उदासीके साथ कहा—"मैं देखती हूं कि इस शादीसे प्रकाश-चाचा प्रसन्न नहीं हैं। मैंने तो उनके मुंहपर हंसी देखी ही नहीं, शायद लड़की उनके पसन्द नही आयी।"

सुरमाने कहा—"पागल है!"

चारु—"लेकिन जीजी! मन्दा बड़ी निर्मोही लड़की है। यहांसे जाते समय ज़रा रोयीतक नही—सिर्फ़ अतुलको गोदमें लेकर चूमा। मुझे प्रणामकर केवल सिर झुकाये खड़ी रही, एक बात भी नहीं बोली।"

सुरमाको यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने बात बीचमें ही काट दी और कहा—"मैंने तो सोचा था कि तुमलोग भी घर चले गये होगे।"

"वाह ! तुम्हींने तो ठहरनेको कहा था । तुम कब आयीं ?"

"आज ही सुबहकी गाड़ीसे ।"

"घरपर जब सब रीति-रस्में हो चुकेंगी, तभी आओगी क्या ? तीन-चार दिनमें आनेको कह गयीं, फिर इतनी देर कहां लगा दी ?"

"क्या करूं ? तीर्थमें जानेपर फिर जल्दी लौटना कैसे हो सकता है ? बहूका पाकशाला-प्रवेश तो तीन-चार दिन हुए कि हो चुका । पिता खूब नाराज़ हुए होंगे ।"

"अच्छा, जीजी ! अबकी बार तो मन्दाको जल्द भेज देना, फिर बुलवा लेना ।"

सुरमाने कुछ सोचकर कहा,—"प्रकाश ताहिरपुरमें एकदम अकेला रहता है । छः महीने बाद वह वहांसे आयेगा । उसी समय तुम मन्दाको बुलवा लेना । मन्दा भी तो अभी कोई नादान लड़की नहीं है । बड़े आरामसे रहेगी—कोई घबड़ानेकी बात नहीं है ।"

"हां, सो तो है" कहकर चारुने एक लम्बी सांस ली ।

उमा चुपचाप बैठी हुई थी—धीरेसे उठकर दूसरे घरमें चली गयी । चारुने सुरमासे कहा—"जीजी ! उमा आजकल ऐसी क्यों हो गयी है ?"

सुरमा ज़रा चञ्चल हो उठी । कम्पित कण्ठसे बोली—"कैसी हो गयी है ?"

"बड़ी गम्भीर हो गयी है । हंसमुखपना तो एकदम इससे बिदा हो गया—न जाने इसके मनमें कौनसा सोच पैठा हुआ है ।"

सुरमाने गम्भीर भावसे कहा—"भगवान्‌ने लड़कपनमें ही इसके कलेजेपर जो चोट पहुंचायी है, उसे ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों यह अनुभव किया ही चाहे, यह बात क्या तुम समझती नहीं हो?"

चारु चुप हो रही; देखते-देखते उसकी आंखें भर आयीं। उसने पूछा—"अब तुम यहां के दिन और रहोगी?"

सुरमाने कहा—"तुम्हीं कहो न, कबतक रहूं?"

"क्या मेरे कहनेसे रहोगी? क्या मेरे भाग्य फिर ऐसे खुल गये?"

"पिताजी तो नाराज़ होते ही होंगे, अब आज गयी तो, या दो दिन बाद गयी तो—बात तो एक ही है।"

"अच्छी बात है, तो चलो, कल रामनगर देखा जाये। मैंने भी अभीतक रामनगर नहीं देखा है।"

सुरमाने कहा—"जा तो सकती हूं, लेकिन—"

"लेकिन क्या?"

"अच्छा, पहले तुम घरपर जाकर सलाह कर लो, फिर मुझे ख़बर भेजना।"

"जीजी! नया मकान ख़रीदा गया है। तुमने सुना है कि नहीं?"

"नहीं, तुम्हारे ही मुंहसे सुन रही हूं। कहां ख़रीदा गया है?"

"अस्सी-घाटपर, चलो न, किसी दिन देख लो।"

"पहले रामनगर तो चलो, पीछे देखा जायेगा।"

दूसरे दिन रामनगरकी सैर तो हुई; पर अमरनाथ नहीं गया। देवेन्द्र ही सबके साथ गया। चारुने इसके लिये सुरमासे बहुत कुछ बहाने किये। सुरमाने हंसकर कहा—"मैंने इसीलिये तो कल 'लेकिन'की बात कही थी।"

"क्यों? वे कुछ जेठ तो नहीं; जो तुम उनके सामने जाते हुए शर्माओगी।"

"इस समय तो नाता उससे भी बढ़कर हो गया है।"

चारुने झुंझलाकर कहा—"मैं यहांतक नहीं समझती थी।"

सुरमाने मन-ही-मन कहा—"तुम भला कैसे जानोगी!"

दो दिन बड़े आनन्दसे कट गये। दोपहरके समय जब चारु अपने लड़के और लड़कीके साथ सुरमाके पास आती, तब सुरमाकी मरुभूमिमें मानों पानीकी फुहार पड़ जाती थी। इसके पहले तो चारुका साथ इतना अच्छा नहीं मालूम होता था। यह ऐसा मालूम होता था, मानों मरनेके पहले प्राण-पणसे जीवनके आनन्द-विन्दुका उपभोग करना हो या मरुभूमिके यात्रीका प्राणापणसे जलसञ्चय करना हो या बुझनेके पहले दीपकका भभक कर जल उठनेका उद्दीप्त आग्रह हो। मन्दाके लिये रोते-रोते अतुलने उमाको ही जीजी मान लिया; परन्तु इस जीजीको नाकमें बुलाक और हाथमें चूड़ियां न होनेसे उसे न जाने कैसा मालूम होता था। चारुने हंसकर कहा—"अरे, पागल! यही तो तेरी पुरानी जीजी है। तू इसे इतनी जल्दी भूल गया?"

सुरमाने कहा—"उसको वह दीदी इसीमें मिल गयी है।" उमा सिर झुकाये धीरेसे मुस्कुरा दी। चारुने कहा—"उमा! नया मकान लिया गया है, देखने चलेगी?" उमा सुरमाकी ओर देखने लगी। चारुने कहा—"मांकी ओर क्या देखती है? मैं क्या तेरी कोई नहीं हूं?" उमा फिर मुस्कुराती हुई बोली—"मैंने यह तो कहा नहीं कि नहीं जाऊंगी।"

"बोलो न जीजी! चलोगी या नहीं?"

"कब चलूं?"

"कल ही अच्छा दिन है—कल ही गृहप्रवेश भी होगा। हम सबलोग जायेंगे। वहीं खाना-पीना भी होगा। मैं तुम्हें निमन्त्रण किये जाती हूं। नये समधीके घर आना ही होगा। समझीं?"

सुरमाने चारुके गालमें अंगुली गड़ाते हुए कहा—"तूने तो बहुत बढ़-बढ़कर बातें करना सीख लिया है?"

"बिना बोले रहा जो नहीं जाता!"

"मैं चल सकती हूं, पर कल ही रातको मुझे घर लौट जाना है, इसलिये कब जाऊं, यही सोच रही हूं।"

"कल रातको न जानेवाली हो? सवेरे चली आओ। क्या दोदिन ठहरोगी नहीं? क्या आज ही अन्तिम राम-राम है? क्या फिर कभी देखा-देखी नहीं होगी?"

"क्या यही अन्तिम राम-राम है?" यही बात बार-बार सुरमाके कानोंमें गूंजने लगी। शायद यही अन्तिम राम-राम

हो। फिर दो-एक आनन्दकी—सुखकी—स्मृति साथ ले जानेमें क्या दोष है? मेरा सङ्कल्प तो बदल नहीं सकता; तोभी क्यों सामान्य इच्छाओंको भी इस तरह दिलकी-दिलमें ही छिपाये लिये चली जाऊं? हो सकता है कि कभी ये वासनाएं कांटे-सी चुभने लगें। मुंहसे दो-दो बातें करना या आंखोंसे दो-चार बार देखना तो कुछ बुरा नहीं है। इससे क्या आता-जाता है? इसका प्रभाव के घड़ी रहता है? इससे न तो किसीका कुछ नफ़ा है, न नुक़सान। मेरा ही क्या नफ़ा-नुक़सान है? कुछ भी हानि-लाभ नही है, केवल क्रन्दनके शोणित-सागरमें शुभ्र हास्यका थोड़ा-सा फेन उफन जायेगा, आंखोंकी प्यास ज़रा बुझेगी और तुच्छ वासनाकी थोड़ी-सी तुच्छ सफलता होगी!

सुरमाको चुप देख चारुने पूछा—"क्या नही जाओगी?"

"चलूंगी; पर कहीं तुम लोगोंमें कोई खटपट तो नही होगी?"

"खटपट करनेमें तुम्ही बड़ी पक्की हो। दूसरोंको क्यों दोष लगाती हो? कल तुम्हारे लिये गाड़ी भिजवा दूंगी, ख़ूब सवेरे ही चली आना। उमाको भी लेती आना।"

"अच्छा।"

"क्या कोई आदमी साथ ले जानेके लिये भेज दूं?"

"तब तो मैं जाऊंगी ही नहीं।"

"ओह! तुम तो ज़रा सी दिल्लगीपर भी क्रुद्ध जाती हो! अच्छा, तो मैं जाती हूं। कहे देती हूं, कलकी बात पक्की रही।"

चारुने घर आकर अमरसे सब बातें कह सुनायीं। कल नये

घरमें खूब आनन्दसे खाना-पीना होगा, इसका लोभ भी दिखाया। अन्तमें बोली—"आप चुप क्यों हो रहे? कलके लिये कुछ प्रबन्ध नहीं करेंगे?"

"बोलो, क्या प्रबन्ध करूं? रोशनचौकी बजवाऊं या ताशा?"

"बस, इसीसे तो मेरा जी जल जाता है। जीजी न जाने कितने दिनपर घर आ रही हैं। कुछ तैयारी नहीं करेंगे?"

"हठात् यह मतिभ्रम कैसे हो गया?"

"आप ही पूछ लीजियेगा, मैं नहीं जानती।"

"तुम पगली हो, इसीसे झूठी मायामें फंसी हो।"

"वाह! उन्होंने अपने मुंहसे आनेको कहा है, फिर झूठी कैसी? आप घर छोड़कर कब भागेंगे?"

"यह बात क्यों पूछती हो?"

"आप भागते ही हैं; फिर लोग पूछें क्यों नहीं? वह तो इसी डरसे आना नहीं चाहती थीं।"

अमर झटपट कुछ कहने जा रहा था कि एकाएक रुक गया। चारुने कहा—"बोलिये, उस मकानमें कुछ प्रबन्ध कराना है या नहीं।"

"क्या करना होगा, बोलो। देवेन्द्र सब ठीक कर देगा।"

"आप खुद हाथ-पैर नहीं हिलावेंगे?"

"तुम जानती ही हो कि मैं एक नम्बरका आलसी हूं।"

रातको जब भोजनके बाद अमर खिड़कीके पास एक कोच-

पर बैठा हुआ किताब पढ़ते-पढ़ते सो रहा, तब निर्मल चन्द्र-किरणोंमें नहाती हुई पृथ्वी हंस रही थी। खिड़कीकी राह बड़े जोरकी ठंडी-ठंडी हवा आकर उसे कंपा देती थी, तोभी उससे चांदनीकी मज़ा लूटनेका लोभ नहीं छोड़ा जाता था। उसने सामने किताब खोलकर रख ली और एक टक बाहरकी ओर देखना शुरू किया। उसने देखा कि कङ्कड़-पत्थरके देशमें बड़े यत्नसे रोपे हुए फूलोंके पेड़ भी अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो रहे हैं। सारे दिन प्रचण्ड धूपमें झुलसते और धूल फांकते-फांकते वे इस समय चन्द्रमाकी उज्ज्वल किरणोंसे थोड़ी-बहुत शान्ति पा रहे हैं। थोड़ी ही दूरपर बसी हुई महानगरीका कोलाहल धीरे-धीरे मन्द हुआ जाता है, मानों कोई बड़ा भारी माया-जाल किसीके अलक्ष्य हाथोंसे धीरे-धीरे फैलाया जा रहा है!"

देवेन्द्र पास ही आकर बैठ गया और बोला—"क्या हो रहा है?"

अमरने चौंककर उसकी ओर देखते हुए कहा—"जो सदा होता है। तुम्हारा क्या हाल है?"

"अरे भाई! क्या पूछते हो? मैं तो इतनी देरतक सब इन्तज़ाम ठीक करनेमें लगा रहा, अब चारु हिसाबमें मीन-मेष निकाल रही है। कल उसकी जीजी आनेवाली है, इस ख़ुशीमें वह किसी दूसरेका दुःख-दर्द थोड़ी ही समझती है!" अमर यह बात सुनकर हंसने लगा।

देवेन्द्रने कहा—"भाई! तुम तो हंसोगे ही, क्योंकि कल

लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंके संयोगसे तुम्हें एकबारगी विष्णु-की पदवी प्राप्त होनेवाली है। सालोक्य, सायुज्य, और मोक्ष तीनोंका ठिकाना है। तुम भला क्यों नहीं हंसोगे?"

अमरने उसे धक्का देकर कहा—"धत्!" देवेन्द्र इससे विचलित नहीं हुआ। वह कहता ही चला गया—"यार! बात क्या है? कुछ बतलाओ तो सही। जहां उनके स्वागतकी इतनी तैयारियां होती हैं वहांसे वे भागी-भागी क्यों फिरती हैं? शायद वह कुछ—"

"यह बात तुम अपनी बहनसे ही पूछ लो। उससे जहां तुमने पूछा नहीं कि उसने तुम्हें तमाचा लगाया!"

'तब भेदकी बात तो कुछ बतलाओ।"

"किसी दिन बतला दूंगा।"

"मालूम होता है कि कल ही तुम्हारे महाकाव्य, नहीं-नहीं प्रहसनका उपसंहार होनेवाला है! उसके बाद तुम मुझे बतलाओगे! ख़ैर, यह तो बतलाओ यह काव्य—नहीं-नहीं, तुम्हारा प्रहसन दुःखान्त है या सुखान्त?"

"जाओ, जाओ, सो रहो। क्या तुम्हें नींद नहीं आती? मुझसे तो अब मारे नींदके आंखें खोलकर देखा भी नहीं जाता।"

"अच्छा तो लो, मैं जाता हूं।"

सवेरे सब लोग नये ख़रीदे हुए मकानमें आये। मिश्रजी गाड़ी लेकर सुरमाको बुलाने गये। चारुने चूल्हा-चक्की सम्हालते-सम्हालते दरवाज़ेपर टकटकी बांधे देखना शुरू किया। अमर
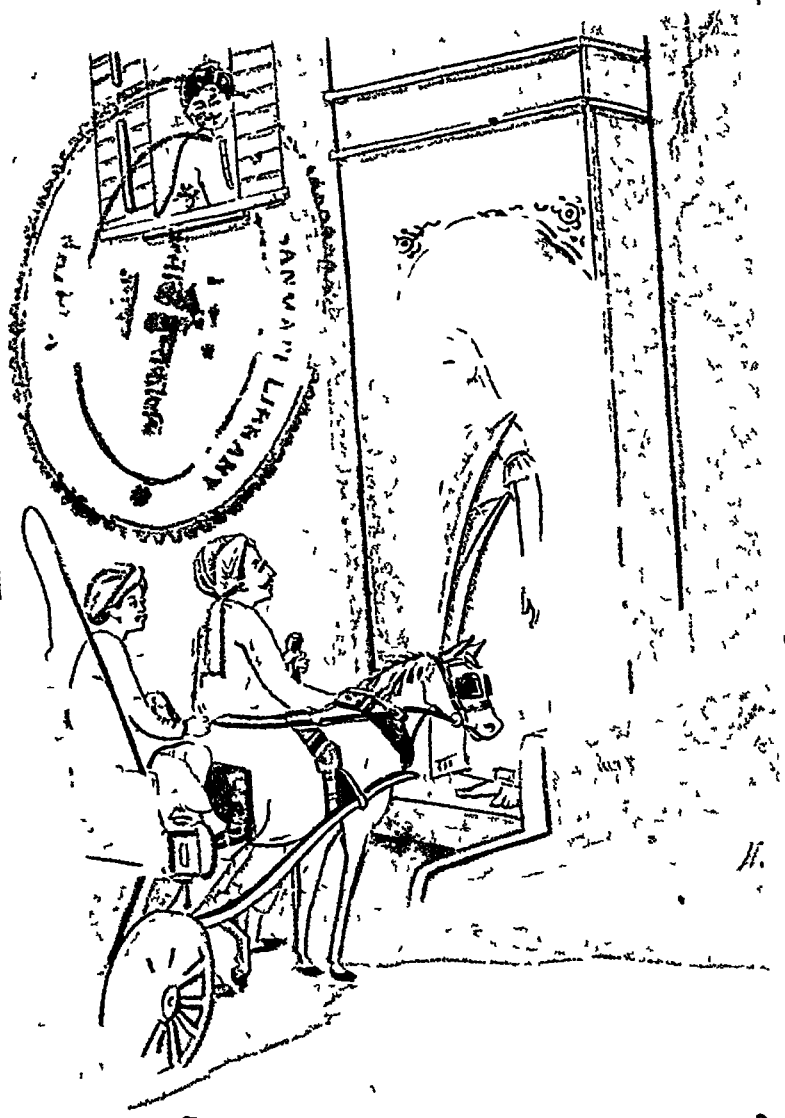
चारु चूल्हा-चक्की छोड़ दरवाजेपर टकटकी लगाये सुरमाकी प्रतीक्षा कर रही है। अमर खिडकीसे देख रहा है। घरघराती हुई गाड़ी आकर दरवाजेपर खडी हो गयी।

एक कमरेकी खिड़कियोंकी झिल-मिली हटाकर बाहर देख रहा था। रास्तेमें आती-जाती हुई जनता उसे चित्र-लिखित-सी मालूम हो रही थी। थोड़ी देरमें घरघराती हुई गाड़ी आकर दरवाज़ेपर खड़ी हो गयी। अमरने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। तोभी मानस-नेत्रोंके सम्मुख एक रेशमी कपड़े पहने, लट छिटकाये, पूजामें लगी हुई योगिनीकी मूर्त्ति चुपचाप आकर खड़ी हो रही। गाड़ीका दरवाजा खुला। भीतरसे लम्बी पगड़ी पहने हुए मिश्रजी बाहर निकले। देवेन्द्र चकित होकर उसके सामने आ खड़ा हुआ। मिश्रजीने कहा—"वहां तो कोई नहीं है। सब लोग देश चले गये। नौकरने यही चिट्ठी दी है।" देवेन्द्रने चिट्ठी खोलकर पढ़ी। उसमे लिखा था—

"प्यारी चारु!

क्षमा करना। मुझे आज ही घर जाना पड़ गया। ईश्वर करे, तुम्हारा गृह-प्रवेश सानन्द पार लग जाये। मुझे उसका समाचार लिख भेजना। मेरी ओरसे भी तुम्हीं लोग उसका आनन्द लूट लेना। इति शुभम्।

तुम्हारी—

जीजी।"

बत्तीसवां परिच्छेद
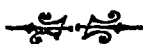
सोनेकी जञ्जीर

सुरमा कालीगञ्ज आ पहुंची। इतना लम्बा रास्ता उसने केवल अपने ही विचारमें पड़े-पड़े काट दिया। अब उसे ज़रा औरोंकी बातें सुनने और औरोंका भार लेनेकी इच्छा हो रही थी। अपराध कहां है, यह स्थिर न करनेपर भी गुप्त अपराधीकी अनुशोचनाकी भांति न जाने कौनसी बात उसे व्यर्थ ही दिन-रात दुःख दे रही थी। 'आग कहां है, यह मालूम न होनेपर भी, उसकी ज्वालाका अनुभव हो रहा है, यह जलन तो बड़ी ही विकट है!

घर आकर उसने देखा कि यहां भी वह अपराधिनी मान ली गयी है। समयपर न आनेसे उसके पिता उसपर नाराज़ हैं। पहले जैसा तै पाया था, उसीके मुताबिक़ प्रकाशके साथ ही उसकी नयी बहू भी ताहिरपुर भेज दी गयी है। पिताकी इस मामूली नाराज़ीसे सुरमाके मनमें भी थोड़ी देरके लिये दुःख हुआ था; पर उमाका मुंह देखकर वह उसे भूल गयी। उमाको दूर-ही-दूर रखकर उसने उमाको सन्तापसे बहुत कुछ बचा लिया, यह वह अच्छी तरह समझती थी। घरकी पुरानी दासी शशीकी माने आकर कहा—"वाह! घरमें इतना बड़ा यज्ञ हो गया और जिसके घरमें यह सब हुआ, उसीका पता नहीं! सब लोग अचम्भा कर रहे हैं कि यह मामला क्या है? अरे तीर्थ

करके पुण्य कमानेका क्या और कोई मौक़ा नहीं था ? बेचारी बहू अकेली उदास चुपचाप बैठी रहती और बार-बार मुझसे पूछा करती कि वे कब आयेंगी ? मैं कह देतो कि अब आया ही चाहती हैं, पर तुमको तो पुण्य लूटनेकी पड़ी थी—तुम क्यों आने लगीं ? बहू—"

सुरमाने उसकी बात काटकर दूसरी बात छेड़ दी, मानों मन्दाकिनीकी बात अब उसे सुहाती ही नहीं थी। शायद उसकी ओरसे जी एकाएक एकदम फिर गया था। सुरमाने सोचा कि मन्दाका क्या दोष है ? उसने तो मेरा दिया हुआ दान सानन्द और कृतज्ञ चित्तसे अपने सिरपर चढ़ा लिया है। फिर उसका क्या क़ुसूर है ? मन्दाने क्या अपराध किया, यह समझमें नहीं आनेपर भी सुरमाका मन न जाने क्यों उसकी ओरसे विमुख हो गया।

यह क्या समस्या है, यह समझमें आना मुश्किल है। इसी समस्यामें पड़कर सुरमा घबरा उठी। चारुको आनेकी आशा देकर भी वह अन्यायपूर्वक चली आयी, उससे मिलनेके लिये ठहरी भी नहीं। तोभी उसे इसके लिये पछतानेका कोई कारण ढूंढ़े नहीं मिलता था। कारण, उसने यह काम खूब सोच-समझकर ही किया था। थोड़ी देरके लिये उसके मनमें एक वासना हठात् प्रबल हो उठी थी, उसीके मोहमें पड़कर वह कुछ देरके लिये दुर्बल हो गयी थी। उसी मोहमें पड़कर उसने चारुके प्रस्तावपर हामी भर दी थी और अमरके दर्शन करनेकी इच्छा

की थी। पीछे उसने सोचा कि यह व्यर्थ है। उस लोभको छोड़कर सुरमा अपने मनमें बड़ी सुखी है। उसने जिसे जीवन-भरके लिये छोड़ दिया है, उसके साथ फिर मिलना कैसा? थोड़ी देरके लिये देखा-देखी करके या दो-चार बातें करके फिर उस सम्बन्धको क्षण-भरके लिये मनमें ले आनेकी क्या ज़रूरत है?

अपनी चञ्चलतासे वह ज़रा डर गयी थी। वह बार-बार यही सोचती थी कि मैं क्यों इस इच्छाको हृदयमें इस तरह उठने-बैठने देती हूं? इस क्षुद्र आशाकी क्षुद्र तृप्तिमें क्या सुख है—इसका फल ही क्या होगा? केवल ग्लानिके सिवा और कुछ भी नहीं। तो क्या मैंने जिसको छोड़ दिया है, उसके लिये पछता रहे हैं? सारे जीवनके लिये जो त्याग किया है, उसका क्या यही परिणाम होगा? सारे जीवनको विफल करके एक सामान्य बातके लिये मैं इतनी लालायित हूं, इससे बढ़कर लज्जाकी बात और क्या हो सकती है? यह दुर्बलता मेरे मनमें कहांसे चली आयी? इसीसे तो मैं डरके मारे भाग आयी।

ख़ैर, यह भय तो दूर हो गया। चारुके स्नेहके आगे तो मैं सदासे अपराध करती ही आयी हूं; फिर इस बारके अपराधसे उसकी मात्रा बहुत नहीं बढ़ेगी! सुरमा यह भलीभांति जानती थी कि चारु उसका यह अपराध पीछे क्षमा कर देगी; फिर वह क्यों दिन-रात, सोचके मारे दुबली हुई जाती थी? न जाने हृदयपर कौनसा बोझ पड़ा हुआ था, कि वह दिन-रात दुःखी रहती थी। उसने क्या अन्याय किया है, यह वह स्थिर नहीं

कर पाती थी, तोभी न जाने कौन उसे भीतर-ही-भीतर धिक्कार दे रहा था !

दो-ही-तीन दिनोंमें राधिका-बाबूका गुस्सा ठण्ढा हो गया, फिर सब काम पहले-ही-की तरह होने लगे। उमा भी शान्त-भावसे अपना पूजा-पाठ और घरके कामधन्धे करने लगी। राधिका-बाबू भी सब काम नियमपूर्वक करने लगे। सुरमाने भी अपने ऊपरके काम ज्यों-के-त्यों करने शुरू कर दिये। केवल हृदयके भीतर ही उथल-पुथल मची हुई थी। सवेरे सोकर उठते ही न जाने कौन-सी आशा उसके हृदयमें उठ खड़ी होती है। न जाने किसकी प्रतीक्षामें उसका मन सर्वदा बाहरकी ओर देखा करता है। क्रमसे दिन बीत जाता है। दिन-भरके काम-धन्धेसे छुट्टी मिलनेपर जब वह सोने जाती है, तब उसके बाहर-भीतर बड़ी श्रान्ति, बड़ी निराशा मालूम पड़ती है। ऐसा क्यों होता है? उसको तो अब कोई आशा करनेको चीज़ नहीं रह गयी। प्रकाशका विवाह हुए छः महीने हो चले ; पर इस बीचमें चारुने उसके पास एक भी पत्र नहीं लिखा। मन्दा यहां होती, तो कुछ-न-कुछ समाचार ज़रूर मिलता रहता। कभी-कभी वह सोचती थी कि मन्दाको कुछ दिनोंके लिये यहां बुलवा लूं ; पर कहीं उमाको कुछ दुःख न हो, इसी डरके मारे उसे बुलानेका साहस नहीं होता।

इसी बीच एकदिन राधिका-बाबूने कहा—"अब और कितने दिनोंतक गृहस्थीके जञ्जालमें रहूं। शरीर दिन-

छीजता चला जाता है। जी चाहता है कि अब जाकर काशीवास करूं। प्रकाशको लिख दूं कि यहां आकर रहे? ज़मींदारीका इन्तज़ाम ख़ूब अच्छा हो गया है। तुम यहां रहोगी, वह भी आकर यहीं सब कामोंकी देखभाल करता रहेगा।" सुरमाने कहा—"भला ऐसा भी कभी हो सकता है? मैं भी आपके साथ चलूंगी।" पिताने कहा—"बेटी! यह कैसी बात कही है? तुम क्या अभीसे ससांर-त्यागिनी बन जाओगी?" सुरमाको हंसी आयी कि मुझसे संसारसे क्या मतलब है! जिस वस्तुका अस्तित्व ही नहीं, उसका संग्रह ही क्या और त्याग हो कैसा?" परन्तु मनका भाव मनमें-ही छिपाकर बोली—"आपके सिवा मेरा इस संसारमें और कौन है?"

"तब इस बातकी प्रतिज्ञा करो कि मेरे न रहनेपर तुम फिर घर चली आओगी।" सुरमाको इस बातका कोई जवाब नहीं देते देखकर वे फिर बोले—"मैं केवल तुम्हारा और प्रकाशका मुंह देख रहा हूं कि तुमलोग मेरा नाम न डुबने दोगे। जब सन्तान होकर तुम्हीं बापका नाम डुबा दोगी तो फिर दूसरेसे क्या आशा की जा सकती है?" सुरमाने उनकी बात मान ली और काशी-यात्राकी तैयारी होने लगी।

प्रकाशके पास ख़बर भेजी गयी। वह अपनी स्त्रीको साथ लिये आ पहुंचा। सुरमा मन्दाको बड़े प्यारसे घरमें ले गयी; पर प्रकाश-से कुछ न कह सकी। प्रकाश भी अन्तःपुरसे सदा दूर-ही-दूर रहता। सुरमा इससे दुखी भी हुई और सुखी भी। उसने जब मन्दासे चारुका समाचार पूछा, तब वह कुछ भी न बतला सकी।

पहले चारुने काशीसे ही दो-एक पत्र मन्दाको लिखे थे; फिर कोई समाचार नहीं मिला। यह सुन सुरमा मुस्कुराती हुई बोली—"वाह! इतने ही दिनोंमें चारु तुम्हें एकदम भूल गयी क्या?" मन्दा सकुचाकर बोली—"शायद उन्हें पत्र लिखनेका समय नहीं मिलता होगा, अथवा उनकी तबीयत ठीक न होगी। उन लोगोंके दूर-दूर देशोंकी सैरके लिये बाहर जानेकी भी बात थी।"

अबकी यह बात छोड़कर सुरमाने मन्दाके सिरपर हाथ रख-कर कहा—"मन्दा! तुम्हें मैं याद आती थी या नहीं? अथवा मैंने तुम्हें स्नेहकी गोदसे हटाकर वनवास करनेके लिये भेज दिया, इसलिये तुम्हें मेरा नाम लेते हुए भी कष्ट होता था?" यही कहते-कहते सुरमाका गला भर आया। मन्दा उसके चरण छूकर कांपते हुए कण्ठसे बोली—"आप ऐसी बात कहकर क्यों मेरे सिरपर पाप चढ़ा रही हैं? मैं आपका स्नेह इस जीवनमें कभी नहीं भूल सकती।"

"यह तो मत कहो, मन्दा! मैंने तुमपर कौन-सा स्नेह प्रकट किया है?"

"आपने मुझे जो दिया है, वह मैंने इस जीवनमें और कहीं नहीं पाया। आपने ही मुझे ऐसा निश्चिन्त आश्रय दिया है—मुझे सुखी कर दिया है।"

सुरमा उसका हाथ पकड़कर बोली—"बेटी! सच कहना, क्या तुम सुखी हो? क्या प्रकाश तुम जैसे रत्नका मूल्य समझता है? तुम्हें प्यार करता है? क्या वह तुम्हें पहचान सका है?"

"आप ऐसी बातें न कहें। आप लोगोंने मुझे अपने चरणोंमें स्थान दिया है, फिर मुझे किस बातकी कमी है?"

"बेटी! इन बातोंसे मेरा मन निश्चिन्त नहीं हो सकता—मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकती। बोलो, वह तुम्हें प्यार करता है या नहीं?"

मन्दा सिर झुकाये धीरे-धीरे बोली—"माँ! आप जिनकी बात कह रही हैं, उन्हें अपने ही तन-बदनकी सुध नहीं रहती। आप ज़रा उनसे इस विषयमें सावधान रहनेको कह दें। वे आपपर देवताकी-सी भक्ति रखते हैं, आपकी बात कभी नहीं टालेंगे। फिर तो मुझे किसी बातकी चिन्ता ही नहीं है।"

मन्दाके कण्ठस्वरसे सुरमाको ऐसी एक पूर्णताका आभास मिला, जिससे वह स्तम्भित हो रही। मानों सचमुच उसे कोई अभाव नहीं था—किसी चीज़की ज़रूरत नहीं थी। सुरमा यह समझ न सकी कि इस नन्ही-सी लड़कीने क्योंकर इतना आत्म-विसर्जन सीख लिया कि इन्हीं चन्द रोज़ोंमें वह यह समझ गयी कि स्वामीके सुखमें ही उसका सुख है—उसके सुखका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यह अवस्था कैसे आती है? यह बात किस शिक्षाके द्वारा मनमें बैठ जाती है? इसके लिये कौन-सी साधनाकी आवश्यकता होती है? किसीने उससे यह नहीं कहा कि प्रेम—केवल प्रेम ही इस आत्मविस्मृतिका मूल है।

सुरमाने उसके दिलकी और भी थाह लेनेके इरादेसे पूछा—"क्या तुम्हारा जी बुआके लिये नहीं अकुलाता था?"

"ख़बर न मिलनेसे अकुलाता था।"

"ख़बर मिलती तो नहीं अकुलाता ?"

"शायद नहीं।"

"उन लोगोंके पास जानेकी इच्छा नहीं होती ?"

"पहले तो इच्छा होती थी।"

"अब क्यों नहीं होती, मन्दा ?"

मन्दा थोड़ी देर चुप रही। इसके बाद मृदुकण्ठसे बोली—"मेरे जानेसे वे अकेले पड़ जायेंगे, उनकी सेवा-टहल कौन करेगा ?"

"यदि कोई करे, तब ?"

"कौन करेगा ?" यह कह, मन्दाने उसकी ओर देखा। उस दृष्टिसे ही सुरमा समझ गयी कि मन्दाको इसका विश्वास नहीं होता कि उसकी बराबर प्रकाशकी सेवा-टहल करनेवाला कोई पृथ्वीमें है या हो सकता है। संसारभरपर इतना अविश्वास—ऐसा संदिग्ध-भाव कहांसे उत्पन्न होता है; कुछ यही सोचनेके लिये सुरमाने सिर झुका लिया।

क्रमसे काशी जानेका दिन पास आने लगा। घर-भरके लोग बड़े दुःखित हो रहे हैं, सभी रो रहे हैं; पर सबसे अधिक मन्दाको ही कष्ट हो रहा है। यह देखकर सुरमाने उससे बड़े प्रेमके साथ कहा—"क्यों बेटी! तुमने तो एकको ही अपना सारा प्रेम—समस्त स्नेह दे रखा है, उसकी ही सेवा-टहल तुम्हारा एकमात्र कर्त्तव्य है, फिर तुम क्यों रोती हो ?"

मन्दाने आंखोंके आंसू पोंछते हुए कहा "मैंने कभी अपनी मांको नहीं देखा। मुझे मालूम होता है कि आप ही मेरी मां हैं।"

मन्दाकी बात सुनकर सुरमाकी भी आंखोंमें आंसू आ गये। उसने झटपट आंखें पोंछ डालीं।

मन्दाने देखा कि जबसे मैं आई हूं; तबसे उमा मेरे पास आ-आकर भी न जाने क्यों उलटे पांव लौट जाती है। पहले मन्दाको भी बात करनेका साहस नहीं होता था। अन्तमें उसने एक दिन उमाके पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"क्या तुम मुझे एकबारगी भूल गयीं?"

उमा उसे भूली नहीं; परन्तु वह आजकल ऐसी डरपोक हो गई है कि आप-से-आप किसीसे बातें करने नहीं जाती। मन्दाकी इस स्नेह-सनी बातसे उसका भय दूर हो गया। उसने भी मन्दाका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—"नहीं बहन! मैं तुम्हें नहीं भूली। बोलो, तुम तो नहीं भूल गयी थीं?" मन्दाने स्नेहके स्वरमें कहा—"तुम्हारी और मांकी याद मुझे बराबर आती थी। क्या तुम भी काशी जा रही हो?"

"हां।"

"तुम क्यों नहीं यहां रहती?"

उमाने मृदुस्वरसे कहा—"बहन मुझसे माको छोड़कर नहीं रहा जायेगा।"

मन्दाने दुःखित होकर कहा—"तुम यहां हो, यही सोचकर

मैं ख़ुश हो रही थी कि तुमलोगोंके साथ सुखसे रहूंगी। जो हो, मुझे याद रक्खोगी न ?"

उमाने गर्दन हिलाकर स्वीकृति जतायी, कि हां, याद रक्खूंगी।"

विदाईके दिन सुरमाने एकान्तमें प्रकाशको बुलाकर पूछा—"प्रकाश ! आजकल कैसे हो ?"

"ख़ूब अच्छी तरह हूं।"

थोड़ी देर बाद प्रकाशने मृदु कण्ठसे पूछा—"और तुम-लोगोंका क्या हाल है ?"

"हम भी अच्छी तरह हैं। उमा बड़े आनन्दसे रहती है। काशी पहुचनेपर तो वह और भी आनन्दित हो जाती है।"

प्रकाशने सिर झुका लिया। बड़ी देर बाद बोला—"भग-वान्‌से मेरी तो यही प्रार्थना रहती है कि वह सदा ही सुखी रहे।"

"प्रकाश ! मैं भी ईश्वरसे यही मनाती हूं कि तुम सदा सुखी रहो।"

प्रकाशने ऊपर सिर उठाकर हंसते हुए कहा—"सुरमा ! मैं तो बड़े आनन्दसे हूं।"

सुरमाने देखा कि प्रकाशकी आंखें भर आयी हैं। उसने वेदना-विदग्ध कण्ठसे कहा—"मन्दाको बड़े प्यारसे रखना। उसे अमूल्य रत्न समझना। वह केवल तुम्हें सुखी करनेके ही लिये तुम्हारा मुंह जोहती रहती है। भगवान्‌ने तुम्हें बड़ी

अनमोल वस्तु दी है। उसे पहचानो और उसे प्यार करना सीखो।"

प्रकाशने सिर झुका लिया। बड़ी देर बाद बोला—"मैं जानता हूं कि वह सोनेकी ज़ंजीर है; पर तुमने उसे बड़े अयोग्य-को पहना दिया है।"

"नहीं, नहीं, मैंने तुम्हारे ज़ंजीर नहीं डाली है। तुम उसे किसी-न-किसी दिन ज़रूर ही पहचानोगे।"

प्रकाशने कहा—"बस, यही आशीर्वाद दो।"

तैंतीसवां परिच्छेद

देवताकी पूजा

रमा बड़ी आशा करके काशी आयी थी कि इस नूतनत्व-विहीन तिक्त बङ्ग-देशसे बहुत दूर चले जाने-पर किसी प्रकारके नवीन आनन्द, उत्साह और उत्तेजनाके आधिक्यमें पड़ते ही उसके जीवनको कड़ुआ बना देनेवाला यह क्लान्त-भाव एकबारगी दूर हो जायेगा। जहां नित्य नये उत्सव होते हैं, नयी उत्तेजना आती है, नये-नये ढङ्गसे देवताकी पूजा की जाती है, जहां पहुंचकर वे पति-पुत्र-हीना नारियां भी शान्ति पा जाती हैं जो संसारकी सभी प्रकारकी सार्थकताओंसे वञ्चिता

और हतभागिनी हैं, वहां पहुंचनेपर उसकी यह साधारण अशान्ति दूर होते देर नहीं लगेगी।

उसे छः महीने पहलेकी बातें याद आ रही थीं—उस समय काशी कितनी प्यारी मालूम होती थी, शायद उस सुखकी स्मृति जीवन-भर मनसे दूर नहीं होगी। सुरमाने आशा की थी कि मैं काशीमें ही अपनी सर्व-सार्थकता विसर्जित कर आयी हूं, वहीं जानेसे विश्वनाथजी अयाचित भावसे फिर मेरी गयी वस्तु लौटा देंगे। परन्तु वह कहां मिली? यहां आकर भी तो छः महीने हो चले, पर वह सुख, वह मादकता, इस बार कहां दिखाई देती है? सब कुछ मानों उलटा ही हो गया है। मानों अब यह काशी वह काशी नहीं है। वह पृथ्वीपरसे दूर होकर उसके गर्भमें जा छिपी है। जहां जानेपर उसे एक दिन ऐसा मालूम पड़ा था, मानों साक्षात् विश्वनाथके ही चरणोंमें आ पड़ी है, आज वहीं ऐसा मालूम होता है, मानों लोग व्यर्थ ही पत्थरपर ढेर-के-ढेर फूल और बिल्व-पत्र चढ़ा रहे हैं। यह सब पूजाकी तैयारियां, यह अर्घ्यरचना, पत्थरपर सिर पटककर व्यर्थ वस्तुकी पूजा करना किस कामका? एक दिन वह विश्वेश्वरके चरणोंसे भरे हुए हृदयके साथ अलग हुई थी और आज वह सारा हृदय शून्य करके पूजाकी डाली लिये द्वारपर खड़ी है; पर उसे यह नहीं मालूम पड़ता कि विश्वेश्वर कहां हैं।

सुरमाने सोचा कि औरोंका काशी आना तो ठीक है; पर मेरा ही आना व्यर्थ हुआ। पिता प्रति-दिन सवेरे ही उठकर एक

बड़ी-सी फूलोंकी डाली लिये नौकरके साथ-साथ सारी काशीकी परिक्रमा कर आते हैं। मन प्रसन्न होनेके कारण उनका नष्ट हुआ स्वास्थ्य उन्नति कर रहा है। उमा सुरमाके पास ही बैठकर पूजा करती है। सुरमा सोचती है कि उमाकी पूजा सार्थक है; क्योंकि वह सामने विश्वेश्वरको ही देखती है। इसीसे वह भी धीरे-धीरे स्वस्थ होती जाती है, मानों गरमीमें झुलसी हुई लता, वर्षाकी फुहार पड़नेसे हरी हो आयी हो। पूजाके बाद उसके मुखपर जो कभी-कभी तृप्ति झलकने लगती है, रह-रहकर वह जिस प्रकार हंसने लगती है, उसीसे सुरमा समझती है कि उमाका काशी आना सफल हो गया।

चारुसे भेंट हुए सालभर हो गया। इस बीच उसका कोई पत्र या समाचार सुरमाको नहीं मिला। वह मन्दाको पत्र लिखकर पूछना चाहती है; पर उससे पत्र नहीं लिखा जाता। चारु आदिको छोड़कर चली आनेके बादसे उसने कभी अपनी ओरसे अग्रसर होकर समाचार नहीं पूछा। आज क्यों भिक्षुककी तरह उसकी प्रत्याशा करे? इस कङ्गालपनकी क्या आवश्यकता है? वे जहां रहें, राज़ी-ख़ुशीसे रहें। जिनके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया, उनका समाचार वह कौन मुंहसे पूछने जाये? सुरमा अपना यह अहङ्कार अबतक किसी प्रकार नष्ट करनेको तैयार नहीं है। केवल रह-रहकर उसे विस्मय होता था। वह तो सदासे ही इसी प्रकारके द्वन्द्वके भीतरसे अपने निर्दिष्ट-पथपर चली जा रही है—यह देवासुर-संग्राम तो उसके हृदयमें

बहुत दिनोंसे जारी है—फिर आजकल वह इससे ऊब क्यों गयी है? हृदय भी जवाब दे रहा है और शरीर भी, घरके कामधन्धे अधिकतर उमा ही करती है। वह भी कभी-कभी कह उठती है—"मां, आजकल तुम्हें क्या हो गया है? तुम इतनी जल्द बात क्यों भूल जाती हो? तुमसे कोई काम क्यों नहीं हो पाता?' सुरमा हंसकर कह देती है—"मैं अब बूढ़ी हो चली, इसीसे मति बिगड़ गयी है।"

उमा कहती—"पश्चिममें आकर लोग मोटे-ताज़े हो जाते हैं, तुम ऐसी क्यों हुई जा रही हो?"

सुरमा उमाकी बातको तो हंसीमें उड़ा देती है; पर अपनी क्लान्तिको नहीं दूर कर पाती।

सुरमाका हाल उसके पितासे भी छिपा नहीं रहा। एक दिन उन्होंने सुरमासे कहा—"तुम आजकल ऐसी दुर्बल क्यों हो गयी हो बेटी! क्या तुम्हें कोई रोग हो गया है?" सुरमाने हंसकर कहा—"रोग? पिताजी! मुझे रोग क्यों होने लगा?"

"तब क्या यहांकी हवा तुम्हारे अनुकूल नहीं है?"

"ख़ूब अनुकूल है।"

"अनुकूल होती, तो ऐसा ही हाल होता? शरीरके साथ-ही-साथ तुम्हारा मन भी ख़राब होता जाता है। पहलेकी तरह ठीक-ठिकानेसे कोई काम नहीं करती, मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं। क्या और कहीं जानेसे तुम्हारी तबीयत बहलेगी। कहो, तो वहीं चलूं।"

सुरमाने लज्जित होकर कहा—"आप ऐसे घबरा क्यों रहे हैं? शरीर ख़राब हो रहा है तो क्या हुआ? दो-दिन बाद अच्छा हो जायेगा। इसके लिये इतनी चिन्ताका क्या काम है?"

राधिका बाबूने और कुछ नहीं कहा। परन्तु एक दिन वे सहसा पूछ बैठे—"सुरमा! तुमने अन्तिम बार ससुरालसे कालीगञ्ज आनेके लिये अपने आप ही मेरे पास पत्र लिखा था न?"

सुरमाने तनिक विस्मित होकर कहा—"आप यह बात किसलिये पूछ रहे हैं?"

राधिकाकिशोर-बाबूने ज़रा झुंझलाकर कर कहा—"योंही। मुझे ठीक याद नहीं आती, इसीसे पूछ रहा हूं। कई दिनोंसे मुझे यह ख़याल हो रहा है कि मैंने ही तुमको ससुरालसे ज़बर्दस्ती यहां बुलवा लिया है, तुम्हें बुलाने गया भी था; पर आज एकाएक मुझे याद आयी कि अन्तिम बार तुम्हींने मेरे पास पत्र लिखा था।"

सुरमाने मृदुस्वरसे कहा—"शायद आप यही सोच रहे हैं कि मैं आपके साथ रहकर सुखी नहीं हूं?"

"हां, बेटी! कभी-कभी मुझे यही ख़याल हो आता है। इससे मुझे कभी-कभी कष्ट भी होता है; क्योंकि तुम्हारे सिवा मेरा दुनियामें और कौन है?"

सुरमाको बड़ा दुःख हुआ कि बयासे क्या हो गया! सामान्य कारणसे भी—उसकी साधारण श्रान्तिसे भी उसके

पिताको इतना सोच हो रहा है। पिता और सन्तानका सम्बन्ध भी क्या समयके अनुसार इस प्रकार बदल जा सकता है? संसारमें क्या कहीं भी ऐसा कोई सम्बन्ध या स्थान नहीं है, जहां क्षण-भरके लिये भी अपने अधिकारकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती? जब विधिका दिया हुआ अधिकार भी नष्ट हो जाता है, तब और कौन स्वत्व चिरस्थायी हो सकता है?

सुरमाने अपनी उदासीको मन-ही-में दबाकर कहा—"आप जब ऐसा सोच रहे हैं, तब मुझे भी कहना पड़ता है कि मेरा और कौन माँ-बाप या भाई-बहन है? आपके सिवा मेरा ही इस संसारमें और कौन है?"

पिताने और कुछ नहीं कहा सही; पर बड़ी देर बाद उन्होंने एक लम्बी सांस ली। सुरमाने मन-ही-मन विचार किया कि अबकी न जाने वे क्या सोच रहे हैं! उसने मारे क्षोभके दांतों होंठ काटा। परन्तु वह यह नहीं समझी कि माता-पिताकी आंखोंसे सच्ची बातको छिपा रखना बड़ा कठिन काम है। उसके पिता-की अभिज्ञताने ही उसको कुछ समझा दिया। सुरमाने केवल यही सोचा—"लोग क्यों ऐसा ख़याल करते हैं? जिस सम्बन्ध-को मैं ऐसी आसानीसे तोड़ आयी हूं, उसे छोड़ देना क्या लोग इतना कठिन समझते हैं? इसीसे वे लोग अविश्वास करके मुझे इतना पीड़ित करते हैं। उसने यह नहीं सोचा कि इस बातसे वह अपनी चञ्चलता-प्रकट करती हुई अपने अहङ्कारके

विरुद्ध गवाही दे रही है। उसके मनमें यह बात नहीं आयी कि लोग चाहे जो कुछ सोचें-समझें, उससे क्या आता-जाता है? वह केवल यही सोचने लगी कि मैं किस प्रकार सबके सामने इसके विरुद्ध प्रमाण उपस्थित करूंगी। एक तो उसका मन ऐसा उचटा हुआ था, उसपर यदि उसका यह अहङ्कार भी चूर-चूर हो जायगा, तो फिर तो इस पृथ्वीमें उसके लिये कुछ भी नहीं रह जायगा। वह लड़कपनसे ही ऐसे आत्माभिमानकी गोदमें पलकर बड़ी हुई है, आत्मशक्तिपर उसका ऐसा अगाध विश्वास है कि आज भी प्राणोंकी एकान्त चेष्टासे वह अपनी प्रतिज्ञाको अटल रखनेकी चेष्टा करती हुई युद्ध कर रही है।

एक दिन फिर राधिका-बाबूने भोजन करते-करते कहा—"बेटी! चलो एक बार घर चलें! चलो एक बार बाहरकी सैर ही हो जायगी।"

सुरमाने कहा—"इस समय बिना मतलबके घर जानेसे क्या काम है?"

"काम भले ही न हो; पर जानेमें बुराई ही क्या है?"

"हमलोग यहीं रहते हैं,आप जाइये।" पिताने डरके मारे बात पलट दी, उन्होंने कहा—"कोई वैसा काम तो नहीं है, बेकार ख़र्च और तरद्दुद उठाना है। मैंने सोचा था कि घर जानेसे तुम्हारी तबीयत कुछ बहलेगी; पर जब तुम्हीं नहीं जाना चाहती तो अकेले जाकर क्या होगा? क्यों बेटी?"

"और क्या? ऐसी ही इच्छा हो तो कल चलिये, आदि-केशवके दर्शन करें। बड़ी अच्छी जगह है।"

वृद्धने बड़े उत्साहसे कहा—"ठीक है। आज नाव ठीक करनेको कह देता हूं। कल सवेरे ही चलो।" सुरमा मन-ही-मन सकरुण हँसी हँसी—उसने सोचा, किसीके सन्तान न होना ही अच्छा है!

उमा सोच रही थी कि अबकी शायद घर जाना ही पड़ेगा। उसने सुरमाको अकेलेमें देखकर बड़े उत्साहसे पूछा—"मां! नानाजी घर जानेकी बात कह रहे थे न?"

"हाँ, उनके मनमें तो यह बात आयी थी।"

"तुमने क्या कहा?"

"मैंने कह दिया कि जानेकी कोई ज़रूरत नहीं है।"

"नाना जायेंगे?"

"नहीं। तू यह काहेको पूछती है? क्या तू जाना चाहती है?"

"नहीं, माँ। हमलोग यहां बड़े आनन्दसे हैं। घर जाकर क्या होगा?"

सुरमाने कुछ सोचकर कहा—"अभी भले ही न जायें; पर पीछे तो जायेंगे ही।"

"क्यों? माँ! क्या हमलोग यहां सदा नहीं रह सकते?"

"बाबाके न रहनेपर कैसे रहेंगे?"

उमा चुप हो रही। सुरमाने पूछा—"क्या तेरी इच्छा जानेकी नहीं होती?"

"तुम्हारी होती है?"

"नहीं।"

"तब मेरी क्यों होगी ?"

"और यदि मेरी इच्छा हो ?"

उमाने कुछ सोचकर उदासी-मिले स्वरमें कहा—"तब तो मुझे जाना ही पड़ेगा; पर कष्ट होगा।"

"अच्छा ! तुझे काशी इतनी भा गयी है ?"

"तुम्हें क्या नहीं भाती ? यहां तो नित्य नयी पूजा होती है। देवता ढूंढ़ने नहीं पड़ते। अब तो, माँ ! तुम मुझे यहांसे कहीं न जाने देना।" जोशमें आकर उमाने इतनी बातें कह तो दीं, पर तुरत ही उसने सङ्कोचसे सिर झुका दिया। सुरमाने स्नेह-भरे कण्ठसे कहा—"अच्छा, विश्वनाथजी सदा तुझे अपनी ही शरणमें रक्खें, पर शायद किसी दिन जाना ही पड़े, तो उस दिनके लिये मनमें साहस भरे रहना। संसार छोड़कर दूर भाग जानेसे सभी त्यागी हो सकते हैं; परन्तु त्यागकी शक्ति कहांतक सञ्चित हुई है, उसकी परीक्षा संसारके अन्दर ही देनी पड़ती है।"

उमाने मलिन मुंह बनाये हुए कहा—"परन्तु माँ ! मुझे तो घर जानेका नाम सुनकर डर मालूम पड़ता है। तुम शायद रंज होगी, पर तोभी मैं कहे देती हूं कि तुम जाना तो मुझे यहीं विश्वनाथजीके चरणोंपर डाल जाना। न जाने क्यों वहां मेरा मन कैसा-कैसा होने लगता है—मैं बेचैन-सी हो जाती हूं। क्यों ऐसा होता है, मां ?"

"सो तो भगवान् ही जानें। डरना नहीं बेटी ! तुझे विश्व-नाथजी सदा अपने चरणोंमें ही रक्खेंगे। तू एकान्तभावसे

अपनेको उन्हींके चरणोंके भरोसेपर छोड़ दे, वे ही तेरा भार ले लेंगे। फिर तो तू जहां-कहीं रहेगी वहीं उन्हींके चरणोंमें पड़ी रहेगी। विश्वनाथ केवल काशीनाथ ही नहीं हैं, वे तो सारे विश्वके नाथ हैं।"

उमा कुछ देर चुप रही। इसके बाद सिर उठाकर मृदुकण्ठसे बोली—"मैं एक बात कहूं।"

"कह।"

कहनेकी इच्छा रहते हुए भी उमा सङ्कोचके मारे कुछ नहीं कहती, यह देख, सुरमाने कहा—"जो बात मनमें हो, उसे खुलकर कह देना अच्छा होता है। कह, क्या कहती है?"

"तुमने कहा कि अपना भार उनपर दे देनेसे वे ही मेरा निर्वाह करेंगे। फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी?"

"हां।"

"तब तुम क्यों इतना सोच-सोचकर मरी जाती हो? मुझे जो सिखा रही हो, वह तुम्हीं क्यों नहीं करतीं? फिर मैं किसके आदर्शको देखकर चलूंगी?"

सुरमा चौंक पड़ी, बोली—"क्यों उमा! क्या मैं बहुत सोचमें पड़ी रहती हूं?"

"नहीं रहतीं?"

"सो तो मैं नहीं समझती; पर मैं तुझसे पूछती हूं कि मैं क्या बहुत चिन्तित मालूम पड़ती हूं?"

"हां।"

"नहीं, उमा ! यह बात नहीं है। मगर—"

"मगर क्या ?"

"मैं सोचमें नहीं पड़ी रहती, मगर न जाने क्यों आजकल मुझे बड़ी क्लान्ति मालूम पड़ती है।"

"क्यों क्लान्ति मालूम पड़ती है ? तुम क्यों नहीं सारा भार विश्वनाथजीपर ही छोड़ देतीं ? फिर तो तुम्हें क्लान्ति मालूम ही नहीं पड़ेगी। प्रति दिन यही जी चाहेगा कि आज पूजाकी और अधिक तैयारी करनी चाहिये-सदा नयी चीज़की दरकार हुआ करेगी।"

"पूजा ? मुझसे पूजा कहां करते बनती है ? यदि किसी-किसी दिन कर सकती, तो अपना भार उनपर डाल देनेका साहस करती। उमा ! मुझसे भार नहीं दिया जायेगा। उनके साथ धोखा-धड़ी थोड़े ही चलेगी ?"

"यदि यह बात कहो, तो हमलोग तो उनके आगे पद-पदपर अपराधी हैं। न हुआ, थोड़ा-सा अपराध और सिरपर लद जायेगा।"

"उमा ! जान-बूझकर किये हुए अपराधसे अनजानतेमें किया हुआ अपराध और ही तरहका होता है।"

उमाने और कुछ न कहा।

बीच-बीचमें सुरमाको और एक आदमीकी बात याद आती थी—वह थी मन्दा। न जाने वह आजकल कैसे रहती होगी। एकबारगी स्वत्व त्याग करनेमें एक प्रकारका सुख और तृप्ति

है; परन्तु जिसको ऐसा त्याग करनेकी सामर्थ्य नहीं है, जिसे सब तरहके शोक-दुःखमें तन-मन-वचनसे केवल दूसरेका ही मुंह जोहते रहना पड़ता है, जिसका आत्मसुख दूसरेके ही हाथमें है, उसके दिन कैसे कटते हैं ? केवल दूसरेका मुंह जोहनेमें, केवल दूसरेको सुखी करने और शान्ति देनेके लिये सारा जीवन-समर्पण करनेमें एक मनुष्य क्योंकर अपने सारे अधिकारका त्याग कर सकता है ? सुरमा समझकर भी नहीं समझ सकी कि इतना सुख-दुःख-आशा-तृषा-पूर्ण मानव-जीवन क्योंकर इस प्रकार मनमें अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको ही लुप्त कर दे सकता है ? कर सकता है; पर कहांतक ? स्नेह, माया, कर्त्तव्य, सबकुछ दे सकता है; परन्तु कुछ-न-कुछ बाकी रह ही जायेगा। जीवन दिया जा सकता है; परन्तु अपना अस्तित्व इस प्रकार क्योंकर गंवाया जा सकता है ? यही सुरमाकी समझमें नहीं आता था। वह मन-ही-मन समझती थी, कि प्रकाश अभीतक सब कुछ नहीं भूला है, कभी भूलेगा भी कि नहीं, इसमें सन्देह है। तब क्या मन्दाके दिन सदा ऐसे ही जायेंगे ? जिससे कुछ भी आशा नहीं है, उसीके पैरोंपर पड़ी हुई समस्त जीवन उत्सर्ग कर क्या केवल उसीका मुंह जोहते रहना पड़ेगा ? उसकी यह तपस्या क्या कभी सार्थक होगी ? सहसा सुरमाको अपनी बात याद आ गयी। उसने सोचा कि मैंने भी एक प्रकारकी तपस्या की थी; पर मैंने उसकी सार्थकताको किस प्रकार पैरोंतले कुचल दिया ? सार्थकताकी बात याद आनेसे उसके गाल लाल हो

गये। वह ऐसी सार्थकता नहीं चाहती। आत्माभिमानकी परितृप्ति ही उसकी साधनाकी वस्तु थी। उसकी कामना केवल यही थी कि अपने मनुष्याभिमानके सम्मुख अपने मनके उच्च आदर्शको समुज्ज्वल करनेकी चेष्टा करे। परन्तु मन्दाकी अवस्था उसकी अपेक्षा जटिल और समस्यापूर्ण थी। सुरमा जानती थी कि उसके स्वामी हृदय-हीन, सत्यहीन, अविवेचक हैं—वे उसके नहीं, दूसरीके हैं। ऐसी अवस्थामें वह कहांतक आशा कर सकती थी? कुछ भी नहीं। और मन्दा जानती है कि उसके स्वामी उसके अपने हैं। उसके उस रत्नका कोई हिस्सेदार नही है। वह साध्वीके अमल-शतदल प्रेम-पद्मके ऊपर स्वामीकी मूर्त्ति स्थापित कर उसकी उपासना करती थी। परन्तु स्वामीने वह पूजा ग्रहण करना नहीं सीखा, वे उसकी मर्य्यादा नहीं समझते। ऐसी निष्फल पूजासे मन्दाके दिन कैसे कटते होंगे? जहां केवल देवताकी पत्थरकी मूर्त्ति रखी है, वहां भक्तका जीवन केवल पूजा करके केवल अपने सरक्त, प्रेम-कोमल हृदयनालसे तोड़-तोड़कर उस शिलापर फूल चढ़ाते हुए, विना कोई प्रसाद पाये ही, कैसे बीतता होगा? ऐसी पूजा कितने दिन चलेगी? अभीतक सुरमा यह नहीं समझ सकी कि भक्तको केवल इसी बातका आनन्द होता है कि वह देवताकी प्राणप्रतिष्ठा कर उसकी पूजा करता है। जहां भक्तको और कोई शरण नही होती, वहां देवता कितने दिन पत्थरके बने रह सकते हैं?

"प्रह्लादकी ऐसी प्रतीति करे,
तब क्यों न कढ़ैं प्रभु पाहनते?"

विशाल हृदया गङ्गा बह रही है। श्मशान घाटपर एक चिता जलकर बुझी जा रही है। उमा और राधिका बाबू सन्ध्या कर रहे हैं। सुरमा मानव-जीवनके चित्रकी इस अन्तिम चिनगारीको देख रही है।

(पृ० ४६७)

चौंतीसवाँ परिच्छेद

मन्दाकी बीमारी

वर्षाका मौसिम और सन्ध्याका समय है। भागीरथीके दोनों ओर मानों मेघाच्छन्न आकाश टूटा पड़ता है। काशीके हर घाटपर दीपमाला जल रही है, प्रत्येक मन्दिरमें आरतीके घंटे बज रहे हैं। सामने विशाल-हृदया गङ्गा निरन्तर गम्भीर भावसे वह रही हैं। वारि-राशि धूमिल-वर्ण हो रही है। अति विस्तृत नदी-वक्षपर एक-एक मन्दिर सिर उठाये अपना अस्तित्व ज्ञापन कर रहा है। सिरपर धूमिल वर्णका मेघाच्छन्न आकाश है। किनारेपरके प्रत्येक मन्दिरके भीतर बड़ा कोलाहल मचा हुआ है, परन्तु गङ्गाके तीरपर प्रशान्त शान्ति विराज रही है।

थोड़ी ही दूरपर श्मशान घाटपर एक चिता जलकर बुझी जा रही है। उमा और राधिका-बाबू सन्ध्या कर रहे थे, और सुरमा बैठी अनन्य-मनसे मानव-जीवनके चित्रकी इस अन्तिम चिनगारीको देख रही थी। यह जीवन मानों एक धधकती हुई चिता है, पहले धीरे-धीरे प्रकाश होता है; फिर ज्योति छिटक जाती है। क्रमसे प्रकाश मन्द होता है और क्रमसे तेज़ होता है। इसके बाद एकाएक धायं-धायं आग जल उठती है। अन्तमें एक मुट्ठी राख रह जाती है। सबका अन्त हो जाता है।

सुरमा निर्लिप्त उदासीनकी तरह देखती हुई सोच रही थी कि साठ वर्षके बुड्ढे राधिका-बाबूकी जीवन-वह्नि भी किसी दिन इसी तरह बुझ जायेगी। उमाके कोमल, क्षुद्र, आशा तृषा-सुख-दुःख-पूर्ण प्रथम जीवनका भी इसी प्रकार निर्वाण होनेवाला है। प्रकाश इस समय कार्त्तिकेयका-सा सुन्दर तरुण युवा है। प्रकाशके साथ मन्दा है—अभागिनी मन्दाका भी यही अन्त होगा। सुरमाकी इस सत्ताईस वर्षकी चिर—समस्यामय सुख-दुःख-पूर्ण जीवन-वह्नि भी इसी प्रकार बुझ जायेगी। एक दिन यह निर्वाण अवश्यम्भावी है। यह जीवन-वह्नि तो एक दिन ज़रूर ही बुझेगी। सबका अन्त यही मुट्ठी-भर राख है।

मन्दिरकी आरती बन्द हो गयी। राधिका-बाबूने कहा—"अब चलो, रात हो गयी।"

घर पास ही था। घर आकर सुरमा अपने कमरेमे चली गयी। उसकी सन्ध्या-पूजा उसी जगह होती थी। ज्योंही आसनपर बैठी त्योंही उमाने आकर पुकारा—"माँ।"

"क्या है?"

"तुम्हारे नामकी एक चिट्ठी है।"

"मेरे नामकी चिट्ठी है? नहीं, तुम भूल गयी होगी।"

"नहीं, मैं भूलती नहीं हूं। देख लो, तुम्हारा नाम लिखा हुआ है।"

"रख दो, मैं पूजा करके देखूंगी।"

सुरमाने दरवाज़ा बन्द कर लिया, यह देख उमा लौट गयी। उसने दीवेकी रोशनीमें लिखावट पहचाननेकी कोशिश की और तुरत ही पहचान गयी। उमा चिट्ठीको ताक़पर रखकर राधिका-बाबूके लिये भोजन बनाने चली गयी। और दिनोंकी अपेक्षा आज सुरमाने देरसे किवाड़ खोले। उमाने कहा—"आओ, आग बुझी जा रही है। भोजन कब बनाओगी? सुरमा झटपट पिताके लिये भोजन बनाने लगी। उसे पत्रकी बात याद नहीं हो, यह बात नहीं है, परन्तु वह इस समय अपने सामान्य आग्रहको भी प्रश्रय देना नहीं चाहती। पिताको खिलाकर उसने उमाको जल-पान कराया और नौकर, दासियों तथा अन्यान्य लोगोंके खिलाने पिलानेमें लग गयी। उमाने पूछा—"क्या तुम कुछ नहीं खाओगी?"

"थोड़ी देरमें खाऊंगी।"

सुरमा हाथमें पत्र लेते ही चौंक पड़ी। यह चिट्ठी प्रकाशकी लिखी हुई थी। उसने सोचा कि आज एकाएक प्रकाशने किस लिये पत्र लिखा? उसे घर छोड़कर काशी-वास करते हुए एक वर्ष हो गया, इस बीचमें उसने कभी उसे पत्र नहीं लिखा। जिसकी चिट्ठी आनेकी आशा थी, उसने तो शायद कभी चिट्ठी लिखनेका नाम भी नहीं लिया होगा। इसके लिये वह नाराज़ भी नहीं है, क्योंकि उसने कभी पत्र पानेकी इच्छा भी नहीं की। उसने पत्र खोलकर मन-ही-मन पढ़ना शुरू किया—

"कल्याणी या सुरमा ! मैं बहुत दिन बाद तुम्हें पत्र लिख रहा हूं। मैं आशा करता हूं कि मेरा पत्र नहीं पानेसे तुम नाराज़ नहीं होगी। भाई साहबके पत्रसे मालूम हुआ कि तुमलोग अच्छी तरह हो। मैं इससे अधिक और कुछ जानना भी नहीं चाहता। आज पत्र लिखनेका कारण यह है कि मैं बड़ी विपत्तिमें पड़ गया हूं। इस समय तुम्हारे सिवा और कोई हितू मुझे नही दिखाई देता। मन्दाकिनी बहुत बीमार है। क्या करूं, कुछ समझमें नहीं आता। क्या तुम ज़रा यहां आओगी ? भाई साहबसे सलाह कर जैसा उचित मालूम पड़े, वैसा करना। इति।

"प्रकाश !"

पत्र पढ़कर सुरमा चुप हो रही। उमा भी चुपचाप बैठी रही; परन्तु सुरमा समझ गयी कि वह पत्रकी बात जाननेके लिये उत्सुक हो रही है; पर पूछनेका उसे साहस नही होता। बोली—"प्रकाशने लिखा है कि मन्दाकिनी बहुत बीमार है—मरूं-मरूं हो रही है।"

उमाका मुंह पीला पड़ गया। बोली—"कौनसी बीमारी है ?"

"सो तो उसने नहीं लिखा। मुझे तो अब जाना पड़ेगा। मैं पिताजीसे जाकर कहती हूं।"

सुरमा उठकर चली गयी। उमा चुपचाप बैठी सोचने लगी। उसे याद आया कि मन्दाने उससे बड़ी व्यग्रताके साथ

कहा था कि मुझे भूल न जाना—याद रखना। शायद वह मुझे अभीतक नहीं भूली हो। मैं उसके निकट अपराधिनी हूं। उसके सामने प्रतिज्ञा करके भी मैं उसके अनुसार काम नही कर सकी। इन दो वर्षोंसे वह एकान्त-मनसे सब कुछ भूल जानेकी ही चेष्टा कर रही है। बहुत-कुछ भूल भी गयी है। परन्तु उमाको अबकी ऐसा जान पड़ा कि मन्दाको भूल जाना मेरे लिये उचित नहीं था। उसे ख़याल आया कि पहले मन्दाकी बात मनमें उठनेसे उसके हृदयमें न जाने कैसी बेचैनी होने लगती थी—न जाने कलेजेमें क्या चुभने लगता था। इसीसे वह बालिका डरके मारे उसकी चिन्ता छोड़कर दूसरे काममें मन लगाने लगती थी। ऐसा क्यों होता था? आज उसे ऐसा मालूम हुआ, मानों उस बेचारीको उसने किसी दिन याद ही नहीं किया—किसी दिन प्यार ही नहीं किया, यह बड़ा बेजा हुआ। यदि सचमुच वह मर ही गयी, तो फिर उससे कैसे मिलना होगा?

सुरमाके लौटते ही उमाने बड़े आग्रहसे पूछा—"क्या हुआ? नानाने क्या कहा?"

"मैं कल जाऊंगी। वे भी जाना चाहते थे; पर उनकी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिये मैंने उन्हें जानेसे मना कर दिया है। भवनाथ संग जायेगा।"

उमाने उदासीके साथ पूछा—"क्या वह बहुत बीमार है? बचनेकी कोई आशा नहीं है?"

सुरमाने उमाकी ओर देखते हुए कहा—"क्यों ? तुम भी जाना चाहती हो ?"

उमा सङ्कोचमें पड़ गयी। सुरमा समझ गयी कि इन दो वर्षोंमें उमा सब कुछ भूल गयी है, इस समय उसका हृदय नन्हे-से बच्चेके समान निर्मल और पवित्र है; किन्तु विषम आघात पाकर उसके स्वभावमें कुछ परिवर्त्तन हो गया है। अथवा वयसके साथ-साथ बुद्धिमें भी कुछ परिवर्त्तन हो गया है, इसीसे वह प्रकाशके सम्बन्धमें कोई बात चलनेसे सकुचा जाती है। जबतक यह सङ्कोच भी नहीं दूर हो जाता, तबतक उसे प्रकाशके सामने ले आना उसने अच्छा नहीं समझा।

सुरमाने कहा—"पिताजीको तुम्हारे चले जानेसे कष्ट होगा, इसलिये तुम यहीं रहो। यदि वह बहुत ही बीमार होगी तो मैं तुम्हें पत्र लिखूंगी।"

"अच्छा। तुम उससे कहना कि—"

"क्या कहूंगी ?"

"यही कि अब मैं उसे कभी न भूलूंगी। क्या उसे मेरी याद बनी हुई है ?"

सुरमाने बड़े स्नेहसे उसके सिरपर हाथ रखकर कहा—"अच्छा, कहूंगी। मैं जहांतक समझती हूं, वह तुम्हें कदापि नहीं भूली होगी।"

पैंतीसवां परिच्छेद

जन्मकी अन्धी

अपना ही पीहर है—सोलह आने अपना ही घर है। पिताके न रहनेपर वही इस घरकी सोलह आने मालिकिन होगी। जीवनके आरम्भके दिन—सुखमय बालकपन तो इसी घरमें बीता है; तोभी न जाने क्यों उसे ऐसा मालूम होता है, मानों वह प्रवाससे लौटकर फिर प्रवासमें ही चली आयी है। तो क्या इतने दिनोंमें वह इस घरको अपना नहीं सकी? जब वह इस घरको भी अपना नहीं बना सकी, तब उसके लिये इस जगत्‌में और कहां स्थान है ?

प्रकाश आकर चुपचाप उसके सामने खड़ा हो गया। सुरमाने उससे मन्दाकी बात नहीं पूछी, चुपचाप घरके अन्दर चली आयी। प्रकाश बाहर ही खड़ा रहा। सुरमाने देखा कि जीर्ण देह लिये मन्दा बिस्तरेपर पड़ी हुई है—मानों जीवन-व्यापी घोर संग्रामके बाद उसने शान्त होकर पराजय स्वीकार कर ली है। देखकर सुरमाकी आंखोंमें आंसू भर आये। मन्दा उसे देख अपने पीले मुखड़ेपर हंसी लाकर बोली—"मां आओ न।" उसने झट-पट उठकर बैठना चाहा; पर सुरमाने दोनों हाथोंसे उसका कन्धा पकड़कर उसे फिर बिछावनपर लिटा दिया। उसके सो जानेपर वह उसके पास बैठकर चुपचाप उसके रूखे और बिखरे बालों-

को सुलझाने लगी। मन्दाने क्षण-भर आंखें मुंदे हुए चुपचाप इस प्यारका आनन्द लिया। इसके बाद आंख खोल मुस्कुराती हुई बोली—"क्या उमा नहीं आयी है?"

"पिताजी अकेले कैसे रहेंगे? यही सोचकर मैं उसे साथ नहीं लायी। मन्दा! अब तुम्हारी तबीयत कैसी है?"

"अच्छी ही है। आपलोग बहुत घबरायें नही। कभी-कभी ज्वर बढ़ जाता है। धीरे-धीरे अच्छी हो जाऊंगी।"

"कितने दिनोंसे तुम्हारा यह हाल है?"

"थोड़े ही दिनोंसे। वे तो झट घबरा ही जाते हैं। आपको भी झूठमूठ तकलीफ़ दी। मैं तो अच्छी ही हो जाती।"

"क्यों मन्दा! क्या मेरा आना तुम्हें अच्छा नहीं लगा?"

"ऐसी बात न कहिये। मैं हर रोज़ आपकी और उमाकी याद किया करती थी। यही सोचती थी कि अब शायद इस जन्ममें आपसे भेंट नहीं होगी।"

"मन्दा! मैंने कुछ तुमको वनवास थोड़े ही दे दिया था? तुम्हें तो मैंने प्रकाशके साथ रख दिया था।"

"उसकी मुझे चिन्ता नहीं थी—मैं बड़े आरामसे थी। हां, आपकी याद रोज़ आती थी।"

"जब आरामसे ही थीं, तब इस तरह बीमार कैसे पड़ गयीं?"

"वाह! बीमार कौन नहीं पड़ता? सभी बीमार पड़ते हैं। उन्हें भी तो दो-तीन दफ़े बड़े ज़ोरका बुखार आया था। मुझे कभी बुखार नहीं आता था, इससे इस बार ज़ोरका बुखार हो

आया है"यह कह ज़रा ठहरकर बोली—"अब आप चली आयी हैं तब मैं वहुत जल्द अच्छी हो जाऊंगी।"

"क्यों मन्दा ! क्या प्रकाश भलीभांति तुम्हारी ख़बरदारी नहीं करता ?" मन्दाने तनिक उदासीके साथ कहा—"ऐसी बात क्यों मनमें लाती हैं ? मैं ऐसा इसलिये कह रही हूं कि आपके आनेसे मेरे जीको बड़ा ढाढ़स हो गया, और कोई बात नहीं है ?"

"ढाढ़स कैसा ?"

"वे वहुत घवराये हुए थे, उन्हें कष्ट भी हो रहा था, मुंह सूख गया था, कोई खोज-ख़वर लेनेवाला नहीं था। अब आपके चले आनेसे उन्हें कोई कष्ट नहीं होगा"

सुरमा चुपचाप उसके सिरपर हाथ फेरने लगी। मनुष्य क्योंकर ऐसा हो सकता है, यह वात वह अवतक अपने मनको नहीं समझा सकती थी। मन्दाने पूछा—

"आपने अभीतक हाथ-मुंह नहीं धोये हैं ?"

"नहीं।"

"तव यहां क्यों वैठी हैं, जाइये, हाथ-मुंह धोइये।"

"जाती हूं ? पर मन्दा ! प्रकाश मेरे साथ-साथ घरके अन्दर क्यों नहीं आया ?"

"वे बहुत घवरा गये हैं। आप उन्हें अच्छी तरह समझा देंगी कि घवरानेकी कोई वात नहीं है, मेरा मन कह रहा है कि मैं वहुत जल्द अच्छी हो जाऊँगी।"

तुम्हारी ऐसी कठिन वीमारी देखकर घवराना तो उचित ही

है, पर मुझे ऐसा मालूम होता है कि केवल घबराहट ही नहीं है, कुछ और भी है।"

मन्दाने बड़े आग्रहके साथ पूछा—"और क्या है?"

"शायद उसे कुछ अनुताप भी हो रहा है।"

"अनुताप? अनुताप कैसा?"

सुरमा थोड़ी देरतक चुपचाप मन्दाके विस्मित और पीले मुखड़ेकी ओर देखती रही। बोली—"क्या अनुतापका कोई कारण नहीं है।"

मन्दाने बड़े विस्मयके साथ मलिन बने हुए मुखसे एक लम्बी सांस निकालकर कहा—"होगा; पर उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा।"

"मन्दा! मैं पूछती हूं कि क्या तुम्हारे ही विषयमें उसे किसी प्रकारका अनुताप होना सम्भव नहीं है? उसने तुम्हारे इतने स्नेहका कब प्रतिदान किया है?"

मन्दाका पीला मुखड़ा भी थोड़ा सुर्ख हो आया, क्योंकि उत्तेजनाके योग्य रक्त ही उसके शरीरमें कहां था? वह बोली, "मेरे स्नेहका प्रतिदान? आप यह क्या कह रही हैं? मैं क्या उनके योग्य हूं? आपलोगोंके स्नेहका ऋण मैं कभी—यदि मैं मर ही गयी तो—इस जन्ममें नहीं चुका सकूँगी।"

"मन्दा! उसने कौनसा ऐसा ऋण तुम्हारे ऊपर लाद दिया है? केवल तुम्हारे साथ व्याह करके ही उसने तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा अहसान कर दिया? तुम्हारे ऐसे अनमोल जीवनको विफल

करके, एक बार भी तुम्हारे कष्ट-दुःखको अपने मनमें न लाकर उसने कौनसा तुम्हारा उपकार किया ?"

"मुझे कौनसा दुःख है ? मैं तो बहुत ही सुखी हूं। मेरी बराबर सुखी और कौन है ? उन्होंने मुझे अपने चरणोंके नीचे स्थान दिया है, यह ऋण भला मैं कब चुका सकती हूं। मेरा जीवन विफल नहीं, पूर्ण सफल है। मैं बड़ी सुखी हूं।"

सुरमा एकटक मन्दाके मुखका भाव देख रही थी। उसके मुखड़ेपर उस समय कैसा असीम सुख—कैसी असीम तृप्तिका आभास झलक रहा था ! दोनों आंखें कुछ-कुछ झपी हुई थीं, गालोंपर लाली छा गयी थी—मानों शान्त स्निग्ध प्रेमकी जीती-जागती मूर्त्ति हो। सुरमा जानती थी कि इस समय मन्दासे यह सब प्रश्न पूछकर उसे उत्तेजित करना अच्छा नहीं है, तोभी उससे यह लोभ छोड़ा नहीं जाता था। ऐसी बातें उसने इस पृथ्वीमें और कहीं नहीं सुनी थीं—न ऐसा भाव ही देखा था ? जैसे भक्त एकान्त आग्रहके साथ देवताकी ओर टकटकी बांधे देखता रहता है, सुरमा भी वैसा ही मन्दाकी ओर देखती रही ?

अबकी मन्दाने फिर आंखें खोलकर मीठे स्वरमें कहा—"मुझे जल्द आराम कर दीजिये। यों पड़ी-पड़ी मैं बड़ी तकलीफ़ पा रही हूं। मैं जल्द अच्छी हो जाऊंगी या नहीं ?"

"ज़रूर ! बीमारी ही वैसी क्या है ?"

मन्दाने सन्तोषकी हँसी हंसकर कहा—"मुझे भी तो ऐसा ही मालूम होता है। मैं मरना नहीं चाहती।"

"अरी, वलैया लूं! तुम बहुत जल्द अच्छी हो जाओगी। घवराओ नहीं।"

"मैं बड़ी सुखी हूं; परन्तु मैं उन्हें किसी दिन सुखी न कर सकी, किसी दिन उन्हें हंसते नहीं देखा। जिस दिन उन्हें हंसते देख लूं, उसी दिन मर जाऊं तो मेरा जीवन सफल हो जाये। अभी तो मुझसे मरना भी नहीं पार लगेगा।"

अवकी सुरमा कांप उठी। वह समझ गयी कि मन्दाकी बीमारीका ढंग वहुत ही बुरा है। उसके हृदयमें विकार उत्पन्न हो गया है! कहीं यह सुन्दर फूल असमयमें ही डालसे न चू जाये। सुरमाने मारे भयके भगवान्‌को गुहराना शुरू किया—उनसे व्याकुल हृदयके साथ विनती करने लगी कि मन्दाकी बीमारी जल्द दूर हो जाये, रोगका आक्रमण व्यर्थ हो जाये। यदि ईश्वरके राज्यमें सचमुच इस प्रकार निःस्वार्थ, उदार और आत्म-विसर्जनका भी प्रेमनामका कोई पदार्थ हो, तो उसकी जय हो! वह असमयमें ही परास्त न होने पाये।

वाहर आते ही सुरमाने देखा कि दरवाज़ेपर प्रकाश चुपचाप खड़ा है। वह समझ गयी कि प्रकाशने सव कुछ सुन लिया है। इस वातसे उसे वड़ा सुख हुआ। वह सन्तुष्ट मुखसे बोली—"प्रकाश! भलीभांति दवादारू करा रहे हो न?"

प्रकाशने सिर झुकाये धीरेसे कहा—"हां, हरीश वावू और निमाई वावूकी देख-रेखमें चिकित्सा हो रही है।"

"यदि और दो-एक दिनमें ज्वर न उतरे,तो कलकत्तेसे किसी वड़े डाक्टरको वुलाना होगा।"

एक बार सुरमाकी ओर देख प्रकाशने फिर सिर झुकाये हुए कहा—"क्या अब कोई आशा नहीं है ?"

"बलैया लूं। ऐसी बात क्यों कहते हो ? आशा क्यों नहीं है ? रोगीके मनमें भी बड़ा साहस है। उसका फल निश्चय ही अच्छा होगा।" प्रकाशने क्षीण हंसी हंसकर कहा—"सच कह रही हो, या मुझे फुसलाती हो ?" वह हंसी बड़ी ही करुणा-भरी थी !

"मै तुम्हें फुसलाती नहीं हूं, अपने दिलकी बात कह रही हूं। आगे भगवान्‌को जैसी मर्ज़ी हो। अच्छा ! प्रकाश ! मैं तुमसे एक बात पूछती हूं। तुम सदा उसके पास रहते हो या नहीं ? यदि तुम उसकी सेवा करो तो उसे बहुत लाभ होगा ?"

"मैं जहां कुछ अपने हाथों करने लगता हू कि वह मारे संकोचके ज़मीनमें गड़ जाती है। घबरा उठती है। कहीं इससे उसकी बीमारी और न बढ़ जाये, इसी डरसे मैं कुछ करने भी नहीं पाता। क्या करूं, कुछ समझमे नहीं आता।"

सुरमाने अपनी तीखी नज़र प्रकाशपर डालते हुए कहा—"याद रखना, यदि मन्दा मर गयी तो तुम भगवान्‌के आगे जवाबदेह होगे—"

बात काटकर प्रकाशने कहा,—"अभी तो तुमने कहा कि वह अच्छी हो जायेगी ?"

"प्रकाश ! तुम भी क्या लड़कोंकी-सी बात करते हो ? कर्त्ता तो भगवान् हैं। इस मामलेमें भला कौन निश्चय कह सकता है कि क्या होगा ? परन्तु तुम्हारा कर्त्तव्य है कि—"

दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपाकर प्रकाशने कहा—"इस समय ये बातें न कहो। वह कैसे अच्छी होगी, यही बतलाओ। कर्त्तव्यकी बातसे इस समय कोई मतलब नहीं है। कर्त्तव्यके ही पीछे तो एक बेचारी बेकुसूरकी यह हालत हो रही है।"

"प्रकाश! यह हालत कर्त्तव्यका पालन न करनेसे ही हुई है?"

'सुरमा! सारा संसार तुम्हारी ही तरह नहीं है। तुम सब कुछ कर सकती हो। क्यों कर सकती हो, यह भी कह सकता हूं। तुमने कभी उस विषका स्वाद नहीं चक्खा। तुममें केवल आवेग-हीन शुष्क दया-माया भरी है। तुम केवल कर्त्तव्यपूर्ण, अहङ्कार-पूर्ण दृढ़ अभिमानका मज़ा जानती हो। तुमने इसके सिवा और कुछ नहीं जाना, इसीसे तुम ऐसी हो गयी हो। जाने दो, जो होना था वह हो गया, अब तो गयी बात लौटायी नहीं जा सकती। अब तो यही बतलाओ कि मन्दा कैसे अच्छी होगी। वह मुझे सुखी नहीं देख सकी, इसीसे मरती भी नहीं है—कहीं मैं सचमुच उसे मार न डालूं। बोलो, मैं उसे कैसे बचाऊं?"

सुरमाने मन्दाके कमरेकी ओर उंगलीसे इशारा करते हुए कहा—"उस कमरेमें जाओ।"

प्रकाश कमरेके अन्दर चला गया। सुरमा धीरे-धीरे दूसरी तरफ़ चली गयी।

उसने सोचा—"क्या प्रकाशने जो कुछ कहा है वह सच है?

सचमुच क्या मेरे केवल अहङ्कार और अभिमानके सिवा और कुछ भी नहीं है ? फिर यह ज्वाला किस लिये है, जो आज कई वर्षोंसे कभी न बुझनेवाली चिताके समान धीरे-धीरे मुझे जला रही है ? पहले तो इसकी जलन इतनी नहीं थी; परन्तु उसके बाद ? उसके बादसे तो यह उसी काशीवाले मरघटकी चिताकी तरह धधक रही है। यह कैसी आग है, कुछ समझमें नहीं आता। प्रकाशने मुझमें जिस वस्तुका अभाव बतलाया, वह प्रेमनामकी वस्तु क्या ऐसी अग्निमय है ? क्या वह शांत, स्निग्ध शीतल वारि-पूर्ण प्रभातकालके जाह्नवी-स्रोतकी भांति अना-विल-अनावर्त्त, स्थिर-धीर और शान्तिमय नहीं है ? मैंने तो जी-वनमे किसी दिन इस धारामें नहीं स्नान किया ! कैसे नहाऊंगी ? कौन नहलायेगा ? लड़कपनसे ही तो मेरा जीवन मरुभूमिके समान हो रहा है। मरुभूमिकी बालूमें इस प्रेम-प्रवाहका कहांसे पता लग सकता है ? इस प्राणदायक प्रेमको तो मैंने कभी पह-चाना ही नहीं—इसीसे सदासे इसे मरीचिका ही समझकर इसका उपहास करती आयी हूं। एक दिन विश्वनाथने मेरे सामने इस प्रकार प्रेम-मूर्तिमें आत्म-प्रकाश कर दिखाया था; परन्तु मैंने उन्हें नहीं पहचाना—प्रणाम भी नहीं किया। पहचानती कैसे ? मैं तो जन्मकी अन्धी हूं ?"

छत्तीसवां परिच्छेद

अन्तर्नाद

सुरमाको आये एक महीना हो गया। मन्दा इतना धीरे-धीरे तन्दुरुस्तीकी ओर बढ़ रही है कि उसकी उन्नति ध्यानमें भी नहीं आती। जैसे गरमीके दिनोंमें झुलसी हुई लता वर्षाकी बूंदोंके सिंचावसे धीरे-धीरे हरी होने लगती है, उसी प्रकार उसकी देहमें भी वहुत ही धीरे-धीरे प्राणशक्ति लौट रही है। प्रकाशका वह एकान्त आग्रह देखकर सुरमा समझ गयी कि मन्दाकी साधना सफल हो गयी। क्रमशः वह यह भी समझने लगी कि क्यों उसकी अपनी जीवन-व्यापी चेष्टा विफल होती गयी है। उसने सोचा—"मनुष्यकी शक्ति ही कितनी है? वह तो लगातार चेष्टा करके अपने जीवनकी बलि देकर भी अपने इष्ट देवताको प्रसन्न नहीं कर सकता। हां, यदि ईश्वर प्रसन्न हों, तो उसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है। परन्तु भगवान्‌की वह कृपादृष्टि क्योंकर प्राप्त हो सकती है? जबतक 'मैं-मैं, मेरा हानि-लाभ, मेरा मान-अपमान, मेरा दुःख-अभिमान'—इन सब भावोंका लेशमात्र भी मनमें रहता है, तबतक क्योंकर उनकी दया हो सकती है? कदापि नहीं हो सकती। जबतक मनुष्य अपनी सारी आशा-तृष्णा, सुख-दुःख और कर्त्तव्य-बुद्धिका विसर्जन करके एक-बारगी अपने आपको नहीं भूल जाता, तबतक उनकी कृपा-दृष्टि

नहीं होती।" सुरमा ऐसा नहीं कर सकी। उसने सदा-सर्वदा सब प्रकारके सुख-दुःखसे—सभी विषयोंसे "अहं"को एकदम अलग रखनेकी चेष्टा की है सही; परन्तु उसके साथ-ही-साथ उसने अपने "अहं-भाव"को एक बड़े भारी अभिमान या अहङ्कारके ऊंचे सिंहासनपर बिठाकर उसीको अपने सामने राज-राजेश्वर बना रक्खा है। उसकी आत्म-विस्मृति आत्मप्रतिष्ठाका ही रूपान्तर-मात्र हो गयी थी। दूसरोंको सब प्रकारका सुख देकर वह अपनेको दिलसे दूर-ही-दूर रक्खे हुए थी। 'अपना अधिकार बिना मुंह मलिन किये, दूसरेको देकर वह सदा उसीके सुखसे सुखी होनेका अभिमान हृदयमें जगाये रहती थी। औरोंके सामने यह कपटवेश भले ही प्रकट न हो, परन्तु जो सारे संसारके बनानेवाले हैं, वे तो किसीको उसके अहङ्कारका दण्ड दिये बिना नहीं रहते। सुरमा मन-ही-मन हर्षित होती हुई भी बाहरसे ऐसा भाव जताती थी कि वह स्वयं भी अपने सामने अपने आपको भूली हुई थी। उसके छद्मवेशने उसे भी भुला रक्खा था। वह अपने मनमें सोचती थी कि मेरा अब उनके (स्वामीके) साथ कोई सम्बन्ध नहीं है—कोई नाता नहीं है। न मुझसे उन्हें कुछ लेना है, न उनसे मुझको। इसीलिये विधाता भीतर-ही-भीतर उसका दर्प चूर्ण कर रहे थे।

सांझको मन्दाको दवा खिलाते जानेपर सुरमाको मालूम पड़ा कि कमरेके अन्दर प्रकाश भी है। वह हटकर खिड़कीके पास आ खड़ी हुई। आज उन दोनोंकी बातचीत सुननेका

चञ्चल कौतूहल उससे रोका नहीं गया। उसने देखा कि मन्दा सेजपर पड़ी हुई है, पास ही एक कुरसीपर बैठा हुआ प्रकाश चुपचाप एक पुस्तक पढ़ रहा है। मन्दाकी दृष्टि प्रकाशके मुंह-की ओर है। नयनोंसे आनन्दकी छटा फूटी पड़ती है। मुखपर तृप्तिकी हंसी छायी हुई है। यह देख सुरमाने एक लम्बी साँस ली। ज्योंही घड़ीमें चार बजे, त्योंही प्रकाशने चौंककर पुस्तक अलग रख दी और कहा—"अरे! चार बज गये—दवा पीनेका समय हो गया।"

मन्दाने मृदुस्वरसे कहा—"मांजीको बुलवा लीजिये।"

"क्यों? मैं ही न दे दूं?"

मन्दाने तनिक लज्जित हास्यके साथ कहा,—"उसमें बड़ा गोलमाल है। दो-तीन दवायें एक साथ मिलानी पड़ती हैं। उन्हें पुकारिये न, वे झट चली आयेंगी।"

"जाने दो, मैं ही दिये देता हूं।"

प्रकाशका आग्रह देखकर मन्दा फिर कुछ न बोली। दवा तैयार कर ले आनेपर प्रकाशने देखा कि मन्दा खाटपरसे नीचे उतर आयी है। यह देख उसने आश्चर्यके साथ पूछा—"यह क्या? तुम नीचे क्यों उतरी?"

"पड़े-पड़े दवा खाना अच्छा नहीं मालूम हुआ। लाइये, दीजिये, मैं पी लूं।" यह कह उसने दवा लेनेके लिये हाथ बढ़ाया। प्रकाशने सोचा कि मुझसे सेवा कराते हुए इसे अब भी सङ्कोच हो रहा है। उसने तनिक दुःखित स्वरसे कहा—

"तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ? यों अपने आप नीचे उतरना ठीक नहीं।"

"अब तो मैं बिलकुल आराम हो गयी हूं। अब क्यों आप लोग इतनी तकलीफ़ उठाते हैं ?"

प्रकाशने इसका कोई उत्तर न देकर दवाका गिलास मन्दाके हाथमें दे दिया। दवा पीनेके बाद प्रकाशको बेदाना-अनारके दाने छुड़ाते देखकर मन्दाने उसके हाथसे अनार छीन लेना चाहा। उसने कहा—"लाइये, मैं छुड़ाये लेती हूं। यह दवा वैसी कड़वी नहीं है।" प्रकाशने एकटक उसके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा, "मन्दाकिनी !" मन्दाकिनीने स्वामीकी ओर देखा। प्रकाशने कहा—"मैं जहां कुछ करने लगता हूं, कि तुम न जाने क्यों ऐसा करने लगती हो ? क्या मेरा काम करना तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?"

मन्दाने धीरेसे कहा—"नहीं।"

"क्यों !"

"आपका यह काम नहीं है।"

"क्यों नहीं है ?"

"बस, कह तो दिया कि नहीं है।"

"क्या मेरी सेवा करना तुम्हारा काम है ?"

"हां।"

"फिर मैं क्यों नहीं तुम्हारी कुछ सेवा कर दूं ?"

"राम राम ! ऐसी बात मत कहिये।"

"फिर तुम्हारा वह काम कैसे है ?"

मन्दा चुप हो रही। प्रकाशने फिर पूछा, पर उसे कुछ उत्तर नहीं मिला। तब उसके और भी पास जाकर उसके कन्धेपर हाथ रखते और उसके पीले मुखड़ेको ऊपर उठाते हुए प्रकाशने कहा—"क्या मेरी बातका उत्तर नहीं दोगी ?"

मन्दाने सिर ऊपर उठाकर स्वामीकी ओर देखते हुए कहा—"दूंगी।"

"तब बतलाओ मेरी सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य कैसे हुआ ?"

"हमलोग स्त्रीकी जाति हैं—हमारा यही काम है।"

"स्त्रियोंका कर्त्तव्य है; पर क्या पुरुषोंके लिये कोई कर्त्तव्य नहीं है ?"

"बहुत कुछ है; पर उसमें स्त्रीकी सेवा करना नहीं है।"

"तब क्या है ?"

"सो सब मैं क्या जानूं ? सुनती हूं कि पुरुषोंके बहुतसे कर्त्तव्य हैं।"

जो बात प्रकाशके मनमें थी, वह शायद मुंहपर नहीं आ रही थी। उसने थोड़ी देर बाद केवल इतना ही कहा—"तुम मुझे और कितने दिनोंतक आप-आप कहती रहोगी ?"

मन्दाने कहा—"जबतक जीती रहूंगी, तबतक।"

"मुझे यह अच्छा नहीं लगता। क्या तुमसे 'तुम' कहकर नहीं पुकारा जाता ?"

मन्दा फिर चुप हो रही। अन्तमें स्वामीके बार-बार पूछने पर बोली—"पुकारूंगी क्यों नहीं?"

प्रकाशने आग्रहके साथ पूछा—"कब पुकारोगी?"

"जिस दिन—" कहते-कहते मन्दा चुप हो रही।

प्रकाशने कहा—"जिस दिन—बोलो, जिस दिनके आगे भी तो कुछ कहो।"

प्रकाशके उदासी-भरे स्वरसे दुःखित होकर मन्दाने कहा—"जिस दिन मैं आपको ख़ूब ख़ुश होते देखूंगी?"

"तो क्या मैं अभी दुःखी रहता हूं?"

"सो तो नहीं कह सकती, पर हां, जिस दिन आपको ख़ूब ख़ुश देखूंगी, उसी दिन वैसा कहूंगी।"

"मन्दा! मैं तो आज भी दुःखी नहीं हूं।"

"अबतक तो थे ही।"

तनिक मलिन मुख किये प्रकाशने कहा—"यह तुमने कैसे जाना कि मैं अबतक सुखी नहीं था?"

मन्दाने एक बार अपनी स्निग्ध-शान्त-प्रेमपूर्ण आंखोंसे स्वामीकी ओर देखा—उस दृष्टिने ही मानों चुपचाप प्रकाशसे कह दिया कि मैं सदा आपका ही मुंह देख-देखकर दिन बिताती हूं, फिर भला मुझसे यह बात कब छिपी रह सकती है कि आप सुखी हैं या दुःखी? प्रकाश चुपचाप रहा। मन्दाने स्वामीके मुंहकी ओर देखते हुए मृदुकण्ठसे कहा—"क्या आप नाराज़ हो गये? माफ़ कीजियेगा। मैंने बिना समझे-बूझे न जाने

क्या कह दिया।" प्रकाशने मलिन हसी हंसकर प्रेमपूर्ण कण्ठसे कहा—"मन्दा! इसमें तुम्हारा कोई अपराध थोड़े ही है? तुम मेरे विषयमें इतनी चिन्तित रहती हो, इस बातका प्रमाण पाकर मैं तुमपर कैसे नाराज़ हो सकता हूं? सचमुच मैं दुःखी रहता था; पर तुमने मुझे सुखी कर दिया। शायद आगे चलकर तुम मुझे और भी सुखी बनाओगी।" सहसा मन्दाने सिर झुकाकर स्वामीको प्रणाम किया और मुंह फेर लिया। प्रकाशने विस्मित भावसे उसका मुंह अपनी ओर फेर दिया और देखा कि उसकी आंखोंसे झर-झर आंसू झर रहे हैं। व्यथित और विस्मित होकर प्रकाशने कहा—"यह क्या मन्दा? तुम रोती क्यों हो?" मन्दाकिनीने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रकाशने कहा—"क्या मुझसे कोई कुसूर हो गया? बोलो, किस लिये—?" मन्दाने व्यग्र भावसे स्वामीका हाथ थामकर रुद्ध कण्ठसे कहा—"बस, वैसी बात मत कहिये। मुझे इन बातोंसे बड़ा कष्ट होता है। आप—" मन्दा शर्मके मारे चुप हो गयी और एक बार सिर झुका, फिर उसे ऊपर उठाकर बोली—"मनुष्य क्या केवल दुःखी होनेसे ही रोता है? आनन्दकी अधिकतासे नहीं रोता?"

"तुम्हें क्योंकर ऐसा आनन्द हुआ कि रुलाई आ गयी?"

"आपने जो अभी कहा कि मैं आपको सुखी कर सकूंगी, उसी बातसे मुझे बड़ा हर्ष हुआ।"

प्रकाशने और कुछ न कहा—केवल उसका हाथ थामे

चुपचाप उसके मुंहकी ओर देखता रहा। सुरमा धीरे-धीरे खिड़कीके पाससे हट गयी और तृप्तिकी सांस लेकर दूसरा काम करने चली गयी।

पिताके पत्रका उत्तर लिखकर सुरमा ज्योंही प्रकाशके सामने आ खड़ी हुई, त्योंही प्रकाशने कहा—"तुमने कुछ सुना है?" सुरमाको ऐसा मालूम हुआ मानों कोई अप्रत्याशित संवाद वज्रकी तरह उसके सिरपर घहराया चाहता है। उसका चेहरा पीला पड़ गया—स्थिर नेत्रोंसे प्रकाशकी ओर देखती हुई क्षीण स्वरसे बोली—"क्या कोई अद्भुत संवाद है?"

"अरे, तुम इतना घबरा क्यों गयीं—ऐसी डरकी बात नहीं है?"

"कहो न, क्या है?"

"माणिकगञ्जसे चिट्ठी आयी है।"

"कैसी चिट्ठी है? किसने लिखी है?"

"फूफाजीने लिखी है। बीमारीका समाचार सुनकर उन्होंने बहुत घबराकर इन्हें अपने पास बुला लेनेकी इच्छा प्रकट की है?"

सुरमा क्रमशः अपनेको प्रकृतिस्थ करनेकी चेष्टा करने लगी; तोभी उसके कानोंमें झनझनाहट मालूम होती थी। गला सूखा जा रहा था, पैर कांप रहे थे। उसने कहा—"और सब तो ठीक है न?"

"उन्होंने और कोई बात तो लिखी ही नहीं। राजपूतानासे

हाल ही घर आये हैं। आते ही मेरी चिट्ठीसे घरकी बीमारीका हाल मालूम हुआ। म तो उन लोगोंका पता-ठिकाना जानता ही नहीं था, इसीलिये माणिकगंजके ही पतेसे एक चिट्ठी भेज दी थी।"

"इसके बाद ? मन्दाको बुलानेकी बात लिखी है ?"

"हां, लिखा है कि मैं आदमी भेजूंगा। मैंने मनाहीकी चिट्ठी लिख दी—लिखा कि बिना देहमें कुछ ताक़त आये जाना नहीं हो सकता। मैंने यह भी लिख दिया है कि मैं ही आप लोगोंसे मिलकर किसी दिन पहुंचा जाऊंगा। क्यों ? मैंने अच्छा किया या नहीं ? मेरे हाथमें भी आजकल वैसा कुछ काम नहीं है।"

"अच्छा है, तुम्हारे जानेसे वे लोग बड़े ख़ुश होंगे।"

मन्दाको भी इस चिट्ठीका हाल मालूम हुआ। सुनते ही उसका धैर्य छूट गया। प्रति दिन प्रकाश और सुरमासे कहने लगी, "अब तो मैं अच्छी तरह भली-चङ्गी हो गयी, अब मुझे कब वहां पहुंचायेंगे ?" सुरमाने भी प्रकाशसे कहा कि जब वह वहां जानेके लिये इतना घबरा रही है, तब उसे ले ही जाओ क्यों व्यर्थ देर कर रहे हो ?"

प्रकाशने कहा—"तुम काशी कब जाओगी ?"

"मेरे काशी जानेमें अभी देर है।"

"हमलोगोंके चले जानेपर यहां अकेली हो रहोगी ?"

"इसमें हर्ज ही क्या है ?"

"नहीं, नहीं, अकेली रहनेसे तुम्हें कष्ट होगा। क्या हुआ यदि हम दो दिन बाद ही गये ?"

"दो-चार दिनकी बात नहीं है। मेरे काशी जानेमे अभी बहुत विलम्ब है। मैं कुछ दिन यहीं रहूंगी।"

"क्या काशी छोड़कर कुछ दिन यही रहनेका विचार, है? मन लगेगा?"

"चिन्ता ही क्या है?"

"जिन लोगोंको वहां छोड़ आयी हो, उनकी चिन्ता नहीं है क्या?"

"प्रकाश! अब मुझे उनके लिये कोई चिन्ता नहीं है। बाबा-की सेवा-टहलके लिये उमाको छोड़ ही आयी हूं और उसको विश्वनाथके शरणागत कर आयी हूं।"

प्रकाशने सिर झुकाये हुए कुछ देर चुपचाप रहनेके बाद कहा—"ईश्वर करे उसका यह स्थान अक्षय हो।"

सुरमाने प्रकाशके मुंहकी ओर देखा—देखा कि उसपर स्याही-सी छा गयी है; मानों उसने जो कुछ कहा, वह उसके हृदयका निर्मल शुभ आशीर्वाद है। सुरमाने प्रसन्न होकर कहा—"तुम लोग कल चले जाओ।"

"तुम अकेली ही रहोगी?"

"कोई हर्ज नहीं है।"

"प्रकाशने फिर थोड़ी देरतक सोच-विचार किया, अन्तमें सुरमाकी ओर देखते हुए मृदु-स्वरसे कहा—"एक बात कहूं?"

"कौन-सी बात?"

"तुम कहो, तो कहूं।"

"कहने लायक़ हो तो ज़रूर ही कहो।"

"तुम भी हमारे साथ क्यों नहीं चलतीं ?"

सुरमा कांप गयी, क्षीण-कण्ठसे बोली—"कहां चलूं ?"

"माणिकगंज।"

माणिकगंज ! यह कैसी दिल्लगी है ! यदि वहीं उसके लिये आश्रय होता, तो वह जन्म-भरके लिये गृह-हीन, आश्रय-हीन, क्यों हो जाती ? इस अनन्त पृथ्वीमें इस तरह अपने लिये थोड़ीसी जगह क्यों ढूंढ़ती फिरती ? फिर वहां किस लिये जाये ? किस मुंहसे जाये ? क्या वह वहांके सभी स्नेह-प्रेमकी अपमान-पूर्वक उपेक्षा करके नहीं चली आयी है ? जानेका रास्ता उसने खुला थोड़े ही रक्खा है ? सारा नाता तोड़ देनेपर भी लोग कहने सुनने-को थोड़ा-बहुत शील रखते हैं; पर उसने तो वह भी नहीं रक्खा। अब उसके लिये वहां कोई स्थान नहीं है—घड़ी-भरके लिये भी वहांकी पृथ्वीपर पैर रखकर कलङ्कित करनेका उसे कोई अधिकार नहीं है।

सुरमाको चुप देख प्रकाशने फिर कहा—"क्या कहती हो ? चलोगी ? जानेमें हर्ज ही क्या है ?"

"हर्ज ! किसके जानेकी बात पूछते हो ? मेरे जानेकी ?"

"हां, फिर हमारे ही साथ लौट आना। वे भी तो एक बार मिलने आये थे। फिर इसमें दोष ही क्या है ?"

"क्या कहते हो ? दोष नहीं है ?"

"नहीं।"

"तब क्या चलूं ? कोई कुछ न कहेगा ?"

"कौन कहेगा ? यह कैसी बात करती हो ?"

"कोई यह नहीं कहेगा कि यह फिर किस लिये आयी है ?"

प्रकाशने सरल हंसी हंस कर कहा, "नहीं, ऐसा कभी नही हो सकता। देख लेना, सबलोग बड़े प्रसन्न होंगे ?"

"प्रकाश! तुम नहीं जानते कि मैंने काशीमें एक बड़ा भारी अन्याय कर डाला है। मैंने चारुसे कह दिया था कि मैं तुमसे मिलने आऊंगी और अन्तमें बिना मिले ही चली आयी। उसी दिनसे चारुने मेरे पास एक भी पत्र नहीं लिखा।"

"इसीसे तो कहता हूं कि चलो, अन्यायके लिये क्षमा मांग लेना। जिन्हें इतना प्यार करती हो, उनके मनमें मैल नहीं आने देना चाहिये।"

"केवल यही एक अन्याय नहीं है—ऐसे-ऐसे बहुतसे अन्याय मुझसे हुए हैं।"

"चलो, सबके लिये इकट्ठो ही माफ़ी मांग लेना।"

सुरमा सहसा नादान लड़की-सी बन गयी। अब वह अपनी बुद्धिसे कुछ भी स्थिर नहीं कर पाती। उसमें यह शक्ति ही नहीं रह गयी। जब मनमें बड़ी दुर्बलता आ जाती है, तब जो कोई दृढ़ भावसे कोई बात कह देता है, वही आकाश-वाणी-सी मालूम होने लगती है। उसकी उपेक्षा करनेकी न तो इच्छा होती है, न साहस। इस समय सुरमाके दिमाग़में इसके सिवा और कोई बात नहीं आती थी कि अब भी वहां जाया जा सकता है।

उसका मन कह रहा था—"एक वार जाकर क्षमा मांग आओ—स्त्रीको इतना अभिमान नहीं करना चहिये। जब वह अभिमान आप-ही-आप चूर-चूर हुआ जाता है, तब इतनी चतुराई किस लिये खेलना। बहुत बार अन्याय कर चुकी। हां—अब रहने दो। जाकर क्षमा मांग आओ।" अन्तरात्मा कह रही थी—"वे लोग क्षमा करना जानते हैं—तुम्हें ज़रूर ही क्षमा कर देंगे।"

सुरमा मन-ही-मन इन्हीं सब बातोंकी मीमांसा कर रही थी, इसीलिये वह नन्ही लड़कीकी तरह प्रकाशसे बातें कर रही थी।

सुरमाको चुप देख प्रकाशने फिर कहा—"और मन्दा भी अबतक पूरी तरह भली-चङ्गी नहीं हुई है, इसलिये उसे सफ़र-में अकेले ले जाते डर भी लगता है। तुम्हारे जानेसे कोई डर नहीं रहेगा।"

इस बार सुरमाके मनको बड़ा दृढ़ आश्रय मिल गया—हृदयके हृदयमें भी जो थोड़ा-सा आत्माभिमान बैठा हुआ क्रोध-से लाल-लाल आंखें किये उसकी ओर देख रहा था, उसके सामने कैफ़ियत देनेका उसे एक बहाना मिल गया। सचमुच अकेले प्रकाशका मन्दाको लेकर जाना अच्छा नहीं है। उसे यह नहीं मालूम हुआ कि यह बहाना महज़ लड़कोंका-सा है। उसने बड़े आग्रहसे पूछा,—"तुम्हें अकेले जानेका साहस नहीं होता?"

"नहीं।"

"तो फिर क्या किया जाये? बिना गये उसका जी नहीं मानेगा, इसलिये फिर बीमार पड़ जा सकती है।"

"उपाय यही है कि तुम भी साथ-साथ चलो।"

"तब तो लाचारी है—चलो, मैं भी चलूंगी; परन्तु प्रकाश! एक बात है!"

"कौन-सी बात है?"

"तुम मुझे अपने ही साथ लेते आना।"

सुरमाके स्वभावके विरुद्ध इस दुर्बलताको देखकर प्रकाश विस्मित नहीं हुआ। वह कुछ-कुछ ताड़ गया था, इसीलिये उसने सुरमाके जानेकी बात छेड़ दी थी। सुरमाकी बात सुन स्नेह और करुणा-भरी हंसी हंसकर उसने कहा—

"अपने घर जानेमें इतना क्यों डर रही हो?"

"अपने घर? मेरा घर कहां है? यह बात मत कहो।"

"अच्छा, मैं तुम्हें ज़रूर साथ ही लेता आऊंगा। तुम इस घरकी लक्ष्मी हो। तुम्हारे बिना यहांका काम कैसे चलेगा?"

सुरमाके दिलपर चोट-सी बैठी। उसने फिर कहा—"कौन लक्ष्मी है, प्रकाश! यहांकी लक्ष्मी तो मन्दा है। उसे खूब प्रेम और आदरसे रखना—इसीमें सबकी भलाई है।"

प्रकाशने हंसते-हंसते कहा—"मैं फिर कहता हूं—नाराज़ न होना—तुमने शायद अभीतक अपना घर नहीं पहचाना, इसीसे तुम इतनी दुःखी हो।"

"अच्छा, जाने दो इन बातोंको। बोलो, कब चलते हो?"

"कल—तुम चलनेकी तैयारी करो।"

"कल ही? नहीं, दो दिन और ठहर जाओ।"

न जाने सुरमाका कलेजा किस लिये थर-थर कर रहा था, इसीसे उसने दो दिनका समय मांगा। पर प्रकाश राज़ी नहीं हुआ। मन्दा सुरमाके जानेकी बात सुन प्रसन्नता प्रकट करने लगी। सुरमाने उसका हाथ पकड़कर कहा—"परन्तु मुझे शीघ्र अपने साथ लेती आना।" आज सुरमाको अपनी शक्ति-पर इतना भी भरोसा नहीं रह गया था! मन्दाने सोचा कि शायद चारु नहीं आने देगी, इसीलिये सुरमा ऐसी बात कह रही है। मन्दाने हंसकर कहा—"और अगर मैं आपको वहीं छोड़कर चली आऊं तब?"

सैंतीसवां परिच्छेद

पहेली बुझौवल

चार वर्ष—पूरे चार वर्षके बाद वह यहां आयी है, तोभी सब कुछ जैसेका तैसाही है। वृक्षोंकी श्रेणी उसी तरह सिर ऊंचा किये खड़ी है। झाऊके पेड़ वैसे ही आसमानमें सिर उठाये सायं-सायंकी आवाज़ कर रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर देव-मन्दिरकी चक्र-युक्त चूड़ाका अग्र-भाग वैसा ही दिखाई दे रहा है। वही ऊंची-ऊंची चूना की हुई दीवारें, वही सफ़ेद पत्थरका

तोरण, दोनों ओर पुष्पवृक्षोंकी श्रेणीसे सुशोभित हरी-हरी घासोंकी क्यारी, बीचमें लाल कंकड़ोंका रास्ता, सामने बैठकके सफ़ेद खम्भे—सब-के-सब ज्यों-के-त्यों हैं। गाड़ी वहीं आ खड़ी हुई, जहां आजसे चार वर्ष पहले, सुरमा जब यहांसे विदा होने लगी थी, तब गाड़ीपर सवार हुई थी। प्रकाश नं उतरा। परन्तु सुरमाके ़पर इस तरह कांप रहे थे कि उस लिये गाड़ीसे नीचे उतरना पहाड़ हो रहा था। थोड़ी देर ब उसने झुककर देखा कि गाड़ीके दरवाज़ेके पास कोई न है। तब ज़रा साहस करके वह नीचे उतरी। पास ही मन्दाव पालकी रक्खी थी। मन्दा स्वयं ही उतरनेकी चेष्टा कर रही है यह देख उसने झटपट पालकीके पास जाकर उसे धीरे-धी पालकीसे नीचे उतारा और अपने कन्धेके बल उसे खड़ा करं उसने ज्योंही चलना चाहा, त्योंही उसे ऐसा मालूम हुआ मानं किसीने पीछेसे आकर उसका हाथ पकड़ लिया। उसी समय हाथ धरनेवालेने हाथ हटा लिया और झटपट पूछा—"कौन है?" सुरमाने न तो फिरकर देखा, न इस बातका उत्तर दिया। चुपचाप मन्दाको ही सम्हालने लगी। आनेवाले व्यक्तिको मन्दाने झुक कर प्रणाम करना चाहा। उसने मीठे स्वरसे कहा,—"रहने दे बेटी! तू ऐसी हो गयी है, यह तो मैंने सपनेमें भी नहीं सोचा था। ओह! तू ऐसी बीमार हो गयी थी?"

मन्दाने सिर झुकाकर हंसते हुए चारुके चरण छूए। मन्दाको साथ लिये हुए सुरमा अग्रसर होने लगी। पीछे-पीछे चकिता

चारु भी चली। सामने आकर घरकी पुरानी नौकरानियां एक-एक करके सुरमाको प्रणाम करने लगीं। किसीको बोल-चाल न करते देखकर वे भी कुछ नहीं बोलतीं—केवल आपसमें काना-फूसी कर रही हैं।

कमरेमें ले जाकर मन्दाको एक शय्यापर बैठाया गया। सुरमाने मृदुस्वरसे कहा—"ज़रा सो रह।"

"नहीं, मां! मुझे वैसी कोई तकलीफ़ नहीं है। बुआ! अतुल कहां है? बच्ची किधर गयी?"

"वे बाहर खेल रहे होंगे।"

चारुने यह बात बड़े ही धीमे स्वरमें कही—शायद उससे भी दिल खोलकर बातें करना नहीं बन पड़ता था। एक दासीने आकर कहा—"बाबू लोग आ रहे हैं।" सुरमा दूसरे कमरेमें चली गयी। उसका सिर यही सोचकर घूम रहा था कि किस तरह इस दुर्निवार लज्जाके हाथोंसे छुटकारा पाऊं। उसने सोचा—"क्यों मैं यह काम कर बैठी? क्यों मैंने घंटे-भर पहले इस समयकी बात सोच देखी?" इस समय यदि कोई उसके समस्त जीवनके बदलेमें भी इस घटनाको उलट देता, तो वह इस बातपर भी झटपट राजी हो जाती। अभी-अभी अमरनाथ-को यह बात मालूम हो जायगी कि मैं फिर यहां आयी हूं! शायद वे अबतक सुन चुके होंगे! जिसने हर मामलेमें इतना अहंकार दिखाया, सम्मानके साथ स्नेहके ऊंचे आसनको जो एक दिन ठोकर मारकर चली गयी थी, आज वही भिखारिनकी

तरह विना बुलाये उसीकी भीख मांगने आयी है! यह कैसी लज्जा—कैसी घृणा—की बात है! सुरमाने सोचा कि मेरा इतना अधःपतन कैसे हो गया? क्योंकर मैं इस कलङ्कको धो डालूं?"

आगे-आगे अतुल, पीछे-पीछे अमर और प्रकाश घरके अन्दर आये। चारु और मन्दाने घूंघट काढ़ लिये। अमर मन्दाके पास आ बैठा—प्रकाश थोड़ी दूरपर अतुलके साथ बातचीत करने लगा। अमरने कहा—"ओह! तेरी देहका यह क्या हाल हो गया! हमलोग यहां नहीं रहे, इसीसे तेरा कुछ समाचार नहीं पा सके। अब कैसी है, मन्दा?" मन्दाने धीरेसे कहा—"अब तो अच्छी हूं। आप अच्छी तरह हैं न?"

"हां बेटी! उधरका हवा-पानी बहुत अच्छा है। तू ज़रा और तन्दुरुस्त हो ले, तो हमलोग फिर एक बार उधर चलेंगे। फिर तो तेरी तन्दुरुस्ती एकदम अच्छी हो जायगी।"

मन्दाने अमरको प्रणाम किया। आशीर्वाद करके अमरने कहा—"तूने अतुलको देखा है कि नहीं? अतुल! इधर आ, बेटा!" अतुल मन्दाके पास आकर खड़ा हो गया। हृष्ट-पुष्ट गोल-मटोल शरीर, सात वर्षकी अवस्था, चाल-ढाल बिलकुल बदल गयी है। मन्दाने स्नेह और आनन्दके साथ मधुर कण्ठसे कहा—"अरे तू तो बहुत बड़ा हो गया है। मुझे पहचानता है या नहीं?"

अमरने हंसते हुए अतुलकी ओर देखा। अतुल हंसता हुआ बोला—"हां।"

"अच्छा, कौन है? बतला तो सही।"

"छोटी जीजी!"

अमरने विस्मित होकर पूछा—"और बड़ी जीजी कौन है रे?"

"वही जो काशीमें है। मां कहती है कि वह बड़ी जीजी है और यह छोटी जीजी।"

मन्दाने अतुलकी ढोड़ी पकड़कर उसका मुंह चुपचाप चूम लिया। अमरने पूछा—"रास्तेमें कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई?"

"नहीं।"

"अच्छा प्रकाश! चलो, हमलोग बाहर चलें। देखना, मन्दाको झटपट कुछ खिला देना। अतुल, आ, तू भी मेरे साथ आ।"

चारुने मृदु स्वरसे कहा—"अतुलको यहीं छोड़ जाइये।"

"अच्छा, रहने दो। चलो, प्रकाश! तुम मेरे साथ चलो।"

अमरनाथ बाहर चला गया। सुरमा समझ गयी कि अभीतक प्रकाशने अमरसे मेरे आनेकी बात नहीं कही है। अमरके बाहर चले जानेपर प्रकाशने दो-एक दफ़ इधर-उधर देखकर चुपचाप उसके पीछे-पीछे जाना शुरू किया। सुरमा कमरेकी खिड़कीके पास आ खड़ी हुई। चारों ओर सब चीज़ें पहलेकी-सी थीं—केवल मनुष्य ही कालके साथ-साथ बदला करता है; नहीं तो आज इस चिर-परिचित और जीवनभरके अपने घरमें आकर भी सुरमा क्यों इतनी लज्जा और शङ्कासे मरी जा रही है? सुरमा पीठ फेरे खड़ी थी। पीछेसे किसीके जूतेकी आवाज़ सुनाई दी, पर उसने मुंह नहीं फेरा—वह मन-ही-मन मना रही थी कि हे

पृथ्वी ! तू फट जा, मैं तुझमें समा जाऊं । पीछेसे किसीने बड़े ही मीठे स्वरसे पुकारा—"मां !" सुरमा झट घूमकर खड़ी हो गयी—अरे ! यह तो उसका सबसे प्यारा धन है ! यही तो वह प्यारा सम्बोधन है ! इसमें तो कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है। अतुलने और भी पास आकर उसका आंचल पकड़ लिया और बड़े प्यारसे कहा—"तुम यहां क्यों खड़ी हो ? मैं तुम्हें ढूंढ़ता-ढूंढ़ता हार गया, क्या छिपी हुई हो ?"

सुरमाने दोनों बांहें फैलाकर उसे गोदमें ले लिया। इस जीवनमें अतुलका स्पर्श और कण्ठ-स्वर उसे इतना प्यारा कभी नहीं मालूम हुआ था। ज्योंही उसने अतुलका मुंह चूमा, त्यों-ही उसके कलेजेके अन्दर छिपी हुई ज्वाला आंसूके आकारमें बाहर हो पड़ी। अपने दोनों हाथोंसे उसके आंसू पोंछते हुए अतुलने कहा—"चलो, मां ! यहां क्यों खड़ी हो ? हमलोग एक बड़ा बढ़िया हरिण ले आये हैं। बच्ची डरके मारे उसके पास तो जाती ही नहीं, दूर-ही-दूरसे 'मेला-मेला' करती रहती है। चलो न, तुम भी उसे देख लो।"

अतुलके प्रबोध देनेके इस ढंगको देखकर सुरमा बड़ी प्रसन्न होकर बोली—"फिर कभी देख लूंगी।"

"अच्छा, सांझको देखोगी ? उसी समय तो मैं उसे खिलाने जाता हूं। ज़रा देखो तो बच्ची क्या कर रही है ? पिल्लोंके बच्चेको तो बिना मारे कभी नहीं छोड़ती।"

सुरमाने फिरकर देखा कि एक सुन्दर गोरी-चिट्टी लड़की,

जिसकी उमर तीन सालसे अधिक न होगी, एक विल्लीके बच्चेको पकड़कर उसकी गरदन माप रही है और उन लोगोंकी ओर अचरजके साथ देख रही है। सुरमाने जब उसे भी अपनी दूसरी गोदमें उठा लिया, तब वह अचरज-भरी आंखोंसे सुरमाका मुंह निहारने लगी। अतुलने हंसकर कहा—"यह भारी भुलक्कड़ है। घर आनेपर किसीको पहचानती ही नहीं। केवल घर आनेके लिये चिल्ला रही थी। बस, यह केवल मांके पास रहना जानती है, और किसीको नहीं पहचानती।"

बच्चीने देखा कि यह तो बड़ा भारी अन्याय हो रहा है। इसी-लिये उसने तुतलाते हुए कहा—"मैं मांको पछानती ऊं, औल-बाबाको पछानती ऊं, औल मोटूको, औल लाजाको।" अतुल बड़े ज़ोरसे हंसता हुआ बोला—"मां! तुम इसकी सब बातें समझती हो? इसकी तोतली बातें तो समझमे ही नहीं आतीं। मोटू कौन है, जानती हो? वही हरिन। उसका नाम मटरू है, यह मोटू कहती है। एक जोड़ी कबूतर हैं—उन्हें यह लाजा-लानी यानी राजा-रानी कहती है।"

सुरमा आनन्दमें विभोर होकर ये बातें सुन रही थी। उसे यह भी नहीं मालूम हुआ कि चारु उसके पास आकर खड़ी है। मांको देखते ही लड़की उसकी ओर लपकी—अब भला वह सुरमाकी गोदमें क्यों रहने लगी? अतुलने कहा—"देखो-देखो इसका रंग-ढंग देखो। मांको देख चुकी, अब यह भला कहां रुकनेवाली है? बड़ी पाजी है।"

चारुने अपनी गोदमें आनेके लिये व्याकुल होकर झुकी हुई लड़कीको ज़रा पीछे ठेलकर स्वयं नत होकर सुरमाके चरण छूए। उसने पूछा—"जीजी! कैसी हो?"

"अच्छी हूं," कहकर अभिमानसे होंठ कंपाती हुई बच्चीको लेकर सुरमा अत्यन्त व्यस्त हो रही। चारुसे यह पूछनेका कि तुम कैसी हो अथवा उसकी ओर देखनेका भी मानों सुरमाको अवकाश नहीं रहा। कुछ देरतक उन दोनोंकी क्रीड़ा देखनेके बाद चारुने सुरमाका हाथ पकड़कर कहा—"चलो, स्नान करो। बड़ी देर हुई।" अतुल और बच्चीके दिलपर मानों उदासी छा गयी। चारुने कहा—"तुम दोनों जाकर अपनी छोटी जीजीके पास बैठो। हम दोनों नहा-धोकर आती हैं।" सुरमाको मन्दाकी याद हो आयी। उसने कहा—"मन्दाको कुछ खिला देना चाहिये।"

"खिला चुकी हूं—तुम नहाने चलो।"

"तुमने अभीतक नहाया नहीं है?"

"नहीं, सुबहसे इन्तज़ार करते-करते देर हो गयी। गाड़ी और पालकी ठीक समयपर स्टेशनपर पहुंच गयी थीं न? चिट्ठी मिलते ही मैंने भिजवा दी थीं।"

सुरमा चुपचाप चारुके संग जाकर नहा आयी। सुरमाने देखा कि दासियां अब उससे कुछ भी नहीं पूछतीं और न स्वागत-सम्भाषण करती हैं—मानों वह सदासे यहीं रहती आयी है—इस घरके लिये वह कोई नवागन्तुक नहीं है। वह समझ गयी कि यह सब चारुके शासनके प्रभावसे हो रहा है। उसका

हृदय चारुके प्रति बड़ा कृतज्ञ हुआ। सारे दिन उसे अतुल और बच्चोंने फ़ुरसत नहीं दी। भोजन आदिके अनन्तर हरिण, कबूतर, ख़रगोश, गिनिपिग्, सफ़ेद चूहा आदि देखने और उन्हींके अद्भुत कार्योंका विवरण सुननेमें ही तीसरा पहर बीत गया। सुरमा उस दिन मन्दाकी भी खोज-ख़बर नहीं ले सकी। एक दफ़े मन्दाकी खोज़में गयी थी। उस समय वह बैठी हुई हंस-हंसकर चारुके सङ्ग बातें कर रही थी। उसने कहा—"मां! अब मैं दवा नहीं खाऊंगी। आज मैं बिलकुल अच्छी हूं।" सुरमाने भी हठ नहीं किया। उसी समय अतुलने भी आकर शोर मचाना शुरू किया कि चलो, हरिणका खेल देखो। चारुने कहा,—"ज़रा बैठो न।" अतुलने कहा—"नहीं, अभी नहीं बैठने पायेगी। मां! चलो मेरे साथ।" अतुल सुरमाको लेकर चला गया। सुरमा भी इससे प्रसन्न ही थी; क्योंकि इन बच्चोंके आगे उसे कोई लज्जा-सङ्कोच नहीं था। ये तो केवल उसे निर्मल-कोमल हास्यसे, मधुर बातोंसे, प्यार-भरी दृष्टिसे आनन्द ही प्रदान कर रहे थे।

सन्ध्याके बाद थकी-मांदी बच्ची मन्दाके पास ही उसीकी सेजपर सो रही। उस समय अतुल बाहर मास्टरके पास पढ़ने गया था। चारुने सुरमाके पास आकर कहा—"जीजी! सो रही हो क्या?" सुरमाने लड़खड़ाते हुए स्वरसे कहा,—"हां।"

"राहकी थकावटसे तुम्हें नींद आ रही है। ज़रा उठकर बैठो—दो-दो बातें, करनी हैं।"

"कल कहनेसे नहीं चलेगा?"

"नहीं" कहकर चारु और पास चली आयी और बोली—"क्या मुझसे कुछ नाराज़ हो ?"

सुरमाने अस्फुट स्वरसे कहा—"नाराज़ ? हरगिज़ नहीं।"

"मैंने इतने दिन तुम्हें पत्र नहीं लिखा। उस दफ़े काशीमे जव तुमसे अलग हुई थी, तबसे मैंने न तो तुम्हें कोई पत्र दिया, न तुम्हारा समाचार जानना चाहा।"

सुरमा चुपचाप रही। चारु कहती चली गयी—"अब मुझे मालूम पड़ता है कि मैंने बड़ा बेजा किया; परन्तु अबतक तो मैं मन-ही-मन बड़ी जली-भुनी बैठी थी—मुझे बड़ा दुःख था। सोचती थी कि यदि सचमुच तुम हमलोगोंसे इतनी फिरण्ट हो तो फिर तुम्हें तङ्ग करनेसे क्या लाभ है ?"

सुरमाने कुछ कहना चाहा; पर उसके मुंहसे कोई बात नहीं निकली। चारुने ज़रा और पास आकर कहा—"जीजी! तुम बोलती क्यों नहीं हो ? अगर मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो उसे माफ़ करो।"

सुरमाने बड़ी चेष्टा करके कहा—"वह सब कुछ भी नहीं है, चारु! तुम और-और बातें करो।"

"जीजी! मेरा मन नहीं मानता। जबसे आयी हो, तबसे तुम भर-मुंह बात भी नहीं करतीं। पहलेकी तरह एक दफ़े भी चारु कहकर नहीं पुकारा।"

सुरमाको कष्ट हुआ, तोभी हंसकर बोली—"क्या मैंने ऐसा गुस्सेके मारे किया है ?"

"तब क्यों ?"

"सच बतला दूं ? मैं इस बार स्वयं तुमसे क्षमा मांगने आयी हूं।"

"अच्छा ! इसीलिये आयी हो ? हमें देखने नहीं आयीं ?"

"इसका तो अब मुझे अधिकार ही नहीं है। क्षमा मांगनेका अधिकार है—वही मांगने आयी हूं।"

"मेरी बात छोड़ दो—मेरे सामने तुम किस दिन अपराधी नहीं हुईं। हां, जिसके सामने तुम अपराधिनी भी हुई हो, उससे जाकर क्षमा मांगो।"

कलसे चलायी हुई पुतलीकी तरह सुरमाने कहा—"ज़रूर मांगूंगी।"

"तो चलो, लगे हाथों मांग ही लो। वे तो शायद जानते ही नहीं हैं कि तुम आयी हो।"

चारु उठ खड़ी हुई और सुरमाको हाथ पकड़े खींच ले चली। बरामदा पारकर दोनों, रोशनीसे जगमगाते हुए कमरेके दरवाज़े-पर आकर ठिठक रहीं। चारुने सोचा कि पहले ख़बर दे देनी चाहिये। सुरमाके पैर तो चारुसे भी पहले ही चलनेसे जवाब दे चुके थे। चारुने कहा—"ठहरो पहले मैं ख़बर दे आऊं। तब जाना।"

चारुने कमरेके अन्दर जाकर देखा कि अमर पलंगपर पड़ा-पड़ा अख़बार पढ़ रहा है। चारुने पास आकर कहा—"क्या हो रहा है ?"

अमरने अख़बार हटाते हुए कहा—"जो हो रहा है, वह तो देख रही हो। आज सारे दिन तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। मन्दा क्या कर रही है?"

"सो रही है।"

"उसे बुखार तो नहीं आया? प्रकाश कह रहा था कि सम्भव है कि रास्तेकी थकावटसे ज्वर हो जाये।"

"नहीं, बिलकुल अच्छी है। एक बात जानते हैं या नहीं?"

"कौनसी बात?"

"एक और आदमी आया है।"

"कौन आया है?"

"पुराना परिचित ही है। आप अनुमान तो कीजिये कि वह कौन है?"

अमरने कुछ सोचकर कहा—"कौन जाने कौन आया है? मुझे किसीपर सन्देह नहीं होता। कौन है, तुम्हीं कहो।"

"एक अतिथि आया है।"

"कोई स्त्री तो नहीं है?"

"हां।"

"कुछ मांगने आयी है क्या?"

"हो सकता है।"

"क्या मांगने आयी है?"

"वही अपने मुंहसे कहेगी।"

"अच्छी आफ़त आयी। अच्छा, तुम बतला दो कि वह कौन है और नहीं बतलाना हो तो कोई और बात छेड़ो।"

"वह अतुलकी मां लगती है।"

चौंककर अमरने कहा—"कौन लगती है?"

"अतुलकी मां।"

अमरने विस्मयके साथ चारुके मुंहकी ओर देखा। भला ऐसी ातका उसे क्योंकर विश्वास हो? चारुने कहा—"क्या ापको विश्वास नहीं होता?"

"बैठना हो तो बैठो, नहीं तो जाओ। मुझे अख़बार पढ़ना है, ाकझक अच्छी नहीं लगती।"

"क्या आपको विश्वास नहीं होता? अच्छा, तो लीजिये, मैं बुलाये देती हूं" कहकर चारु दरवाज़ेकी ओर बढ़ चली।

"यह क्या? तुम किसे बुलाने जा रही हो?" यह कहता हुआ अमर उठ बैठा। चारु पास चली आयी। अमरने पूछा—

"सच बताओ। क्या बात है?"

"और क्या सच बतलाऊं? जीजी आयी हैं?"

"यह कैसी बात! एकदम ग़लत!"

"अच्छा, तो मैं अपनी बातका प्रमाण लिये आती हूं।"

"सुनो तो सही। और किसीने मुझसे यह बात अबतक नहीं कही—अतुलने भी कुछ नहीं कहा।"

"मैंने ही सबको मना कर दिया था। मैंने सोचा था कि सबसे पहले मैं ही आपको यह समाचार सुना दूंगी।"

"अच्छा, अब तो सुना चुकी, अब जाओ।"

"कहां जाऊं?"

"अतिथिकी ख़ातिरदारी करने।"

"ख़ातिरदारीके ही लिये तो वे यहां आयी हैं?"

"मैं यह नहीं कहता। मेरे कहनेका यह मतलब है कि जो कोई अपने घर आये, उसकी ख़ातिरदारी करनी चाहिये।"

"वे अतुल आदिको देखने आयी हैं और एक आदमीसे क्षमा भी मांगने आयी हैं।"

अमरने विस्मित होकर कहा—"फिर तुम्हींने पहेली बुझानी शुरू की। अरे, वह कैसी और किससे क्षमा मांगेगी?"

"जिस किसीके मनमे यह बात बैठी हो कि उन्होंने कोई अपराध किया है, उसीसे क्षमा मांगेंगी।"

"यानी तुमसे? तुम्हें और कोई काम नहीं है क्या? जाओ। मेरा सिर न खाओ।"

"ऐसा करेंगे तो मैं एकदम सिर हो जाऊंगी—सब बातें सुनाने लगूंगी।"

"मैं क्या तुम्हारी बात नहीं सुनता? तुम्हारी बातोंका जवाब भी तो देता हूं। सुनो, अतिथिपर नाराज़ नहीं होना चाहिये। मनमे किसी तरहकी नाराज़ी हो भी उसे दूरकर उसे माफ़ करना चाहिये! अब भी तुम्हारी बात ख़तम हुई या नहीं?"

चारुने हंसकर कहा—"ओह! बड़े साधु बन गये! उलटा मुझे ही उपदेश देने लगे! छोटी बहन अपनी बड़ी बहनको क्यों अपराधी मानने लगी? हां यदि आप नाराज़ हैं तो—"

अमरने बात काटकर कहा—"मैं देखता हूं कि तुम मुझे बैठने भी न दोगी। लो, मैं बाहर जाता हूं। देखता हूं कि प्रकाश क्या कर रहा है।"

"भला जाइये तो सही।"

"अरे, तुम क्या कहना चाहती हो? खुलकर कहो भी तो कि मैं क्या करूं।"

"जीजी आयी हैं। यदि आप उनपर नाराज़ हों, तो उन्हें माफ़ कीजिये।"

"वाह! क्या तुम पगली हो गयी हो? कौन किसपर नाराज़ होने जायेगा? कैसा दोष और कैसी क्षमा? मैं बाहर जा रहा हूं, प्रकाश अकेला बैठा होगा।"

अमर झट-पट बाहर चला गया। सरला चाह लज्जाका पहाड़ सिरपर लादे हुए चुपचाप घरके बीचो-बीच खड़ी रह गयी। उसने सोचा—"राम-राम! मैं क्यों सुरमाको दरवाज़ेतक ले आयी? और यहां लाकर मैंने यह काम क्यों किया? उसने ज़रूर ही सब कुछ सुन लिया होगा। न मालूम वह अपने मनमें क्या सोचेगी। इनकी इस बेतुकी बातने न जाने उसके कलेजेपर कितनी गहरी चोट बैठी होगी। अब मैं उसे कौनसा मुंह दिखाऊंगी।"

सरला बड़ी देरतक घरके अन्दर ही खड़ी रह गयी। बड़ी देर बाद धीरे-धीरे कदम बढ़ाती बाहर निकली। वहांसे सुरमाके घरकी तरफ उसने देखा कि अमर सुरमाको आंगनमें बैठा हुआ बातें कर रहा है।

चारुको देख सुरमाने हंसते हुए कहा—"इतनी देर कहां लगायी ? अतुल तुम्हें ढूंढ़ता फिरता था।"

नीरस स्वरमें चारुने कहा—"घरमें ही थी।"

"बाबू लोग खाने बैठे हैं। दासी बुला गयी है। अब कब जाओगी ?"

"अभी जाती हूं। अतुल खा चुका है ?"

"हां। मैंने खिला दिया है।"

अड़तीसवां परिच्छेद
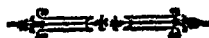
नारी-जीवन

सात-आठ दिन बीत गये। नवें दिन प्रकाशने कहा—"अब तो मेरा यहां रहना नहीं हो सकता। मां ! तुम अभी यहीं रहो, लोग बहुत कह रहे हैं।"

मन्दाने उदासीके साथ कहा—"दो-चार दिन और रह जाइये। मुझे साथ ही लिये चलिये।"

"भला ये दो-ही-चार दिनोंमें तुमको जाने देंगे ?"

"मैं कहूंगी तो ज़रूर जाने देंगे।"

इसी समय सुरमाने आकर कहा—"प्रकाश ! अब क्यों देर करते हो ? घर चलो।" प्रकाशने एक बार उसके मुंहकी ओर

देखा। सुरमा फिर बोली—"यो मुंह क्यों देख रहे हो? बोलो, कब चलते हो।"

"मन्दा कहती है कि दो-चार दिन रहकर मुझे भी साथ लिये चलना।"

सुरमाने सहज भावसे पूछा—"इन दो-चार दिनोंमें तुम्हारा कोई काम बिगड़नेका डर तो नहीं है?"

प्रकाशने कहा—"नहीं।"

"अच्छा, तब यही सही, लेकिन क्या मन्दा यहांसे इतनी जल्दी जायेगी?"

प्रकाशने कहा—"हां।"

"चारुको बड़ा दुःख होगा।"

मन्दाने कहा—"आप समझा देंगी।"

सुरमा बोली—"अच्छी बात है।"

दो-दिन और बीत गये।। मन्दा इतना जल्द जाना चाहती है, यह सुन चारुने बड़े दुःखके साथ सुरमासे कहा—"जीजी! व्याह होतें ही लड़की परायी हो जाती है। ख़ैर, जहां रहे, सुखसे रहे।"

सुरमाने मन-ही-मन एक लम्बी सांस ली और सोचा कि चलो, कुछ कहनेसे जान बची। उसे किसीने यहां रखनेको नहीं कहा। वह समझ गयी कि अब चारुको संसारका बहुत कुछ ज्ञान हो गया है—वह अब इस प्रकारका अनुचित अनुरोध क्यों करेगी?

अब जानेको सिर्फ एक दिन और रह गया है। इतने दिनोंके भीतर न तो सुरमाने अमरसे मिलना चाहा, न अमरने सुरमासे। जानेकी बात-चीत करते-करते और दो-तीन दिन बीत गये। उस दिन अमरने उसके कलेजेमें जो वाण मारा था, उससे वह अबतक दुःखित हो रही है। सुरमाने मन-ही-मन निश्चय किया कि अब मुझे सिर्फ एक ही काम करना बाकी है—वह हुआ और सब ख़तम हो जायेगा। इस जन्मका लेखा-ड्योढ़ा, जमाख़र्च, हिसाब-किताब साफ़ करनेमें बस, इतना-ही-भर बाक़ी है—और कुछ नहीं। उसके मनमें सिर्फ़ यही बात है कि एक दिन इसी स्थानपर वह जिस आदमीसे "नाहीं" करके गयी थी, उसी स्थानपर उसी व्यक्तिसे एक बार "हाँ" कह कर जाना होगा। नारी-जन्मका दोष, भाग्यका दोष, सबसे बढ़कर विधाताका दोष, प्रकट कर दिखाना होगा। कहना होगा—"हे देव! तुम्हारी ही जय हुई। अब क्यों जलाते हो? सब कुछ आहुतिमें डाल चुकी, सब कुछ जलाकर भस्म कर चुकी—अब इस होमाग्निको तुम्हीं बुझाओ।" प्रणाम करके कहना होगा—"मेरे ललाटपर प्रसादके चिह्न-स्वरूप भस्मका तिलक लगा दो—यही प्रसाद दो। तुम तृप्त हो चुके, अब मुझे मुक्त कर दो—इस जन्मके लिये मुक्ति दे दो, जिसमें मुझे फिर न लौटना पड़े।"

आज ही बिदाईका दिन है। सवेरे ही सुरमाको दो चिट्ठियां मिलीं। एक तो उसकी पिताकी थी, जिसमें लिखा था—

"बेटी! मैं बड़ा सुखी हुआ। इस जीवनमें मैं यह सुख भी देखूंगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी। मैं आशीर्वाद करता हूं कि तुम दोनों सुखी हो—स्वस्थ देहसे दीर्घ-जीवन भोग करो। मैं शीघ्र ही तुम्हें आशीर्वाद देने आऊंगा। उमा भी आयेगी।—तुम्हारा पिता।"

सुरमा प्रकाशकी बेवकूफ़ीसे पिताके मनमें ऐसा भ्रम उत्पन्न होते देखकर बड़ी दुःखी हुई। उसने देखा कि वे लोग यही सोच रहे हैं कि मैं सदाके लिये यहां चली आयी हूं; इसलिये उनका यह भ्रम तो दूर करना ही होगा। उसने दूसरी चिट्ठी खोलकर पढ़ी—उसमें लिखा था—"मा! प्रकाश-भैयाके पत्रसे मालूम हुआ कि तुम ससुरालमें बड़े आनन्दसे हो, यह जानकर मुझे प्रसन्नताकी अपेक्षा क्रोध ही अधिक हुआ। तुम मुझे छोड़कर वहां चली गयी हो, इसलिये यह न सोचना कि मैं मुंह फुलाये यहीं बैठी रहूंगी। हमसब भी घर आयंगे। मैं अपनी माको कैलासमें भोला-बाबाके पास बैठी देखने आऊंगी। मांको मैंने हरदम एक ही वेशमें देखा है—कब तुम्हें ठीक मांके वेशमें देखूंगी, इसके लिये जी व्याकुल हो रहा है। वहां मन्दा और प्रकाश-भैया दोनों ही हैं—बस, मैं ही नहीं हूं। यह क्या तुम्हें अच्छा लगता है? हरगिज़ अच्छा नहीं लगता होगा। अतुल कैसा है? वह मुझे भूल तो नहीं गया? अबकी बार यदि वह मुझे 'जीजी' कहकर नहीं पुकारेगा, तो मैं उससे बात भी न करूंगी। मौसीको मेरा प्रणाम कह देना और यह भी कहना